संपादक	:	हितेश शंकर
संपादन सहयोग	:	ज्ञानेन्द्र बरतरिया
	:	अजय विद्युत
प्रूफ रीडिंग	:	ओम नारायण
	:	अश्वनी मिश्र
संपादकीय समन्वय	:	अनुपमा श्रीवास्तव
कला संयोजन	:	शशि मोहन रावत

E-mail: editor.panchjanya@gmail.com
Website: www.panchjanya.com

पत्र व्यवहार का पता–
संस्कृति भवन, देशबंधु गुप्ता मार्ग, झण्डेवाला, नई दिल्ली–55
दूरभाष : सम्पादकीय – 011–47642013, 14, 16, 17 एवं 28 **फैक्स :** 011–47642015

भारत प्रकाशन (दिल्ली) लिमिटेड

प्रबंध निदेशक	:	विजय कुमार
महाप्रबंधक	:	जितेन्द्र मेहता
मुद्रक एवं प्रकाशक	:	प्रमोद कौशिक

विज्ञापन विभाग

मैनेजर मार्केटिंग	:	बृजेश शर्मा 011–47642024
मैनेजर एड सेल्स	:	गौरव वर्मा 011–47642030
मैनेजर बिजनेस डिवेलमेंट	:	दिनेश कुमार भारती 011–47642006

प्रसार विभाग

अधिकारी	:	रवीन्द्र शर्मा 011–47642001
मैनेजर एरिया सेल्स (दिल्ली एन.सी.आर)	:	राजन कुमार 011–47642030

प्रसार विभाग प्रभारी

उत्तर क्षेत्र	:	उपेन्द्र सिंह 011–47642000
पश्चिम क्षेत्र	:	राणाप्रताप सिंह 011–47642004
पूर्व एवं दक्षिण क्षेत्र	:	सोती नवीन कुमार 011–47642010

मुद्रक एवं प्रकाशक **प्रमोद कौशिक** द्वारा भारत प्रकाशन (दिल्ली) लिमिटेड के लिए संस्कृति भवन, देशबंधु गुप्ता मार्ग, झण्डेवाला, नई दिल्ली–55 से प्रकाशित तथा नोवा पब्लिकेशन्स एण्ड प्रिंटर्स प्रा.लि., प्लाट नं. 9–10, सेक्टर–59, फेस–2, फरीदाबाद– 121004 (हरियाणा) से मुद्रित। सम्पादक : **हितेश शंकर**

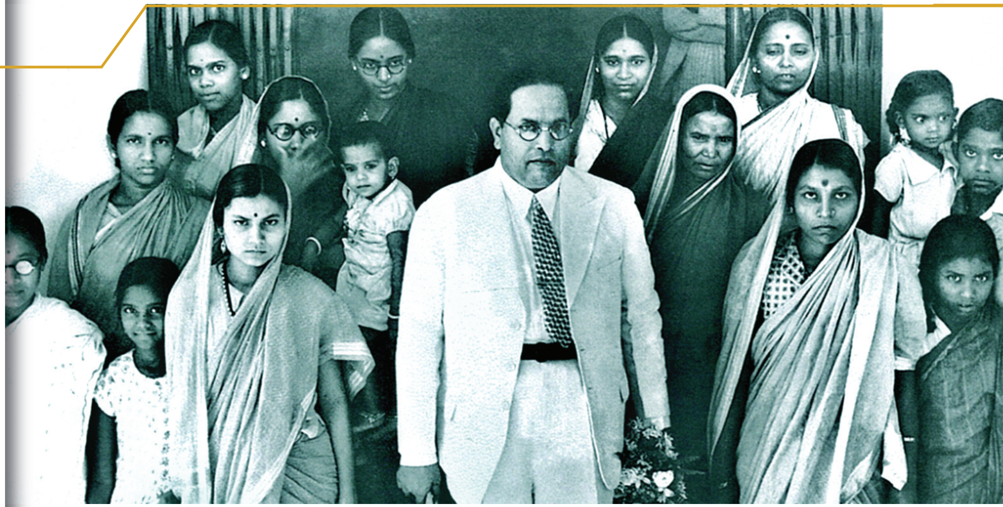

अपनी बात		05
विष पिया, अमृत दिया	हितेश शंकर	06
एक नाम, हजार आयाम	डॉ. कृष्ण गोपाल	09
अनुपम राष्ट्रभक्त	भागय्या	16
नेता हो तो उनके जैसा	मधुभाई कुलकर्णी	21
पत्रकारिता के प्रकाश स्तंभ	जे. नंदकुमार	24
विदेश नीति की यथार्थवादी दृष्टि	प्रफुल्ल केतकर	26
राष्ट्रवाद और सामाजिक न्याय...	रमेश पतंगे	28
राष्ट्र के रक्षा कवच	डॉ. नरेन्द्र जाधव	32
मायावी आंबेडकर भक्त	रमेश पतंगे	33
एक राह के दो राही	भि.रा. इदाते	37
ध्येयनिष्ठ जीवन के धनी	डॉ. अशोक मोडक	39
सबसे पहले मेरा देश	भि.रा. इदाते	42
जिहादी मानसिकता और आंबेडकर	किशोर मकवाणा	46
वे जानते थे पसीने का मोल	अनुपम	56
सीमा प्रहरी बाबासाहेब	डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री	58
कोटा सोचा था, खोटा नहीं	प्रो. श्रीप्रकाश सिंह	61
शिक्षा में जीवन का सार	श्याम अत्रे	63
जिनके मर्म में धर्म था	भीमराव भोसले	67
जो मिला, उनका हो लिया	डॉ. मिलिंद शेजवल	69
राष्ट्रपिता और देश के बाबा	डॉ. सुवर्णा रावल	73
वे आज भी दिखाते हैं राह	डॉ. रामशंकर कठेरिया	76
कहीं से हम आए नहीं थे	डॉ. विजय कायत	78
उठाया सौ टके का सवाल	मूलचंद राणा	82
तथागत और बोधिसत्व	दीपक हनुमंत जेवणे	85
राष्ट्रपुरुष हैं आंबेडकर	डॉ. राकेश सिन्हा	88
जिन्हें सत्ता नहीं समाज चाहिए था	डॉ. सुषमा यादव	90
मुक्ति के उद्घोषक	डॉ. संगीत कुमार रागी	93
बाबासाहेब का जीवनपट		95

अपनी बात

महापुरुष, महापुरुष होते हैं। सामान्य व्यक्तित्व को घिसकर-चमकाकर ऊंची जगह रखा और दिखाया तो जा सकता है, बड़ा बनाया नहीं जा सकता। यह बड़ापन अमूल्य है। जीवन घिस जाता है, व्यक्तिगत हित के मौके छोड़ने पड़ते हैं। आकांक्षाओं को गलाना पड़ता है। बुद्धि के शिखर से समाज की स्थिति और समस्याओं का सिंहावलोकन करते हुए भविष्यपथ भांपना और साथ ही चिति के पाताल में गहरे उतरते हुए आत्मावलोकन करना। जो चुनी है, वह राह सही तो है? मैं सही तो हूं? एकदम अलग-अलग स्तर पर किया जाने वाला यह ऐसा दोहरा काम है जिसमें समय और सोच की मथानी पर व्यक्ति मथा जाता है।

बड़प्पन के नवनीत की प्राप्ति सरल नहीं है। इस 'मैं' को ठीक रखते हुए समाज की चिन्ता करना ही किसी व्यक्ति को बड़ा बनाता है। डॉ. भीमराव आंबेडकर बड़े हैं। उनका व्यक्तित्व विविध आयामी है। व्यक्तित्व की यह विराटता पद, पीढ़ी और पैसे से नहीं मिली। उन्होंने वंचना के थपेड़ों और विपरीतता के अंधड़ों से लड़कर इसे हासिल किया है। इसलिए बाबासाहेब बड़े हैं।

अनूठी अध्ययनशीलता, अद्‌भुत मेधा, समाज का भला करने की उत्कट इच्छा, विपन्नता और विचलन में भी ध्येय और प्रसन्नता खोज लेने की प्रवृत्ति। विपत्ति में भी धैर्य रखने वाला मन। विपरीतताओं से सहज भिड़ जाने वाला जुझारू स्वभाव। क्या नहीं हैं डॉ. आंबेडकर के जीवन में?

डॉ.आंबेडकर पर पाञ्चजन्य का यह प्रयास इसलिए विशेष और संग्रहणीय है क्योंकि इसके माध्यम से बाबासाहेब जैसी विलक्षण विभूति के जीवन के अलग-अलग आयामों को देखनेऔर इन्हें एक पत्रिका रूप में संजोने का प्रयास किया गया है। आशा है पाठकों को पाञ्चजन्य की यह पहल पसंद आएगी, लोग इस अंक को पीढ़ियों के लिए संदर्भ ग्रंथ के तौर पर सहेज सकेंगे। साथ ही हम भी इस बहुआयामी व्यक्तित्व के साथ न्याय कर सकेंगे। आइए, पन्ने पलटें और विराट व्यक्तित्व के उन पहलुओं को जानें जिन्हें जाने बिना डॉ. आंबेडकर को, उनकी सोच को पूरी तरह समझा नहीं जा सकता। कैसा लगा आपको यह प्रयास, लिखिएगा जरूर।

जिनकी सोच में
सदा सबसे ऊपर रहा देश
भारत रत्न
संविधान निर्माता
युगदृष्टा राष्ट्र चिंतक डॉ आंबेडकर के जीवन
को समग्रता से सामने रखता संग्रहणीय अंक

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:30 PM Page 6

बाबासाहेब आंबेडकर का जीवन सरलताओं का सुगम पथ नहीं है। यह बार-बार अपमान की चिनगारियों पर तपता और जगह-जगह सम्मान के छींटों से शांत होता ऐसा विराट व्यक्तित्व है, जिसकी दृढ़ता विपरीत अनुभवों को सहते-समझते हुए कदम ब कदम बढ़ती जाती है।

विष पिया, अमृत दिया

हितेश शंकर

मैं एक बिंदु, परिपूर्ण सिन्धु,
है ये मेरा हिन्दू समाज।
मैं तो समष्टि के लिए व्यष्टि का,
कर सकता बलिदान अभय।।

'पाञ्चजन्य' के प्रथम संपादक और भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी की ये पंक्तियां डॉ. भीमराव आंबेडकर के व्यक्तित्व के लिए एकदम खरी बैठती हैं।

कुछ लोग पहली बार में उखड़ सकते हैं। आपत्ति जता सकते हैं। विवाद खड़ा करने का प्रयास भी कर सकते हैं। उन्हें हिन्दू द्वेषी और समाज विभाजक ठहरा सकते हैं।

परन्तु ठहरिए, डॉ. आंबेडकर का जीवन इसी उखाड़-पछाड़, आपत्ति-अनापत्ति, विवाद-संवाद में सीझा हुआ जीवन है।

डॉ. आंबेडकर का जीवन सरस-समतल-सपाट नहीं है। यह बार-बार अपमान की चिनगारियों पर तपता और जगह-जगह सम्मान के छींटों से शांत होता ऐसा विराट व्यक्तित्व है, जिसकी दृढ़ता विपरीत अनुभवों को सहते-समझते हुए कदम ब कदम बढ़ती जाती है। आंबेडकर को यह मजबूती तत्कालीन परिस्थितियों ने दी है। उन से घृणा करने वालों ने दी है। खुद उस समाज ने दी है जिसका हिस्सा बाबासाहेब थे।

इस दृढ़ता का विलक्षण पक्ष यह है कि आंबेडकर चोट खाते हैं और हर चोट के साथ सामाजिक मजबूती के काम में और जोश-खरोश से जुट जाते हैं। समाज की व्यवस्थागत गलन और गंदगी पर बड़बड़ाते हैं लेकिन जहां इस राष्ट्र और समाज की अखंडता पर कोई हमला होता है, डॉ. आंबेडकर बाबासाहेब बन जाते हैं। इस समाज के अनुभवी बुजुर्ग की तरह व्यवहार करते हैं। एकसर समाज और मजबूत राष्ट्र के प्रबल पक्षधर हो जाते हैं। इसका 'कवच' बनकर खड़े हो जाते हैं।

बालक भीम का डॉ. आंबेडकर होने से लेकर बाबासाहेब रूपी राष्ट्ररक्षक कवच में ढलना ऐसी परिघटना है जो सबके जीवन में नहीं घटती। यदि घटती है तो उस यंत्रणा को झेलना सबके बस की बात नहीं। इस महामानव के जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं को तत्कालीन परिस्थितियों के संदर्भ में और खुद बाबासाहेब की नजर से देखना जरूरी है।

छोटे-से बच्चे का अन्य बच्चों के साथ खेलने के लिए मचलना और विवशता से भरी मां द्वारा उसे यह कहकर गोद में उठा लेना कि सूबेदार मेजर का बेटा होने के अलावा तू महार भी है, बालमन पर कैसी चोट लगी होगी! बंधनों में जकड़े बचपन की इस छटपटाहट और आंसुओं में डूबे इस सबक को बच्चे की नजर से समझना होगा। बच्चे तो सब बच्चे हैं, बालकों में फर्क होता है क्या? यह जीवन का पहला झटका, पहला सवाल है जो भीम के मन में उथल-पुथल मचाता है। और उसे इस नन्ही उम्र में प्रश्नों की बजाय उत्तर खोजने की तरफ मोड़ देता है।

अन्य छात्रों-शिक्षकों के जूतों के पास बैठकर पढ़ने की शर्त पर विद्यालय में दाखिला मिलना। पिता अपमान और ग्लानि से भरे हैं, मां की आंखों में आंसू हैं, किन्तु छह वर्ष का बच्चा कहता है-'मां मेरा दाखिला करा दो, मैं जूतों के पास बैठकर पढ़ूंगा।' बच्चों में फर्क देखने वाले बड़े लोगों के समाज को भीम का यह पहला उत्तर है।

मां भीमाबाई स्थिति को समझती है और उसकी आंखें अपने नन्हे बेटे की असीम संभावनाओं को पहचानती भी हैं। वह कहती है, 'बेटा तुम्हें समाज में

संसद के गलियारे में बाबासाहेब।

सौजन्य : सिंगला स्वीट्स, दिल्ली

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:30 PM Page 7

बहुत अपमान सहना पड़ेगा, बड़ी घृणा झेलनी पड़ेगी। इस सबकी परवाह न करना। किसी से उलझना नहीं। तुम्हें पढ़ना है। बिना पढ़े कोई बड़ा आदमी नहीं बन सकता। जब तुम बड़े आदमी बन जाओ, तब समाज की इस गंदी रीत को बदल डालना, यही मेरी इच्छा है।'

मां का सपना भीम के मन का संकल्प बनता है। घर से अपनी अलग टाट-पट्टी साथ ले जाना। जूतों के बीच ,दहलीज पर बैठकर पढ़ना। आधी छुट्टी में दीवार की ओर मुंह करके पेट भरना... उलाहनों को पीते, विषमताओं में जीते हुए लक्ष्य पर ध्यान केंद्रित किए भीम का समाज को दूसरा उत्तर है- परिस्थिति से ज्यादा महत्वपूर्ण है परिणाम।

जिस मां की आंखों में अपने भीम को पढ़ाने और बड़ा आदमी देखने का सपना था उस मां को इस कारण रोग से प्राण छोड़ते देखना कि अछूत के घर श्रेष्ठ वैद्य आने को तैयार नहीं, दिल बैठने लगता है। आंसू सूख जाते हैं, भूख मर जाती है, बच्चे के लिए मानो पूरी दुनिया ही निष्प्राण हो जाती है। मगर वह फिर खड़ा होता है। यह भीम की जिजीविषा है। नीच और कुलीन के अन्यायपूर्ण प्रश्नों में झूलते समाज को उत्तर देना ही होगा। बैठने से काम नहीं चलेगा। मां जिस रोग से गईं उससे बड़ा रोग समाज को लगा है। मैं समाज के रोग का इलाज करूंगा, आंबेडकर का यह मूक प्रण सामाजिक निष्ठुरताओं को उनका तीसरा उत्तर है।

आंबेडकर बड़े हैं तो बाधाएं पार करने के कारण। बाबासाहेब का व्यक्तित्व विराट है तो इस कारण कि कदम-कदम पर अपमान का विष पीने के बाद भी इस व्यक्ति के मन में घृणा नहीं उपजती। ऐसा नहीं है कि आंबेडकर को क्रोध नहीं आता। वे परिस्थितियों पर झुंझलाते हैं, मुट्ठियां भींचते हैं, अकेले में रोते हैं, जाति की छोटी-बड़ी जंजीरों को, जो गलत करता है उसे, खुलकर फटकारते भी हैं। लेकिन इन सभी मानवीय गुणों के साथ वे विलक्षण हैं तो इसलिए कि वे कभी भी अपनी सदाशयता नहीं छोड़ते। शब्द कैसे भी हों, उनका आशय सदा अच्छा बना रहता है। जिन्होंने अच्छा किया, आंबेडकर उनकी अच्छाई नहीं भूलते।

रामजी सकपाल के पुत्र का नाम भीम है। उपनाम सकपाल है। किन्तु, प्राथमिक शाला के जिन ब्राह्मण मुख्याध्यापक ने भीम के लिए सबसे पहले शिक्षा मंदिर के दरवाजे खोले, इस छात्र की अनुपम मेधा को पहचाना, प्यार से अपना उपनाम दिया, बाबासाहेब ने वह ब्राह्मण उपनाम आंबेडकर अंत तक अपने हृदय से लगाए रखा। बड़ौदा नरेश महाराज गायकवाड़ का पूरा सहयोग इस मेधावी छात्र को मिला। उच्च शिक्षा के लिए छात्रवृति मिली, रियासत को सेवा देते हुए लेफ्टिनेंट का ओहदा मिला। मगर जब मृत्यु शैया पर पड़े पिता की सेवा के लिए छुट्टी न देने वाले अधिकारी का कड़वा व्यवहार मिलता है तो आंबेडकर महाराज से गुहार नहीं लगाते। संबंधों का लाभ नहीं उठाते। कोई कटुता नहीं पालते। वे पिता की सेवा के लिए रियासत की रौबदार नौकरी सहज ही छोड़ देते हैं। मान-अपमान की लड़ाई की बजाए वे अनुशासन और भारतीय संस्कार की लीक पकड़ते हैं। बाद में महाराज गायकवाड़ से मुलाकात होती है परंतु दोनों ओर से वही सहजता, वही सहयोग और सम्मान मिलता है। विषम परिस्थितियों से जूझने के बाद भी चीजों को बिगड़ने न देना यह डॉ. आंबेडकर की विशेषता है। सोचिए, जो लोग बाबासाहेब के वर्ग हितैषी, सवर्ण शत्रु और विद्रोही व्यक्तित्व का चित्र खींचते हैं, उनका चित्र कितना अधूरा और धूर्तता भरा है।

1950 में अपने जन्मदिन पर शुभकामनाएं स्वीकारते बाबासाहेब।

> डॉ. आंबेडकर नवंबर 1918 में बंबई (अब मुंबई) के सिडनहम कॉलेज ऑफ कॉमर्स एंड इकोनॉमिक्स में राजनीति और अर्थशास्त्र के शिक्षक होकर आते हैं तो एक रोज प्यास से गला सूखने पर घड़ा छूते भर हैं कि बवाल हो जाता है- अछूत ने घड़ा छू दिया, घड़ा फोड़ो, इसे दूर करो। उनका सारा जीवन समाज के कटुतम प्रश्नों का सरलतम और सटीक उत्तर है।

कुछ लोग डॉ. आंबेडकर को सिर्फ तत्कालीन अछूत वर्ग का क्रांतिकारी नेता सिद्ध करने की कोशिश करते हैं। यह बाबासाहेब की विराट सर्व समावेशी दृष्टि को संकीर्ण दायरे में बांधने का कुंठित प्रयास है। यह उस व्यक्ति के साथ सरासर अन्याय है जिसने सामाजिक विषमताओं का दंश झेलने के बावजूद इस समाज की सामूहिक शक्ति को पहचाना और सबसे राष्ट्रहित में एक रहने का आह्वान किया। सबसे पहले देश, आंबेडकर की सोच यही है। यहां जाति, वर्ग और पंथों के विभाजन की नहीं, एकात्म की कल्पना है। देश की एकता और स्वतंत्रता के लिए छोटी-बड़ी जातियों में बंटे वर्गों को एकजुट होना चाहिए और मजहब, पंथ, जाति ये देश से बड़े नहीं हो सकते, यह बाबासाहेब का स्पष्ट मत था। यह विचार डॉक्टर आंबेडकर ने सन 1949 के अंत में एक भाषण में सामने रखा था। भाषण का शीर्षक था- सामाजिक कटुता बांटती है और नुक्सान पूरे देश, पूरे समाज का होता है यह बात आंबेडकर ने अपमान के घूंट पीने के बाद भी कैसे मन में बैठाई होगी! क्या यह आसान था?

1917 में कोलंबिया विश्वविद्यालय से पढ़कर लौटे डॉ. आंबेडकर को महाराज गायकवाड़ तो सैन्य सचिव का ऊंचा ओहदा देते हैं लेकिन जातिगत श्रेष्ठता के बंधनों को ढोते उनके अमलदारों में से कोई बाबासाहेब को लेने रेलवे स्टेशन तक नहीं पहुंचता। उच्च जाति का चपरासी, सैन्य सचिव को फाइलें पकड़ाता नहीं, दूर से पटकता है। इस अधिकारी के पानी मांगने पर मातहत साफ-साफ मना कर देते हैं! कोई घर देने को तैयार नहीं, पहचान छिपाकर कमरा ले भी लिया तो सामान सड़क पर पटक दिया जाता है। दिल में दर्द उमड़ता है, आंखों में आंसू

सौजन्य : अश्वनी जैन, जैन कॉलोनी, दिल्ली-110007

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:30 PM Page 8

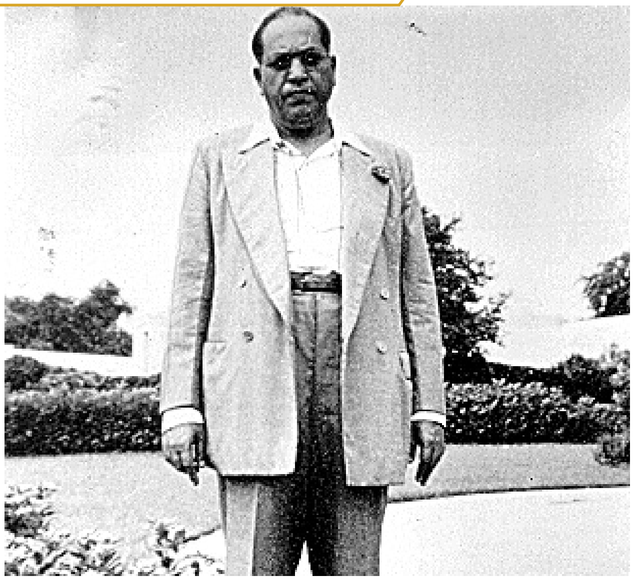

एक अलग ही मुद्रा में बाबासाहेब

आते हैं किन्तु आंबेडकर का बड़प्पन कि वे ऐसी तुच्छताओं को अपनी क्षमा की चादर से ढक देते हैं। यही आंबेडकर नवंबर 1918 में बंबई (अब मुंबई) के सिडनहम कॉलेज ऑफ कॉमर्स एंड इकोनॉमिक्स में राजनीति और अर्थशास्त्र के शिक्षक होकर आते हैं तो एक रोज प्यास से गला सूखने पर घड़ा छूते भर हैं कि बवाल हो जाता है- अछूत ने घड़ा छू दिया, घड़ा फोड़ो, इसे दूर करो।

मेधा, शिक्षा, डिग्री सब व्यर्थ!! क्या सनातनी कस्बे, क्या पारसी धर्मशाला, क्या ईसाई कॉलेज? सब जगह वही सोच का छोटापन, वही विष! यह महामानव हर वह कदम पर हलाहल पीता है मगर अपने भीतर किसी के लिए कोई जहर नहीं पालता।

उपरोक्त घटनाओं के साथ और इनके बाद आंबेडकर की प्रतिक्रियाओं के रूप में सामने आता उनका व्यक्तित्व अपने आप अपना स्थान बताता है। किन्तु इन सबके साथ 25 नवंबर, 1949 को भीमराव आंबेडकर का एक भाषण तुलनात्मक संदर्भ के तौर पर जरूर पढ़ा जाना चाहिए। यह भाषण बाबासाहेब की सांस्कृतिक चेतना का दस्तावेज तो है ही, यह भी दिखाता है कि तुच्छ व्यवहार ने बाबासाहेब को आहत जरूर किया था, परंतु उनकी समझ को कुंठित करने में असफल रहा था। इस रोज संविधान सभा के जरिए डॉ.आंबेडकर ने देश को झकझोरा था। वह आह्वान, वह चेतावनी आज भी पूरी तरह प्रासंगिक है। इस भाषण में देश के सांस्कृतिक अतीत और इस पर आक्रमणों का पूरा लेखा उन्होंने देश के सामने रखा था। आंबेडकर ने याद दिलाया कि जब मुहम्मद-बिन-कासिम भारत पर आक्रमण के लिए उत्तर-पश्चिम की सीमा पर आया, तब राजा दाहिर ने मुकाबला करने का निर्णय लिया। किन्तु दुर्भाग्य से राजा दाहिर पराजित हुए और मुहम्मद बिन कासिम जीत गया। वीर होने के बाद भी दाहिरसेन की हार हुई क्योंकि उनका सेनापति देशद्रोही निकला।

उस महामानव के जीवन की घटनाओं, घटनाओं की प्रतिक्रियाओं और इस सबसे पककर निकली सोच को सामने रखती ये कुछ झलकियां भर हैं। वास्तव में तो डॉ.आंबेडकर का सारा जीवन समाज के कटुतम प्रश्नों का सरलतम और सटीक उत्तर है।

मनोवैज्ञानिक तौर पर 'जैसे को तैसा' यह सहज मानवीय व्यवहार है लेकिन डॉ.आंबेडकर ने, कोई कैसा है के सामने किसी व्यक्ति और व्यवस्था को कैसा होना चाहिए, यह उदाहरण और व्याख्याएं सामने रखते हुए आम मनोवैज्ञानिक धारणाएं झुठला दी थीं। वे जुझारू थे, दबते नहीं थे, इसलिए उन्होंने 'अखिल भारतीय शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन' बनाई थी। यह रणनीतिक फैसला था। उनका साफ मानना था कि अस्पृश्यता और अन्याय के विरुद्ध लड़ना है तो यह घर के भीतर की बात है और यह लड़ाई बाकी हिंदू समाज से कटे रहकर नहीं लड़ी जा सकती और न ही दलितों को हाशिए पर पड़े रहने देना इसका इलाज है। प्रसिद्ध कामगार मैदान सभा में उन्होंने कहा था कि इच्छा से हो या अनिच्छा से, दलित वर्ग हिंदू समाज का ही अंग है। हमने महाड और नासिक में जो सत्याग्रह संघर्ष किया, वह हिंदुओं पर इस बात का दबाव डालने के लिए ही था कि वे दलितों को बराबरी के स्तर पर स्वीकार करें।

उनकी व्यवस्थावादी सोच में अस्पष्टता नहीं थी। न्याय व्यवस्था के बारे में राष्ट्रीय स्तर पर मतैक्य स्थापित करना यह उनकी चाह थी। भले ही स्वयं उन्होंने कुछ भी झेला हो लेकिन इसके बाद भी समाज से अन्याय को दूर करने के लिए सबको सहमति तक पहुंचाने का प्रयास करते रहना, निरंतर जूझना, यही उनके जीवन का ध्येय था। कई चिंतक मानते हैं कि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और आंबेडकर जी का मानववाद समानार्थी विचार है।

> 'मैं हिन्दू समाज सुधारक हूं।' संघर्ष का स्वरूप- स्पृश्य बनाम अस्पृश्य न होकर हिन्दू सुधारक बनाम हिन्दू पुरातनपंथी होना चाहिए।
> - बाबासाहेब

आंबेडकर यकीनन बड़े हैं, लेकिन वे बड़े हैं बड़ी बाधाएं पार करने के कारण। बाबासाहेब का व्यक्तित्व विराट है तो इस कारण कि कदम-कदम पर अपमान का विष पीने के बाद भी इस व्यक्ति के मन में घृणा नहीं उपजती। कुछ लोग बाबासाहेब के जीवन को सिर्फ कुछ लोगों की चिंता और अन्य से नफरत का पुलिंदा बनाकर पेश करते हैं। ऐसे प्रयास अपने आप में घृणित हैं, क्योंकि यह एक बड़े व्यक्ति को बौना साबित करने की कोशिश है। चिंदियों को तस्वीर की तरह दिखाना उस विराट चित्र का अपमान है, जिसमें इस संपूर्ण राष्ट्र, इसकी चुनौतियों और अपने सहोदर समाज की परिस्थितियों का स्पंदन है।

समझने वाली बात यह है कि डॉ. आंबेडकर के जीवन में समाज के साथ उठापटक और उलझाव तो खूब है, लेकिन दुराव नहीं है। यदि डॉ. आंबेडकर तत्कालीन भारतीय समाज की बुराइयों को काटने वाली तलवार की तरह तीखे हैं तो इस समाज की साझा शक्ति को पहचानने, बचाने वाली ढाल भी हैं।

भारतीय संस्कृति में तप बड़ी चीज है। व्यक्ति को शक्ति और तेज देने वाली तपस्या की राह कभी आसान नहीं होती। आंबेडकर का जीवन सरलताओं का सुगम पथ नहीं है। यह विपरीतताओं के कांटों और अपमान के अंगारों पर चलकर उन्हें कुचलकर तय की गई एक दुर्गम यात्रा है। भौगोलिक, सामाजिक अखंडता को समाज का अभिन्न अंग और समाज के हित को सर्वोपरि मानते हुए खुद को गला देना कम बड़ी बात नहीं। यह तपस्या है। व्यष्टि यानी व्यक्ति समष्टि यानी संपूर्ण समाज के लिए कैसे अपना जीवन होम कर सकता है, इस बात की झांकी है डॉ.आंबेडकर का तपमय जीवन। ■

प्रयुक्त संदर्भः 1. बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर संपूर्ण वांग्मय (खंड 1 व 9)/डॉ. आंबेडकर प्रतिष्ठान, 2. मैं आंबेडकर बोल रहा हूं/प्रभात प्रकाशन, 3. प्रखर राष्ट्रभक्त डॉ. भीमराव आंबेडकर/ सुरुचि प्रकाशन), 4. भारत सपूत डॉ. भीमराव आंबेडकर/डॉ. अशोक मोडक

सौजन्य : सुधीर कुमार जैन, इंद्रानगर, कानपुर-208025

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 8:39 PM Page 9

एक नाम, हजार आयाम

» डॉ. कृष्ण गोपाल

डॉ. आंबेडकर का जीवन बड़ा व्यापक, विस्तृत और बहुआयामी था। लेकिन देश का दुर्भाग्य है कि उनका समग्रता में अध्ययन और विश्लेषण बहुत दुर्लभ दिखता है। सभी लोगों ने उनका कोई न कोई एक ही पक्ष देखा और उसी को लेकर अपना मन बनाना प्रारंभ किया। डॉ. आंबेडकर जी के बारे में हमें अनेक प्रकार के मत देखने और सुनने को मिलते हैं।

बहुत से लोग कहते हैं कि वे हमारे लिए भगवान थे और साक्षात् ईश्वर के अवतार के रूप में आए थे, हमारी स्थिति को सुधारने के लिए जो प्रयत्न उन्होंने किए, वे किसी भगवान से कम नहीं हैं। इसलिए कुछ लोग उनको साक्षात् ईश्वर का अवतार मानते हैं। कुछ ऐसे भी हैं, जो उन्हें झूठा ईश्वर कहते हैं और उनकी बातों को नकार देते हैं। कुछ कहते हैं कि वे केवल अनुसूचित वर्ग के थे,वहीं कुछ लोग कहते हैं कि वे समग्र समाज के लिए थे, कुछ लोगों का मानना है कि महात्मा गांधी और कांग्रेस से उनका भारी मतभेद था, लेकिन कुछ लोगों का मानना है कि गांधीजी और आंबेडकरजी दोनों का उद्देश्य एक ही था। मार्क्सवादी विचारधारा के लोग मानते हैं कि वे वर्ग संघर्ष में विश्वास रखते थे, लेकिन आंबेडकर जी ने स्पष्ट लिखा है कि मैं कम्युनिज्म और कम्युनिस्टों का शत्रु नंबर एक हूं।

कुछ कहते हैं कि वे धर्म के विरोधी थे, लेकिन डॉ. आंबेडकर ने स्वयं कहा है कि मैं धर्म पर विश्वास रखता हूं। धर्म के मूल्यों के बिना समाज का संघर्ष केवल ईर्ष्यालु तथा सत्ता प्राप्त करने वाले लोगों का एक क्षुद्र संघर्ष बन जाएगा। धर्म पर उनका बड़ा व्यापक विश्वास था।

कुछ लोगों का मानना है कि वे सवर्णों और ब्राह्मणों के विरोधी थे, लेकिन उनके जीवन में एक बार भी ऐसा मत नहीं आया कि उन्होंने किसी भी एक वर्ग विशेष को कुछ खराब बोला हो। वे कुछ व्यवस्थाओं को लेकर संघर्ष कर रहे थे। उनका संघर्ष कुछ मान्यताओं से था। उनका संघर्ष उच्च जाति के लोगों से नहीं था। इसलिए उनके इस सारे संघर्ष में सभी जातियों और वर्गों के लोग शामिल थे।

यह बात सच है कि जीवन के अंतिम दिनों में उन्होंने बौद्ध मत अपनाया था। उन्होंने सभी धार्मिक मान्यताओं के बारे में बहुत विस्तार से लिखा है। परन्तु इन विषयों एवं विचारों का समग्रता में विश्लेषण और अध्ययन नहीं हुआ है।

उनका जीवन विशाल एवं विराट है। चिंतन, अध्ययन और लेखन शोधपरक है, उनका संघर्ष अतुलनीय है, उसके आयाम भी बहुत हैं, विस्तृत हैं। मैं कुछ बिंदुओं की व्याख्या आपके सामने संक्षेप में रखने का प्रयास करता हूं।

महार नाम की तथाकथित अस्पृश्य जाति में जन्म लेने वाला एक बालक जिसका नाम भीमराव था, उनके पिता का नाम **रामजी सकपाल** था, वे सेना में सूबेदार थे। 14 भाई-बहनों में सबसे छोटे भीमराव का जीवन कष्ट एवं संघर्षयुक्त रहा परन्तु वे मैट्रिक करने वाले महार जाति के पहले छात्र बने। उनकी इस सफलता में उनके एक ब्राह्मण अध्यापक का, जिनका सरनेम (उपनाम) आंबेडकर था, बहुत रचनात्मक सहयोग प्राप्त हुआ।

उनके एक और अध्यापक कृष्णा जी केलुस्कर ने भीमराव को भगवान गौतम बुद्ध की एक छोटी-सी जीवनी पढ़ने को दी। भीमराव बताते हैं कि मैं जीवन भर केलुस्कर जी को और भगवान गौतम बुद्ध को भूल नहीं सका। केलुस्कर ही भीमराव को बड़ौदा के राजा साहेब के पास ले गए और उनको पच्चीस रुपए की छात्रवृत्ति मिलने लगी। बंबई यूनिवर्सिटी से उन्होंने अर्थशास्त्र और राजनीति विज्ञान लेकर 1912 में बीए किया। राजा बड़ौदा ने छात्रवृत्ति बढ़ाकर 75 रुपए

अपने सहयोगियों के परिवारजनों के साथ बाबासाहेब

डॉ. आंबेडकर का चिंतन और उनका कर्म बहुत विशाल है। लगभग सभी लोगों ने डॉ. आंबेडकर को अपने-अपने नजरिए से देखा है, लेकिन उनका समग्र आकलन बहुत कम ही हुआ। उनके प्रति कुछ दृष्टिकोण अधूरे हैं, तो कुछ दृष्टिकोण तथ्यों के विपरीत हैं।

सौजन्य : कुलजीत सिंह चहल, चेयरमैन, केशव विद्या मंदिर स्कूल, नई दिल्ली-110092

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 8:39 PM Page 10

कर दी। उन्होंने थोड़े दिनों के लिए बड़ौदा राज्य में नौकरी की। वहां भी भेदभाव का वातावरण था, तो भीमराव नौकरी छोड़कर वापस आ गए।

केलुस्कर जी के प्रयास से साढ़े 92 पाउंड प्रति माह की छात्रवृत्ति पक्की हुई और भीमराव उच्च अध्ययन के लिए कोलंबिया चले गए। वहां उन्होंने एमए और पीएचडी की डिग्री प्राप्त की। वे कोलंबिया में तो पढ़ते ही थे, साथ ही साथ समय निकालकर लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में भी पढ़ते थे। दोनों स्थानों पर पढ़ते हुए वे डिग्री प्राप्त कर रहे थे। एक जगह से वे एमए और पीएचडी करते हैं, तो दूसरी जगह से एमएससी और डीएससी करते हैं। यह कोई आसान काम नहीं था। उन्होंने ये चारों डिग्रियां प्राप्त कीं। इसके साथ ही उन्होंने विदेश में ही बार एट लॉ भी पूर्ण किया।

पढ़ाई पूरी करने के बाद वे सामाजिक जीवन में आए। उनके मन में समाज का काम करने का भाव था। वे एक अच्छे समाज सुधारक हैं,अच्छे श्रमिक नेता हैं, एक बैरिस्टर हैं, कुशल राजनीतिक नेता भी है। वे कई पत्रों के संपादक भी हैं, वे कुशल वक्ता हैं, वे अच्छे अर्थशास्त्री हैं, अच्छे एंथ्रोपोलिजिस्ट (नृ विज्ञानी) हैं, सामाजिक विषयों पर कई सिद्धांत देने वाले हैं, अनेक देशों के संविधानों के वे ज्ञाता हैं तथा संविधान निर्माता भी हैं। वे क्या नहीं हैं? ध्यान में आएगा कि उनके जीवन के अनेक आयाम हैं।

जीवन संघर्षमय था लेकिन उनका कोई शत्रु नहीं था। वे संघर्ष करते हैं, लेकिन किसी को शत्रु नहीं मानते। महात्मा बुद्ध कहते हैं कि बैर से बैर समाप्त नहीं होता, शत्रुता से शत्रुता नहीं जाती इसलिए बैर करते हुए समता और ममता लाना संभव नहीं है। किसी से भी बैर किए बिना, यह व्यक्तित्व आगे बढ़ता है।

यह सच है कि उनके जीवन के बहुत थोड़े से प्रसंग ही लोगों के सामने आए हैं। सारे जीवन के प्रसंग और आयाम, उनकी विलक्षण क्षमताएं लोगों के सामने नहीं आई हैं। यहां पुरुषों के साथ ऐसा ही होता है। डॉ. जॉनसन लिखते हैं कि व्यक्ति के अंदर बहुत सारी क्षमताएं होती हैं लेकिन नियति उसकी किसी एक क्षमता को चुन लेती है और उसी को लेकर आगे बढ़ती है।

हम जानते हैं कि लोकमान्य तिलक गणित के बड़े अच्छे विद्यार्थी थे, लेकिन गणित के काम में उनको आगे बढ़ने का समय नहीं मिला। अटल बिहारी वाजपेयी बड़े अच्छे कवि रहे, लेकिन उन्हें कविता और लेख लिखने का समय नहीं मिला। स्वामी रामतीर्थ और स्वामी विवेकानंद गणित और विज्ञान के अच्छे विद्यार्थी थे, लेकिन दोनों के जीवन में शायद संन्यास ही लिखा था।

नियति कहां से कहां ले जाती है। आंबेडकरजी का जीवन भी ऐसा ही है। इसलिए हमें यह कोशिश करनी चाहिए कि हम उनके जीवन का समग्रता से अध्ययन कर सकें, समग्रता से विचार कर सकें, तभी किसी व्यक्ति का उचित मूल्यांकन हो सकता है।

समझौते के अनुसार शिक्षा प्राप्त कर वे बड़ौदा आ गए। वे सेक्रेटरी ऑफ बड़ौदा स्टेट बन गए। यहां भी वातावरण अच्छा नहीं था। उनका जो क्लर्क था, वह भी उनको फाइल फेंककर देता था। अपना पानी अपने साथ लाना पड़ता था। क्लब में उनके साथ कोई खेलता नहीं था। उनकी कुर्सी अलग थी। उनको कोई भी मकान भाड़े पर नहीं मिला और अंत में एक झूठा नाम रखकर एक पारसी धर्मशाला में उन्होंने कमरा भाड़े पर लिया, नाम रखा आदलजी सोराबजी।

डॉ. आम्बेडकर वर्णन करते हैं 'एक दिन बड़ी संख्या में पारसी लोग लाठी-डंडे लेकर मेरे पास आ गए और कहा तुरंत निकल जाइए यहां से।' आंबेडकर जी बोलते हैं कि सारा सामान लेकर मैं बाहर सड़क पर पेड़ के नीचे था। सारी डिग्री पास में होने के बाद भी उनका कोई अर्थ नहीं है। मैं कहां जाऊं? कोई मित्र भी रखने को तैयार नहीं। ऐसे अपमानजनक व्यवहार के कारण उनके मन में एक टीस उठी। सारी डिग्री किस काम की है, समाज में सम्मान तो मिलता नहीं है। आंखों से आंसू बहने लगे और शायद उसी दिन उनके जीवन में एक संकल्प गहरे बैठ गया। यही संकल्प धीरे-धीरे आंखों से बहते-बहते जीवन का संकल्प बन गया और उन्होंने निर्णय किया कि यह जीवन इस समाज के परिवर्तन के लिए लगा दूंगा। वह इस पर अंतिम सांस तक दृढ़ रहे।

जो बच्चा मिट्टी के एक छोटे से लैंप से रात-रात भर पढ़ता था, बिना भोजन के दो-चार ब्रेड के पीस लेकर कोलंबिया और लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में पढ़कर आ गया, वह कितना भी धन कमा सकता था। लेकिन नहीं, उसने सारा जीवन समाज परिवर्तन के लिए समर्पित किया था। इस समाज के वर्तमान दुख और दैन्य को, समाज की सारी विभेदकारी परंपराओं और मान्यताओं को बदलने के लिए वे समर्पित हो गए।

उनका सारा जीवन तीन आदर्शों के पीछे चलता है। पहले गुरु उनके महात्मा बुद्ध हैं। बुद्ध ने विद्रोह किया, उस समय की परंपराओं से, मान्यताओं से, रूढ़ियों से, पाखंड से, कर्मकांडों से, लेकिन मौलिक तत्व को पकड़कर रखा। इस देश का मौलिक तत्व प्रेम, एकात्म बोध, दया और करुणा, श्रद्धा, निष्ठा और आत्मीयता है। इन मौलिक तत्वों को अपनाकर बुद्ध ने कर्मकांडों को दूर ले जाकर रख दिया और बुद्ध इस देश के सनातन दर्शन को फिर से ले जाकर खूंटे पर बांधते हैं, प्रेम से, श्रद्धा से, करुणा से, ममता से, संघर्ष से नहीं। इस प्रकार गौतम बुद्ध उनके पहले गुरु थे।

दूसरा बगावती नेतृत्व कबीर का था। कबीर भी धर्ममय हैं। कबीर राम का भक्त है। अपने आपको राम का कुत्ता कहता है, लेकिन कबीर प्रेम, करुणा, दया, ममता, श्रद्धा की वाणी बोलता है। उसका सारा धर्म ढाई आखर प्रेम में है। वे इस धर्म में कबीर को अपना गुरु मानते हैं। कबीर की बगावत पक्की है, लाठी लेकर बात करता है, लेकिन किसी को शत्रु नहीं मानता। धर्म के आधार पर संघर्ष करता है, किसी से बैर नहीं ठानता, लेकिन परिवर्तन की एक वाणी देता है। जिनको वाणी नहीं, उनको स्वर देता है, जिनको मंच नहीं है, उनको मंच देता है, जो तिरस्कृत है, उसको सम्मानित करता है, उसका नाम कबीर है, वह उनका दूसरा गुरु है।

तीसरे गुरु महात्मा फुले थे। भारतीय परंपरा में विराजे जो व्यर्थ के कर्मकांड हैं, जो व्यर्थ की मान्यताएं, पाखंड और झूठ हैं, जो ढोंग है, शास्त्रों की गलत व्याख्या है, उसके विरुद्ध मोर्चा उन्होंने भी लिया। महात्मा फुले ने बगावत का बिगुल बजाया। लोगों ने विरोध किया, लेकिन फुले डटे रहे।

ये तीनों गुरु एक दृष्टि देते हैं, एक दर्शन देते हैं,जिसके आधार पर आंबेडकर संघर्ष को आगे बढ़ाते हैं। आंबेडकर के सारे संघर्ष में जो आत्मतत्व है वह बुद्ध, कबीर और महात्मा फुले से आता है। बुद्ध, कबीर और फुले को समझे बिना, आंबेडकर को समझना अधूरा रह जाएगा।

आंबेडकर का व्यक्तित्व बड़ा क्रांतिकारी है। वे बोलते हैं कि 'मैं किसी भी प्रकार की हीरोवर्शिप (नायकपूजा) में विश्वास नहीं रखता, व्यक्तियों की पूजा मत करो।' इसलिए अपना जन्मदिन मनाने वाले लोगों को मना करते हैं कि मेरा जन्मदिन मनाने क्यों आते हो तुम लोग, भगा देते हैं, भाग जाओ यहां से। आंबेडकर जी अपने उन मित्रों को बोलते हैं कि 'तुम विगत पन्द्रह वर्षों से मेरा जन्म दिवस मना रहे हो किन्तु मैं कभी भी उनमें सम्मिलत नहीं हुआ हूं। मैंने सदैव इनका विरोध ही किया है। आप लोगों ने मेरे जन्म दिन की स्वर्ण जयंती मनाई है। अब ऐसा कोई उत्सव मनाने की आवश्यकता नहीं है।' अपने लिए प्रतिष्ठा मांगने वाले, प्रतिष्ठा चाहने

सौजन्य : श्यामबाला, निगम पार्षद, बलजीत नगर, नई दिल्ली-110008

वाले ऐसे व्यक्ति वह नहीं थे।

वे कहते हैं कि 'बड़े-बड़े नेताओं से,बड़ी पार्टी से, बड़े चुनावी उद्धारकों से, तुम्हारा उद्धार होने वाला नहीं है। अपना उद्धार स्वयं करने का प्रयत्न करो, अध्ययन करो, संगठित हो जाओ, आचरण ठीक रखो, जीवन में सुधार लाओ, किसी के भरोसे मत रहो। कोई दूसरा व्यक्ति आकर तुम्हारा उद्धार करने वाला नहीं है।' अपने को प्रतिष्ठित करना, महिमामंडित करना, अखबारों में फोटो निकलवाना, इससे वे बहुत दूर थे। यह उनका एक व्यक्तित्व है। मैं तुम्हारे उद्धार के लिए किसी एक व्यक्ति के ऊपर तुमको आश्रित कर देना नहीं चाहता हूं। अपने प्रयत्नों से, अपने सामर्थ्य से, अपनी जिजीविषा से अपना उद्धार करने का प्रयत्न करो।'

बहुत बार लोग कहते हैं कि आंबेडकर जी स्वतंत्रता के आंदोलन में कहां थे? वे कहते थे कि 'इस देश की आजादी आनी चाहिए, जितना आप चाहते हैं, उतना ही मैं भी चाहता हूं, लेकिन मेरे मन में एक प्रश्न है कि देश की आजादी आएगी तो मेरी और मेरे मित्रों और बंधुओं की आजादी आएगी या नहीं या वे वैसे ही गुलाम बने रहेंगे।' वे कांग्रेस के नेताओं से पूछते थे कि 'क्या आप मुझे विश्वास दिला सकते हो कि आजादी आने के बाद मेरे इन बंधुओं की भी आजादी आ जाएगी, क्या वे स्वतंत्र होंगे'?

26 अप्रैल, 1942 को बंबई में, उन्होंने कांग्रेस के नेताओं को कहा कि 'मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आजादी के लिए तुम जैसे लड़ रहे हो, आपसे ज्यादा ताकत से मैं लड़ूंगा, लेकिन मुझको भरोसा तो दिलाओ कि स्वराज में मेरे समाज की क्या भागीदारी होगी'? वे कहते थे कि 'मुझ को विश्वास तो दिलाओ कि तुम मेरे बंधुओं को स्वतंत्र कर दोगे, अगर नहीं दोगे तो मैं क्या करूंगा स्वराज का? मैं देश की आजादी चाहता हूं, लेकिन साथ-साथ मेरे इन बंधुओं की भी आजादी चाहिए।'

> वे बड़े अर्थशास्त्री थे, लेकिन दुर्भाग्य कैसा है कि देश का कोई विश्वविद्यालय उनके आर्थिक सिद्धांतों पर शोध नहीं कराता है। कोलंबिया यूनिवर्सिटी से उन्होंने एमए किया, वहीं से उन्होंने पीएचडी की। लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से उन्होंने एमएससी किया, वहीं से उन्होंने डीएससी किया। ये सारी उपाधियां उनकी अर्थशास्त्र की हैं।

वे बड़े अर्थशास्त्री थे, लेकिन दुर्भाग्य कैसा है कि देश का कोई विश्वविद्यालय उनके आर्थिक सिद्धांतों पर शोध नहीं कराता है। कोलंबिया यूनिवर्सिटी से उन्होंने एमए किया, वहीं से उन्होंने पीएचडी की। लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से उन्होंने एमएससी किया, वहीं से उन्होंने डीएससी किया। ये सारी उपाधियां उनकी अर्थशास्त्र की हैं।

भारत के गांवों में कैसे जोत छोटी से छोटी होती चली जा रही है, खेती की जमीन बहुत छोटी होती चली जा रही है और वह बिखर जाती है। स्माल होल्डिंग से इस देश का इकोनॉमिक डेवलपमेंट संभव नहीं है। वे सौ वर्ष पहले बता रहे हैं कि इस देश का इंडस्ट्रिलाइजेशन जल्दी से करो। कृषि पर दबाव बहुत ज्यादा है। 80, 85 से 90 प्रतिशत आदमी कृषि पर आधारित हैं। कृषि की समस्या, गांव की समस्या का एक मात्र समाधान भारत का औद्योगिकीकरण है। उन्होंने 1920 के दशक में कहा कि इंडस्ट्रिलाइजेशन ऑफ इंडिया इज दी साउंडेस्ट रेमेडी फॉर एग्रीकल्चर प्रॉबल्म्स ऑफ इंडिया। सारे किसान, यूरोप और अमरीका में खेती छोड़कर उद्योग धंधों में लग गये और हम लोग सारे उद्योग धंधे बंद कर-के,खेती में लगे हुए हैं। 80-85 प्रतिशत आदमी खेती से ही अपना विकास चाहते हैं। उनके सारे सिद्धांत और सारे शोधप्रबंध कहां हैं? उन पर अच्छी शोध होनी चाहिए थी, लेकिन सौ वर्ष बाद भी इसकी कोई संभावना नहीं दिखती है।

उन्होंने वंचित लोगों को सच का मंच दिया, मूक लोगों को वाणी दी, जैसा कि 'मूकनायक' नाम के उनके समाचार पत्र से हम जानते हैं। एक अस्तित्व दिया, आधार दिया, उनमें आत्मविश्वास पैदा किया। बहुत संक्षेप में उन्होंने अधिकारों के लिए लोगों को जागरूक किया, संगठित किया, अनुशासित किया, संघर्ष के लिए तैयार किया। लोगों को स्वाभिमानी बनाया, शिक्षित होने का आह्वान किया, अपने अधिकार लेने के लिए लोगों को एकत्रित किया और कई आंदोलन सफल किए।

महाड का सत्याग्रह हमलोग जानते हैं। तालाब में पानी पीने की अनुमति कानूनन है, लेकिन पानी नहीं पी सकते। मुसलमान, ईसाई पानी पी सकते हैं, सवर्ण पी सकते हैं, लेकिन जो अस्पृश्य कहे जाते हैं, वे नहीं पी सकते हैं। उन्होंने आंदोलन किया, पानी पिया। वहां के जो रूढ़िवादी लोग थे, उन्होंने पंचगव्य डालकर, उस तालाब को शुद्ध किया। जो लोग आए थे, उनके साथ मारपीट कर डाली।

आंबेडकर जी कहते हैं कि 'देखो हम अगर मुसलमान हो जाते हैं, तो इसी तालाब से पानी पियेंगे, तब आप हमको नहीं रोकेंगे, हम ईसाई हो जाते हैं, तब आप हमको इसी तालाब से पानी पीने देंगे, आप हमें नहीं रोकेंगे। हम हिन्दू हैं, हिंदू रहना चाहते हैं, इसलिए आप हमें पानी नहीं पीने देना चाहते हैं। हमें क्यों पानी पीने नहीं देते हैं? ऐसा ही सत्याग्रह उन्होंने नाशिक के राममंदिर में प्रवेश के लिए किया। हम हिंदू हैं। हम मंदिर में दर्शन करने के लिए जाना चाहते हैं, लोगों ने विरोध किया, मारपीट की। वे कहते हैं कि 'यह जो अस्पृश्यता है, हिंदू समाज के ऊपर और हिंदू धर्म के ऊपर लगा हुआ एक कलंक है, इसे हम दूर करेंगे'। वे संघर्ष करते हैं तो आंबेडकर जी का स्वर बदल जाता है। आंबेडकर जी कहते हैं कि 'यह हिंदू धर्म के ऊपर लगा हुआ कलंक नहीं है, यह कलंक हमारी देह पर लगा है।' अर्थात् जो अस्पृश्य हैं, उनके शरीर पर लगा कलंक है। इसे दूर करने की जिम्मेदारी उन लोगों की नहीं है, जो अपने आपको सवर्ण कहते हैं, यह जिम्मेदारी हमारी है, हम स्वयं इसको दूर करेंगे। अब हमलोग स्वयं इस संघर्ष को अलग प्रकार से चलाएंगे। याचना का स्वर बंद हो गया।

हम कहते हैं कि उनके जीवन में कई चरण अलग-अलग प्रकार के हैं। कभी ऐसा लगता है, वह कहते हैं कि 'गीता मेरे सत्याग्रह करने की प्रेरणा का स्रोत है। गीता मुझे सत्याग्रह करने के लिए आह्वान करती है।' अपने अखबार के ऊपर 'जय भवानी' लिखते हैं, अपने आपको हिंदू कहने में गौरवान्वित होते हैं। सैकड़ों लोगों का यज्ञोपवीत करवाते हैं। आगे चलकर उनका स्वर बदल गया है। उन्होंने कहा कि हिंदू समाज हमें सम्मानित करता ही नहीं, हम क्या करें? वे यह कहते हैं कि हम आपस में सुधार लाएंगे। सामाजिक सुधार, राजनीतिक सुधार और आर्थिक सुधार, इन तीनों के लिए संघर्ष का आयाम बदला।

वे परिवर्तन का आधार धर्म मानते हैं, समाज सुधार का आधार भी धर्म है। धर्म के प्रति नवयुवकों को उदासीन देखकर उनके मन को दुख होता है। वे कहते हैं कि 'धर्म आशा देता है, धर्म विश्वास देता है। धर्म

सौजन्य : मुकुल गर्ग, राज राजेश्वरी हाउसिंग प्लानर्स प्राइवेट लिमिटेड

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 8:40 PM Page 12

समाज में मान्यताओं को स्थापित करता है। धर्म का अर्थ है परमार्थ का चिंतन करना, धर्म का अर्थ है अपना पेट भरने के साथ-साथ दूसरे के पेट की भी चिंता करना। अपना पेट भरने का काम भिखमंगे भी कर लेते हैं। धार्मिक लोग सभी की चिंता करते हुए आगे बढ़ते हैं। समाज के कल्याण की भावना धर्म के अंदर निहित है।' इसलिए वे मार्क्सवादियों के विरुद्ध हैं। वे कहते हैं कि 'मार्क्सवादी धर्म को अफीम मानते हैं। इनको मक्खन और टोस्ट मिला, मुर्गे की टांग मिली, वे प्रसन्न हो जाते हैं। मैं इनके मत का समर्थन नहीं करता हूं। इसलिए मौलिक सिद्धांत बचाकर, रखकर, इस समाज में परिवर्तन लाना है।' लेकिन साथ ही साथ बोलते हैं 'धर्म के नाम पर जो ढोंग है, धर्म के नाम पर जो पाखंड, यह धर्म का मजाक है। मैं इसको मानने के लिए तैयार नहीं हूं।'

वे कहते हैं कि 'द्वेष और वैमनस्य, कभी भी सुधार के आधार नहीं बन सकते। सुधार का आधार इस देश में केवल और केवल धर्म बनेगा।' वे कहते हैं कि राजनीतिक सुधारों से ज्यादा महत्वपूर्ण है सामाजिक सुधार। राजनीतिक सुधार आप कर देंगे, संविधान का अधिकार दे देंगे, तब भी उनका पालन कौन करेगा? अगर पालन करने वाली आत्मिक भावनाएं समाज में नहीं होंगी, समाज उसे मान और सम्मान नहीं देगा, तो सुधार केवल कागजों में रह जाएंगे।'

यह भी कहते हैं 'कि सामाजिक ,आर्थिक और राजनीतिक हमें तीनों प्रकार की आजादी चाहिए और किसी एक के अभाव में आजादी अपूर्ण रह जाएगी।' वे सावधान करते हैं कि देश स्वतंत्र तो हो रहा है, लेकिन करोड़ों लोगों का क्या होगा? उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति कैसी है? अगर आर्थिक विपन्नता बनी रही तो राजनीतिक स्वतंत्रता का लंबे समय तक कोई अर्थ नहीं रहेगा।

अस्पृश्यता के बारे में उनका एक मत है। वे कहते हैं कि इस देश में अस्पृश्यता कभी थी ही नहीं। दो हजार साल पहले अस्पृश्यता का शब्द इस देश के किसी भी शास्त्र में नहीं है, न वेद में है, न उपनिषद् में है, न ब्राह्मण ग्रंथों में है, न आरण्यक में न गीता में है। यह कहां से आया, कैसे आया? वे बताते हैं कि मुश्किल से बारह, तेरह सौ वर्ष पहले से अस्पृश्यता आई है।

आंबेडकर कहते हैं कि गाय के मांस का भक्षण इस देश में जब अक्षम्य अपराध हो गया तब से अस्पृश्यता आई। सबसे पहला अस्पृश्यता का उदाहरण है, वह दाहिर के परिवार में आया। दाहिर हार गया और दाहिर के महल में येआक्रमणकारी मुसलमान लोग घुसे, तो दाहिर के परिवार की महिलाएं बोलती हैं कि वे आ रहे हैं, म्लेच्छ हैं, हमें स्पर्श करेंगे, हम तो अपवित्र हो जाएंगे। उनके स्पर्श करने के पहले अपने को मर जाना चाहिए। इसलिए अग्नि तैयार करो। यह जो अस्पृश्य शब्द महिलाएं बोलती हैं, भारतीय इतिहास में वह पहला उदाहरण है।

उन्होंने कम्युनिस्टों के बारे में बहुत कुछ बोला है। 1937 में मैसूर के एक दलित वर्ग के सम्मेलन में वे बोल रहे थे कि 'मैं कम्युनिस्टों से मिल जाऊंगा, ऐसा कुछ लोग बोलते हैं, इसकी जरा भी संभावना नहीं है। अपने राजनीतिक स्वार्थ के लिए मजदूरों का शोषण करने वाले कम्युनिस्टों का मैं कट्टर दुश्मन हूं।'

'मनुष्य केवल रोटी पर जिंदा नहीं रहता। उसके पास मन है। उस मन को विचार की खाद चाहिए। धर्म मनुष्य के मन में आशा का संचार करता है। उसे काम करने के लिए प्रवृत्त करता है, लेकिन मार्क्सवादी लोग धर्म को अफीम मानते हैं', जो कम्युनिस्ट वर्ग आज आंबेडकर का चित्र लगाकर कहते हैं कि वे वर्ग संघर्ष के पुरोधा थे, यह बात कैसे मानी जाए? स्वतंत्रता वर्ष 1942 से 1946 तक आंबेडकर वायसराय कांऊसिल में लेबर मिनिस्टर रहे। वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने मजदूरों की सुरक्षा नीति तैयार कराई। वे पहले मंत्री थे, जिन्होंने लेबर पॉलिसी तैयार कराई। श्रमिक, मालिक और सरकार तीनों अलग-अलग नहीं हैं, मिलकर बैठो, मजदूरों का हित, उद्योग का हित और सारे समाज का हित अलग-अलग नहीं है, विरोधाभासी नहीं है, तीनों मिलकर कार्य करें। त्रिपक्षीय वार्ता तब से शुरू हुई। मजदूरों के लिए उन्होंने कानून बनाए। उद्योगों से जुड़े हुए झगड़ों के निपटारे के लिए उन्होंने समितियां बनाईं।

मिनिमम वेजेज, फैक्ट्री एक्ट, प्रोविडेंट फंड, ओवर टाइम के लिए एक्सट्रा पेमेंट, सब्सिडाइज्ड फूड, फैक्ट्री के अंदर कैंटीन, फैक्ट्री के अंदर मेडिकल ऐड ये सारे प्रावधान श्रम क्षेत्र में लाने वाले आंबेडकर ही थे। चीफ लेबर कमिश्नर, प्रोविंशियल लेबर कमिश्नर, लेबर इंस्पेक्टर्स, ये नियुक्तियां करवाने वाले डाक्टर साहेब ही थे। मैटरनिटी लीव मिले, इसके लिए डाक्टर साहेब ने बम्बई की एसेम्बली में जमकर संघर्ष किया। महिलाओं को पूरी मैटरनिटी लीव चाहिए।

वे संविधान सभा में गांधीजी के कारण आए। गांधीजी के साथ उनका विवाद भी चलता रहता था, लेकिन जब देश का संविधान बनने को आया और गांधी जी ने वल्लभ भाई पटेल और जवाहर लाल नेहरू को बुलाकर पूछा कि किसको काम सौंप रहे हैं आप लोग, तो जवाहर लाल नेहरू जी ने कहा कि हम जर्मनी के ख्याति प्राप्त संविधानविद् सर ज्योर जेरी को बुला

सौजन्य : रेखा देवी, कलवंत हौजरी मिल्स, लुधियाना

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 8:01 PM Page 13

रहे हैं। गांधीजी ने कहा, इतना बड़ा देश है, दुनिया क्या कहेगी कि इस देश में कोई संविधान बनाने वाला नहीं है। तब गांधी जी ने डॉ.आंबेडकर को दो न, वह बहुत विद्वान व्यक्ति हैं, उनको यह काम दे दो।

हम जानते हैं कि वे संविधान सभा में आए, ड्राफ्टिंग कमेटी में आए, चेयरमैन बने, संविधान बना, अंतिम भाषण का एक पैराग्राफ आपके सामने रखता हूं। हमको यह भी ध्यान में आएगा कि इन सारी विपरीत परिस्थितियों में भी उनका मन कितना उदार, कितना बड़ा है, चिंतन समाज को जोड़ने वाला है, वे कृतज्ञता से भरे हैं। वे बोलते हैं कि 'मैं संविधान सभा में आया, तो अपने जो पिछड़े बंधु हैं (अर्थात् जो अस्पृश्य बंधु हैं), उनके हितों के संरक्षण का ध्यान एकमात्र ध्यान था। मुझको सपने में भी उम्मीद नहीं थी कि मैं ड्राफ्टिंग कमेटी में आऊंगा। मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रही, जब मुझे इसका अध्यक्ष बनाया, जबकि मुझसे अधिक योग्य, अधिक क्षमतावान लोग यहां पर थे।

वे रेडियो पर अपना एक भाषण 1954 में दे रहे थे। संविधान बन चुका था। वे मजाक करते थे, थोड़ा सा व्यंग्य भी है, लेकिन कहीं मन में वेदना भी है। 'हिन्दुओं को जब वेद चाहिए थे तो उन्होंने एक निम्नवर्णीय व्यास को यह कार्य सौंपा। वेदों के संपादन का कार्य वेदव्यास ने किया था। हिन्दुओं को जब महाकाव्य रामायण चाहिए थी, तो उन्होंने वाल्मीकि को याद किया और वाल्मीकि से रामायण लिखवाई। हिन्दुओं को राज्य का संविधान चाहिए था तो उन्होंने मुझको बुला लिया।'

25 नवम्बर, 1949 को संविधान सभा में अंतिम भाषण में, संविधान सफल होगा या संविधान फेल हो जाएगा- इस सवाल पर आंबेडकर जी कहते हैं कि 'यह इस बात पर निर्भर करेगा कि यह कैसे लोगों के हाथ में रहेगा। संविधान कोई भी अच्छा या बुरा नहीं होता। बुरे से बुरे लोग होंगे, लेकिन यदि अच्छे से अच्छा संविधान होगा, तो उसको भी वे असफल कर देंगे। इसलिए संसद, कार्यपालिका और न्यायपालिका तीनों मिलकर अच्छे लोगों का सहारा लेकर, संविधान को सफल करेंगे, यह उन्हीं पर निर्भर करेगा। व्यक्ति अच्छे होने चाहिए।' वे बोलते हैं कि 'यदि राजनीतिक दल, दलों की महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति में राष्ट्र की महत्वाकांक्षाओं को छोड़ देंगे। तो क्या यह सफल होगा, कुछ सफल नहीं होगा।' वे बोलते हैं कि '26 जनवरी, 1950 को भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र हो जाएगा। लेकिन क्या हम पहले स्वतंत्र नहीं थे, क्या यह स्वतंत्रता स्थिर और स्थायी रहेगी? हम क्यों गुलाम हुए?' वे बोलते हैं कि 'मुहम्मद बिन कासिम का आक्रमण हुआ, तो यहां का सेनापति वहां जाकर मिल गया, मोहम्मद गौरी का आक्रमण हुआ तो जयचंद वहां जाकर मुगलों से मिल गया। ब्रिटिश लोग लड़ रहे थे, सिख राज्य को समाप्त कर रहे थे, गुलाब सिंह शांत बैठा था। 1857 में जब देश स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहा था, तब कई लोग शांत बैठे थे। यह विचार मुझको व्यग्र कर देता है, क्या हम अपनी स्वतंत्रता को बनाए रखेंगे?' इस देश के बारे में वे कितने चिंतित है? स्वतंत्रता तो आ रही है, हमारा संविधान भी आ रहा है। इस देश के लोग कैसा व्यवहार करेंगे, क्या देश के लोग देशभक्त रहेंगे या नहीं - उनकी चिंता का सबसे बड़ा प्रश्न यह है।

आज कई कम्युनिस्ट आंबेडकर का चित्र लगाकर कहते हैं कि वे वर्ग संघर्ष के पुरोधा थे, जबकि आंबेडकर स्वयं को कम्युनिस्टों का कट्टर दुश्मन कहते थे। उनके अनुसार कम्युनिस्ट राजनीतिक स्वार्थ के लिए मजदूरों का शोषण करते थे। वह श्रमिक, मालिक और सरकार तीनों को अलग नहीं मानते थे और तीनों के मिलकर कार्य करने के पक्षधर थे।

भाषा के आधार पर जब प्रांत रचना प्रारंभ होने को आई, तो आंबेडकर ने कहा 'मैं नहीं समझता, एक ही भाषाभाषी सब मिलकर एक राज्य में आने चाहिए, इसकी क्या आवश्यकता है, सारे भाषाभाषियों को बुलाकर एक राज्य में उनको इकट्ठा कर देने का क्या मतलब है? इसलिए सारे तेलुगू वाले एक तेलुगू राज्य में, सारे मराठी बोलने वाले एक मराठी राज्य में, सारे हिन्दी बोलने वालों को एक बड़ा प्रांत, यह आवश्यकता मैं नहीं समझता। एक भाषाभाषी का एक प्रांत या एक प्रांत की एक भाषा, इन दोनों में अंतर है।' वे कहते हैं कि 'एक भाषा भाषियों को एकत्रित करके एक प्रांत में ला देना, यह मेरी समझ के बाहर है। राजनीतिक रचना प्रशासनिक आधार पर होनी चाहिए और सारे देश के लिए एक केन्द्रीय राजभाषा बननी चाहिए, जो सबके लिए अनिवार्य हो।' वे कहते थे कि 'मैं हिन्दी भाषी नहीं हूं। किन्तु हिन्दी को सभी प्रांत स्वीकार करें और अपने-अपने प्रांतों में हिन्दी पढ़ाएं, तभी इस देश को हम ठीक प्रकार से एकात्म और बड़ा करके रख सकते हैं।'

वे विदेश नीति पर बोलते हैं, '15 अगस्त, 1947 को जब हम स्वतंत्र हुए, हमारा कोई दुश्मन नहीं था। आज 1948-49 में क्या हो गया? जब कश्मीर का मुद्दा लेकर संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत गया, तो भारत का समर्थन करने वाला कोई भी देश वहां नहीं मिला।' तिब्बत पर जब चीन का आक्रमण हुआ, तो आंबेडकर जी ने कहा, 'यह क्या हो रहा है? हमारे प्रधानमंत्री क्या कर रहे हैं? भविष्य में चीन की सीमा हमारी सीमा से लग जाएगी, क्या यह खतरा उनको नहीं दिखता है? चीन हमारे दरवाजे पर आ रहा है, नेहरू जी सपनों की दुनिया में रह रहे हैं। हम अपनी रक्षा नहीं कर सकते।'

संविधान के अनुच्छेद 370 पर शेख अब्दुल्ला से उनकी बातचीत हुई। शेख अब्दुल्ला से बोलते हैं, 'आप मेरे साथ हैं, भारत कश्मीर की रक्षा करेगा। कश्मीरियों को पूरे भारत में समान अधिकार होंगे। परन्तु आप भारत और भारतीयों को कश्मीर में पूरे अधिकार नहीं देना चाहते? मैं भारत का कानून मंत्री हूं और मैं अपने देश के साथ इस प्रकार की धोखाधड़ी और विश्वासघात में शामिल नहीं हो सकता।' 370 के ऊपर उनका यह मत क्या आज के राजनीतिक नेताओं को और सभी दलों को मालूम है?

उन्होंने कहा कि यह कहना कि 'आर्य लोग बाहर से आए, यह मूलतः गलत सिद्धान्त है। कायरतापूर्ण नीति है। जिस प्रकार से अमरीका में यूरोप के लोग पहुंच गए और वहां के स्थानीय लोगों को मारकर भगाया, जैसा कनाडा में बाहर के लोग गए, आस्ट्रेलिया में गए, ऐसे ही वे यहां स्थापित करना चाहते हैं कि आर्य लोग बाहर से आए, स्थानीय लोगों को मारकर भगाया और उसमें से दलित लोग पैदा हो गए, यह गलत है।'

आज के समाजशास्त्री, राजनीतिक क्षेत्र के लोग उनके इस सिद्धान्त को नहीं बोलते हैं, वे चुप्पी साधे हुए हैं। आंबेडकर जी कहते हैं कि 'यह कल्पना ही गलत बनाई गई थी और इसे स्थापित करने के स्रोत ढूंढे गए। आर्य कोई नस्ल नहीं थी। आंबेडकर लिखते हैं कि ऋग्वेद में 33 बार आर्य शब्द का प्रयोग आया है, एक स्थान पर भी वह नस्ल के रूप में नहीं है। सभी स्थानों पर उसका अर्थ गुणवाचक है।'

आंबेडकर जी ने कहा 'शूद्र लोग जो भारत में हैं, वे सब आर्य हैं और

सौजन्य : पवन गर्ग, पवन डाईंग एण्ड फरनिशिंग मिल्स, लुधियाना

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 8:41 PM Page 14

शूद्र भी क्षत्रिय हैं। ऋग्वेद के नौ मंडल में कहीं भी शूद्र शब्द नहीं है। दशम मंडल में बाद में जोड़ा है। उसके बाद ही शूद्र शब्द आया है।' वे कहते हैं कि 'शूद्र आर्य थे और शूद्र क्षत्रिय वर्ग में थे। राजा वेन, राजा पुरुर्वा, राजा नहुश, राजा निमि और राजा सुदास राजाओं के ब्राह्मणों के साथ संघर्ष हुए। ब्राह्मणों पर इन्होंने अत्याचार किए। इतने अत्याचार हुए कि ब्राह्मण लोग कराह उठे। इस प्रतिशोध का बदला कैसे लिया जाए, इन्होंने उन क्षत्रियों का यज्ञोपवीत कराना बंद कर दिया। यह दण्ड पर्याप्त था।' आंबेडकर बोलते हैं कि 'क्षत्रियों का एक वर्ग, जिसका यज्ञोपवीत नहीं हो सका वे धीरे-धीरे शिक्षा के क्षेत्र से भी वंचित हो गए। वे पूजा, यज्ञ, कर्मकांड से दूर हो गए, वे संपत्ति के अधिकार से दूर हो गए। उपनयन पहनना या न पहनना, यह महत्व की बात नहीं थी, महत्व की बात थी, उपनयन पहनने का अधिकार रखना या नहीं रखना। इनको अधिकार ही नहीं था। धीरे-धीरे सामाजिक परिस्थिति में गिरते चले गए। आज जो शूद्र हैं, वे सब पुराने क्षत्रिय हैं। उनके कुल और वंश एक ही हैं।'

वे लिखते हैं कि 'शूद्र आर्य थे, शूद्र सूर्यवंशी थे, शूद्रों की गणना क्षत्रियों में होती थी, कुल तीन ही वर्ण थे, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य। एक बार जिसको यज्ञोपवीत से वंचित कर दिया, उसका यज्ञोपवीत कराने के लिए कोई सामने नहीं आता था।'

जब तय हुआ कि शिवाजी महाराज का राज्यभिषेक होगा। तब कुछ लोगों ने प्रश्न खड़ा कर दिया कि शिवाजी महाराज क्षत्रिय नहीं हैं, इनका राज्यभिषेक कैसे होगा? समर्थ गुरु रामदास ने काशी से एक गंगाभट्ट को बुलाया, गंगाभट्ट ने एक वंशावली निर्माण की। उस वंशावली में गंगाभट्ट ने पक्का किया कि शिवाजी महाराज कुछ पीढ़ी पहले राजस्थान से आए एक क्षत्रिय हैं। उनका यज्ञोपवीत हो सकता है।

शिवाजी का राज्याभिषेक होने के पहले यज्ञोपवीत हुआ, उसके पहले उनके दो विवाह हो चुके थे। उनके दो पुत्र भी थे, राजाराम और सम्भाजी। शिवाजी का यज्ञोपवीत हुआ, उसके बाद लोगों ने आख्या दी कि अब शिवाजी का पुनर्विवाह होगा। अपनी ही पुरानी पत्नियों और बच्चों के सामने बैठकर शिवाजी का फिर विवाह हुआ। इसके बाद राज्याभिषेक हुआ। हम यह कह सकते हैं कि एक परम्परा जब आ जाती है तो कितनी गहरी जड़ जमाती है।

आंबेडकर जी बताते हैं कि 'पंजाब में जो अस्पृश्य कहे जाते हैं, चूहड़ और संयुक्त प्रांत (अब उत्तर प्रदेश)के ब्राह्मण, उनका जो नेजल इंडेक्स है, वह बराबर है। बिहार में जो चमार, अस्पृश्य हैं और बिहार के ब्राह्मणों का नेजल इंडेक्स बराबर है। कर्नाटक के अस्पृश्य और वहां के ब्राह्मणों का नेजल इंडेक्स बराबर है। तमिलनाडु के चेरमलऔर वहां के ब्राह्मण, आयंगार और अय्यर का नेजल इंडेक्स बराबर है। वे बताते हैं चाहे बिहार हो या पंजाब हो, महाराष्ट्र हो, तमिलनाडु हो वहां के रहने वाले अस्पृश्य और तथाकथित सवर्ण एक ही नेजल इंडेक्स के हैं।'

बड़े-बड़े नृ विज्ञानियों का मानना है कि इन सब जातियों के गोत्र तो एक ही हैं। जो गोत्र अस्पृश्यों के हैं, वही गोत्र वहां के ब्राह्मणों के हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि इन सबके पूर्वज कहीं न कहीं एक ही हैं।

भारत में जो मुस्लिम समस्या है, एक बड़ी समस्या है। उसके ऊपर एक मोटा शोध ग्रन्थ उन्होंने लिखा है। इसका समाधान कैसे होगा, हमारे मित्रों को उसका अध्ययन करना चाहिए। वे कहते हैं कि 'कांग्रेस जिस तरह से (मुसलमानों की) सारी मांगों को मानती चली जाती है, उससे वह किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचेगी। ऐसी मांगों को मानते जाने से कोई भी समझौता या समानता का व्यवहार कभी हो नहीं सकेगा। वे कहते हैं कि जब साइमन कमीशन भारत में आया, तब मुस्लिम लीग ने यह मांग की कि बॉम्बे प्रेसीडेंसी से सिंध को अलग कर दो। आंबेडकर कहते हैं कि इस मांग की क्या जरूरत थी? बॉम्बे प्रेसीडेंसी में से सिंध को अलग क्यों करना? कुछ जिलों में मुसलमान बहुसंख्यक थे, यह सच बात है। लेकिन जहां बहुसंख्यक हैं, उसको अलग राज्य बना देना, यह आवश्यक है क्या?'

आंबेडकर जी ने उस समय अपनी एक अलग रपट दी। बॉम्बे प्रेसीडेंसी के आंबेडकर जी भी सदस्य थे। आंबेडकर जी ने कांग्रेस की इस राय का विरोध किया। बाद में सिंध प्रांत अलग बना और कम्युनल अवार्ड आया, 1932 में, आंबेडकर जी ने दोनों बातों को जमकर विरोध किया। आंबेडकर जी कहते हैं कि 'मौलाना आजाद कांग्रेस के बड़े राष्ट्रवादी नेता हैं, लेकिन वे बोल क्या रहे हैं? उन्होंने कहा है, 'हिन्दुओं के पास नौ प्रांत हैं, जहां वे बहुसंख्यक हैं, सिध एक नया प्रांत बनने से अब मुसलमानों के पास पांच प्रांत होंगे जहां वह बहुसंख्यक होंगे। अगर हिन्दू लोग कुछ करते हैं, तुम लोग यहां बदला ले सकते हो।' आंबेडकर जी कहते हैं कि 'क्या यह आप लोगों को राष्ट्रवादी लोगों की भाषा प्रतीत होती है?' वे आगे बोलते हैं, 'कम्युनल अवार्ड में जो परसेंटेज मुसलमानों को हिन्दू प्रांतों में दिया गया है अल्पसंख्यक मानकर, क्या वही हिस्सा हिन्दुओं को उन मुस्लिम प्रांतों में दिया जाएगा, जहां हिन्दू अल्पसंख्यक हैं? जहां मुसलमान अल्पसंख्यक हैं, उनकी सीटें बढ़ाई हैं, तो जहां हिन्दू अल्पसंख्यक हैं, उनकी सीट आप लोग क्यों नहीं बढ़ाते हैं'? आंबेडकर जी ने कहा ये 'पृथक मतदाता मंडल इसका मतलब है, कि हमेशा के लिए अलगाव हो जाएगा। इसलिए मुसलमानों को सीट आरक्षण ठीक है, लेकिन उनके चुनाव संवर्ग को अलग कर देना, एक भयंकर बीमारी है, जो कभी नहीं रुकेगी।'

> देश अपनी स्वतंत्रता की रक्षा कैसे करेगा? क्या उसे फिर जयचंदों का सामना तो नहीं करना पड़ेगा? देश का राज-काज चलाने वाले लोग कैसे होंगे? इस तरह की चिंताएं डॉ. आंबेडकर बेबाकी से व्यक्त करते रहे। चीन का भारत की सीमा तक आ जाना भी उन्हें विचलित करता था और कश्मीर को अनुच्छेद 370 देने से भी वह सहमत नहीं थे। राज्यों का भाषा के आधार पर विभाजन भी उन्हें पसंद नहीं था

डॉ. आंबेडकर कहते हैं, कौन से मुद्दे ऐसे हैं, जहां एकता हो सकती है, वे कहते हैं 'सन् 711 से लेकर जो इतिहास है, वह युद्ध का, आक्रमण का और क्रूरतम घटनाओं का है।' वे कहते हैं कि मुसलमानों में अनेक आक्रमणकारी थे, जिन्होंने भारत पर आक्रमण किए। उनका सम्मिलित उद्देश्य केवल एक था, हिन्दू धर्म का विनाश।' वे कहते हैं 'ऐतिहासिक, धार्मिक और सांस्कृतिक और सामाजिक विरोध मिलकर एक गहरी राजनीतिक विरोध की नदी खड़ी कर देते हैं। जो हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात करते हैं, वे इस बात को ध्यान में रखें कि इस विरोध के कारण ऐतिहासिक हैं, धार्मिक हैं, सांस्कृतिक हैं, सामाजिक हैं, जो राजनीतिक विरोध दिख रहा है, वह ऊपर का है, सब मिलाकर इतनी गहरी खाई खड़ी हो जाती है, जिसको पाटना इतना आसान काम नहीं है। मौलाना मोहम्मद अली अपने आपको सच्चा मुसलमान मानते हैं। जो सच्चा मुसलमान अपने को मानता है, वह भारत में अपने को दफनाने से

सौजन्य : रमीत मलिक, ज्योतिषी, फव्वारा चौक, लुधियाना

मना कर देता है। येरुशलम में जमीन मांगकर उसको दफनाने के लिए ले जाया जाता है।' आंबेडकर लिखते हैं कि क्या सच्चा मुसलमान भारत को अपनी मातृभूमि मानेगा।' मान लो अगर अफगानिस्तान आक्रमण करता है तो भारत के मुसलमान कहां जाएंगे? इस पर विचार करने की आवश्यकता है। पहले अफगानिस्तान के आक्रमण के समय यहां के मुसलमानों का व्यवहार कैसा रहा है, क्या हम उसे भूल जाएं?' वे आगे बोलते हैं, 'अगर विभाजन आवश्यक और अटल है। तो एक बार सारी जनसंख्या की अदला-बदली कर दो, हमेशा के लिए इस समस्या का समाधान हो। मैं मुस्लिम भारत और गैर मुस्लिम भारत में विश्वास करता हूं। यूरोप ने इस समस्या से समाधान पाया है। मिस्र, बल्गेरिया सहित आठ देशों ने अपने अल्पसंख्यकों की पूर्ण अदला-बदली की और इस समस्या से वे बाहर आए।'

हैदराबाद में अनुसूचित वर्ग के जो लोग रह रहे थे, उनको उन्होंने चेतावनी दी। उन्होंने सरकार को भी कहा,'विभाजन से पहले लोगों की सुरक्षा की गांरटी तो लो। क्या होगा उसके बाद?' हैदराबाद में बड़ी संख्या में लोग रह गए, उन लोगों पर खतरा था। इत्तेहादे मुसलमीन उन्हें मुसलमान बना रही थी। वे असहाय थे। आंबेडकर जी ने पत्र उन लोगों को भेजा और कहा कि 'तुम किसी भी तरीके से भारत में आ जाओ, मैं हिन्दू शास्त्रों की उन बातों को नहीं मानता, एक बार हिन्दू धर्म से गया, हमेशा के लिए चला गया, मैं तुम्हें शुद्ध करके फिर से हिन्दू बनाऊंगा, तुम भारत में आ जाओ।' यह आंबेडकर का वक्तव्य है, हैदराबाद के अपने अनुसूचित वर्ग के लोगों के लिए।

हम देखते हैं कि उन्होंने संकल्प लिया था, मैं हिन्दू समाज को एक झटका जरूर दूंगा। एक शॉक ट्रीटमेंट जरूरी है। 1935 में उन्होंने कहा, मैं जन्मा तो हिन्दू था, मरूंगा नहीं। 21 साल तक धैर्य से उन्होंने हिन्दू समाज को प्रतीक्षा के लिए समय दिया। हिन्दू समाज को ब्रेक दिया, कहा कि हिन्दू समाज अच्छा सकारात्मक उत्तर देगा। 21 साल प्रतीक्षा करने के बाद 1956 में उनको लगने लगा कि मेरा जीवन अब लंबा नहीं हैं। गांधी जी को उन्होंने वचन दिया था, मैं कम से कम हानि करूंगा। देश का अधिक से अधिक हित हो, वही रास्ता अपनाऊंगा। इस कारण उन्होंने बौद्ध मत अपनाया। 1935 से लेकर 1956 तक उन्होंने प्रतीक्षा की कि हिन्दू समाज क्या प्रतिक्रिया करता हैं, हिन्दू समाज उदार मन को दिखाता है या नहीं। अंत में वे बौद्ध बने।

उनके पास पोप के प्रतिनिधि आए, निजाम के लोग भी आए। सबको मना किया। मैं यदि ईसाइयत में गया या इस्लाम स्वीकार किया तो यह देश एक बड़े खतरे में चला जाएगा। इसलिए मैं उसी रास्ते को अपना रहा हूं, जिससे इस देश के मौलिक तत्व-ज्ञान के साथ मैं जुड़ा रहूंगा। दलाई लामा बुद्धिस्ट और हिन्दू दोनों को आध्यात्मिक भाई बताते हैं। हम छोटे भाई हैं, भारत का हिन्दू हमारा बड़ा भाई है। उन्होंने वह रास्ता अपनाया, जिससे देश को कम से कम हानि हो। इस देश की सांस्कृतिक, वैचारिक, दार्शनिक विरासत से वे जुड़े रहे। संक्षेप में अगर कहें तो आंबेडकर का जीवन एक बहुआयामी जीवन है। बहुत सारे विषयों पर उन्होंने बेबाक लिखा है, अध्ययन के साथ लिखा, अनुभव के साथ लिखा। बहुत गरीबी में अस्पृश्यता के अपमानजनक वातावरण में पला और बढ़ा बालक सबसे अच्छी डिग्री प्राप्त करने के बाद भी सम्मान नहीं प्राप्त कर सका। इतनी वेदना में कुछ बातें मन में आ सकती हैं। वह लोगों को खराब लग सकती हैं। उन्होंने 'रिडल्ज इन हिन्दुइज्म' पुस्तक भी लिखी, लेकिन प्रकाशित नहीं कराई। उसे उन्होंने जीवन पर्यंत अपनी अलमारी में ही रखे रहने दिया, मरने तक भी उसे नहीं निकाला। वह गुस्से में थी, प्रतिक्रिया में थी। बाद में मन बदल गया। उसमें कई लाइन गायब हैं, नीचे संपादक नोट में लिखा है कि इन पंक्तियों को दीमक खा गई।

उनके जीवन में कई उतार-चढ़ाव आए। समाज की परिस्थिति जैसे-जैसे बदली, उनका थोड़ा-थोड़ा मत भी बदला, लेकिन देशभक्ति का भाव, सारे समाज को साथ लेकर चलने का भाव नहीं बदला। यह मौलिक था। इसलिए वे जन्म से लेकर जीवन के अंतिम श्वांस तक भारतीय ही रहे। वे बौद्ध मत में जरूर चले गए। हिन्दू समाज के अंदर जो ढोंग था, पाखण्ड था, कर्मकांड का अतिरेक था,अमानवीय व्यवहार था, इससे उनको गुस्सा था। लेकिन वे मौलिक दर्शन से भारतीय धरती से जुड़े रहे।

उनका जीवन बड़ा अशांत था, लेकिन मन सदैव शांत रहा। संघर्षमय जीवन था, लेकिन उनका शत्रु कोई नहीं। ब्राह्मणवाद का उन्होंने विरोध किया, लेकिन ब्राह्मण उनके अच्छे मित्र थे। प्रारंभ में वे रामभक्त दिखते हैं, राम मन्दिर में जाने का प्रयास करते हैं, लेकिन बाद में हिन्दू धर्म में नहीं रहने को भी कहते हैं। वे पृथक मतदाता मंडल का विरोध करते हैं, लेकिन बाद में इसकी मांग भी करते हैं। पूना समझौते के समय गांधी जी को कड़ा बोलते हैं और बोलते हैं कि महात्मा आएंगे, महात्मा जाएंगे, महात्मा कोई अमर नहीं है,लेकिन महात्मा गांधी की मृत्यु पर बहुत दुखी भी हैं। महात्मा गांधी भी उनको संविधान निर्माण करने के लिए बुला लेते हैं।

उनके पास पोप के प्रतिनिधि आए, निज़ाम के लोग भी आए। सबको मना किया। मैं यदि ईसाइयत में गया या इस्लाम स्वीकार किया तो यह देश एक बड़े खतरे में चला जाएगा। इसलिए मैं उसी रास्ते को अपना रहा हूं, जिससे इस देश के मौलिक तत्व-ज्ञान के साथ मैं जुड़ा रहूंगा।

स्वतंत्रता की लड़ाई में हमको लगता है कि वे दूर खड़े हैं, लेकिन मन से साथ खड़े हैं। वे 'रिडल्स इन हिन्दुइज्म' लिखते जरूर हैं, लेकिन छपवाते नहीं हैं। हिन्दू धर्म को छोड़ने की घोषणा करते हैं किन्तु 21 साल तक प्रतीक्षा भी करते हैं। कांग्रेस के घोर विरोधी हैं, लेकिन कांग्रेस के मंत्रिमंडल में भी जाते हैं। हम कह सकते हैं कि एक विराट हृदय लेकर पैदा हुए वे एक ऐसे व्यक्ति थे, जो इस देश को सौभाग्य से मिले थे। उनका महान जीवन बहुत सारी बातों को लेकर है। प्रारम्भ में बताया कि ऐसे जो विलक्षण लोग होते हैं, उनका एकाध गुण ऐसा होता है जो नियति उनके लिए निश्चित कर देती है। और शेष प्रतिभाएं कुछ छिप जाती हैं।

अंत में मेरी यही प्रार्थना है कि डॉ.आंबेडकर जी को हम सापेक्षता में पढ़ें, समग्रता में अध्ययन करें। वे जिस उद्देश्य पर निकले थे, वह उद्देश्य अभी पूरा नहीं हुआ है। गांव-गांव में क्या व्यवहार होता है, वह स्थिति सबके ध्यान में है। सामाजिक विषमता को, चाहे वह आर्थिक हो, सामाजिक हो, राजनीतिक हो, उसको कैसे शीघ्राति शीघ्र दूर करें और सारा देश, एकजुटता के साथ खड़ा हो। देश का भविष्य अच्छा हो। देश अपने गौरव को प्राप्त करे। हमारा समाज एक भावना से, एक विचार से, एक आत्मभाव से मिलकर खड़ा हो। जो वैदिक ऋषियों की कल्पना थी, महात्मा बुद्ध की जो मान्यता थी, उसको लेकर हम खड़े हों और विश्व में अपना एक ऊंचा स्थान बनाएं और यही डॉ.आंबेडकर जी की भी इच्छा थी। ■

(लेखक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह सरकार्यवाह हैं)

सौजन्य : विरेन्द्र बब्बर, निगम पार्षद, पहाड़गंज, दिल्ली-110055

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 8:12 PM Page 16

‘इस महान देश की भावी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक संरचना के विकास और उसकी परम उन्नति को लेकर मेरे मन में जरा भी संदेह नहीं है। मैं पूर्ण आश्वस्त हूं कि समय और परिस्थितियां मिलने के बाद, दुनिया में कोई ताकत देश को एक बनने से नहीं रोकेगी।’

अनुपम राष्ट्रभक्त

» भागय्या

अर्थशास्त्र, न्यायशास्त्र, सामाजिक, राजनीतिक शास्त्र तथा धार्मिक और सांस्कृतिक विषयों का गहन ज्ञान रखने वाले पूज्य बाबासाहेब उच्च कोटि के राष्ट्रभक्त थे।

संविधान निर्माता

संविधान निर्माण में उनका महत्वपूर्ण योगदान था। संविधान सभा के ज्येष्ठ सम्मानीय सदस्य श्री टी.टी. कृष्णामाचारी कहते हैं, ‘संविधान निर्माण समिति में सात सदस्यों की नियुक्ति हुई। एक सज्जन ने त्यागपत्र दे दिया, उनके स्थान पर दूसरे सदस्य नियुक्त हुए और एक सदस्य का देहांत हो गया। एक सदस्य भर्ती नहीं हुआ और एक सदस्य अमरीका में थे। एक राज्य के प्रशासन कार्य में लगे थे और दो लोग दिल्ली के बाहर रहते थे तथा अस्वस्थता के कारण बैठकों में नहीं आ सकते थे। इसलिए अंततः सारा काम आंबेडकर जी को ही करना पड़ा। स्वास्थ्य बहुत ठीक न होने पर भी वे लगन से पूरी शक्ति लगाकर संविधान का काम करते थे। इसलिए हम सब उनको धन्यवाद देते हैं।’ वहीं बाबू राजेंद्र प्रसाद कहते हैं- ‘राष्ट्रजीवन के सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए तथा जनता के अधिकार और कर्तव्यों को भी ध्यान में रखकर उन्होंने इस महान कार्य को पूरा किया था।’

प्रखर राष्ट्रभक्ति का हृदय

1946 में 9 दिसंबर को संविधान सभा का काम प्रारंभ हुआ। 11 दिसंबर को डॉ. राजेंद्र प्रसाद संविधान सभा के अध्यक्ष चुने गए। 13 दिसंबर को जवाहरलाल नेहरू ने संविधान सभा के उद्देश्यों को सभा के सामने रखा- नेहरू जी के वक्तव्य में तीसरे परिच्छेद में-स्वतंत्र भारत में ब्रिटिश इंडिया के साथ मिलने वाले शेष सभी राज संस्थानों के बारे में बोलते हुए कहा गया-

‘उक्त शासित प्रदेशों को, चाहे उनकी वर्तमान सीमाओं में अथवा संविधान सभा और उसके बाद में संविधान के कानून के अनुसार निर्धारित सीमाओं में, स्वायत्त इकाई की स्थिति प्राप्त होगी और बनी रहेगी, जिसमें उनकी शेष शक्तियां भी होंगी, और वे सरकार तथा प्रशासन की सभी शक्तियों और कार्यों का प्रयोग करेंगे, सिवाय ऐसी शक्तियों और कार्यों के, जो संघ में निहित हैं या संघ के लिए निर्धारित हैं, या संघ में चली आ रही हैं या अंतरनिहित हैं ...’

सभा में तनाव का वातावरण था। सारे देश को स्वतंत्र भारत में एक राष्ट्र के नाते आगे बढ़ना है। परंतु ब्रिटिश इंडिया के बाहर सभी रजवाड़ों को retain the status of autonomous प्रावधान देने का विरोध था। ऐसे में बाबू राजेंद्र प्रसाद को अचानक बाबासाहेब से बात करने के लिए बुलाया गया।

बाबासाहेब संविधान सभा के सदस्य के नाते, कांग्रेस विरोध के कारण मुंबई से हार गए थे, इसलिए वे बंगाल से चुनकर आए थे।

सभा का गठन और संचालन का सारा काम कांग्रेस के हाथों में था। अन्य रियासतों से भी कांग्रेस का संबंध ठीक नहीं था।

जब बाबासाहेब का वक्तव्य शुरू हुआ तो सारे सदस्य अत्यंत श्रद्धा से सुन रहे थे। वक्तव्य ऐतिहासिक था- वर्षों बाद स्वतंत्रता पाने वाले देश के लिए यह भाषण राष्ट्रीय एकात्मता की दृष्टि से और देश की एकता बनाए रखने के लिए था।

श्री एन. वी. गाडगिल जो प्रत्यक्ष सुन रहे थे, इस वक्तव्य के बारे में बताते हैं- उनका वक्तव्य एक श्रेष्ठ राष्ट्रभक्त का था- एकात्मबोध का था, भेदभाव लेशमात्र नहीं था। प्रखरता थी, शब्द उनके हृदयातरंग से आ रहे थे इसलिए सभी हर्ष से उनका स्वागत कर रहे थे।

बाबासाहेब ने अपने महत्वपूर्ण ऐतिहासिक वक्तव्य में कहा -

श्रीमान, इस महान देश की भावी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक संरचना के विकास और उसकी परम उन्नति को लेकर मेरे मन में जरा भी संदेह नहीं है। मुझे पता है कि आज हम राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से विभाजित हैं। हम झगड़ालुओं के शिविरों का एक झुंड हैं और मैं यह स्वीकार करने की हद तक जा सकता हूं कि मैं शायद ऐसे एक शिविर के नेताओं में से हूं । लेकिन इस सब के बावजूद, मैं पूर्ण आश्वस्त हूं कि समय और परिस्थितियां मिलने के बाद, दुनिया में कोई ताकत देश को एक बनने से नहीं रोकेगी। हमारी सभी जातियों और आस्थाओं के बावजूद, मुझे जरा भी संकोच नहीं है कि हम किसी न किसी रूप में एकजुट लोगों की तरह होंगे।

सौजन्य : राजीव खरबंदा, स्मैग रिटेल प्राइवेट लिमिटेड

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 8:43 PM Page 17

बाबासाहेब की विद्वता

वे सदस्यों से पूछते हैं कि परिच्छेद में बताए अनुसार प्रस्ताव पारित करने का अधिकार सभा को हो सकता है, परंतु देश की समग्रता के लिए यह ठीक है क्या? यह भाषण बाबासाहेब के अंतःकरण को दर्शाता है। उनके इस भाषण से मातृभूमि के प्रति अत्यंत भक्तिभाव और देश की हजारों वर्षों की परंपरा के प्रति विश्वास और श्रद्धा उजागर होती है।

निष्पक्ष और उदार हृदय

संविधान सभा के काम का सिंहावलोकन करते हुए वे कहते हैं, 'संविधान की प्रारूप समिति में सब व्यवस्थित चलने का श्रेय कांग्रेस को है। कांग्रेस के अनुशासन के कारण ही मैंने प्रारूप निर्माण किया। कांग्रेस के अनुशासन के कारण ही प्रारूप समिति, संविधान समिति में प्रत्येक धारा व प्रत्येक संशोधन के भविष्य की विश्वासपूर्ण जानकारी के आधार पर संविधान के मार्गदर्शक का काम कर सकी।'

साम्यवादी व समाजवादी संविधान का ज्यादातर विरोध करते थे। साम्यवादी दल को श्रमिक वर्ग की तानाशाही पर आधारित संविधान चाहिए था। समाजवादी लोग दो कारणों से विरोध करते थे। पहला कारण यह कि यदि वे अधिकार (सत्ता) में आते हैं तो मुआवजा न देते हुए निजी संपत्ति का राष्ट्रीयकरण अथवा सामाजिकीकरण करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। दूसरा यह कि संविधान में मूलभूत अधिकार निरंकुश व अमर्यादित होने चाहिए। यानी यदि उनका दल सत्ता में नहीं आता है तो उन्हें केवल आलोचना करने की नहीं, बल्कि राजसत्ता उलटने की स्वतंत्रता चाहिए।

वे कहते हैं कि राष्ट्र के उपयोग के लिए स्थापित संस्थाओं और उन्हें चलाने के लिए जनता के विश्वास से नियुक्त लोग प्रामाणिक होंगे, ऐसा मानकर चला जाता है, लेकिन आगे आने वाली पीढ़ी को राष्ट्रहित में जो भी संशोधन करने की आवश्यकता होगी, इसके लिए प्रावधान रखा गया है।

केंद्र और राज्यों के संबंध तथा अधिकारों के बारे में वे बताते हैं- आपातकाल में सत्ता के दावों से संघर्ष उत्पन्न हो सकता है। कोई संदेह नहीं कि शेष निष्ठा राज्यों पर न होकर केंद्र पर होनी चाहिए, क्योंकि संयुक्त अधिकार के लिए अंतिम रूप से संपूर्ण देश के सामूहिक हितसंबंध के लिए काम करने वाला केंद्र ही होता है। आपातकाल में राज्य सरकार को हटाने का अधिकार केवल केंद्र को ही होता है। संपूर्ण देश की सुरक्षा और अखंडता तथा एकता के लिए यह आवश्यक है।

ऐतिहासिक दूरदर्शिता

भारत के भविष्य को लेकर उनके मन में बहुत चिंता थी। इस चिंता का कारण उनकी मातृभूमि पर निष्ठा ही थी। संविधान सभा में दिए अपने अंतिम भाषण में वे कहते हैं-

'26 जनवरी, 1950 को भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र हो जाएगा। (जयघोष) उसकी स्वतंत्रता का क्या होगा। वह अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करेगा कि उसे पुनः खो देगा? इस संबंध में मेरे मन में पहला विचार यह आता है। ऐसा नहीं है कि भारत कभी स्वतंत्र राष्ट्र नहीं रहा है। मुद्दा यह है कि पहले जो स्वतंत्रता थी, उसे उसने गंवाया। क्या वह उसे फिर से गंवा देगा? कारण- वह (उसने) अपनी जनता में से कुछ की अप्रामाणिकता व विश्वासघात के कारण स्वतंत्रता गंवाई थी। मोहम्मद बिन कासिम ने सिंध पर आक्रमण किया तब दाहिर के सेनापति ने कासिम के दलाल से रिश्वत ली और अपने राजा की तरफ से लड़ने से इनकार कर दिया। मोहम्मद गोरी को भारत पर आक्रमण करने के लिए व पृथ्वीराज से लड़ने का निमंत्रण देने वाला सोलंकी राजा जयचंद था। जब शिवाजी हिंदुओं की मुक्ति के लिए संघर्ष कर रहे थे, उस समय बाकी मराठा सरदार और राजपूत मुगल बादशाह की तरफ से लड़ रहे थे। जब ब्रिटिशों ने सिख राजकर्ताओं को नष्ट करने का प्रयास किया, तब सेनापति गुलाब सिंह चुप बैठा रहा।

1857 में भारत के बड़े भाग में ब्रिटिशों के खिलाफ स्वतंत्रता संग्राम की घोषणा की गई। उस समय सिख प्रेक्षक बने रहे। क्या इतिहास की पुनरावृत्ति होगी? यही विचार मुझे व्यग्र करता है। इस व्यग्रता को तीव्र करने वाला कारण यह है कि जाति व संप्रदाय के अपने पुराने शत्रुओं के साथ अब परस्पर विरोधी व विभिन्न राजनीतिक प्रणाली वाले अनेक राजनीतिक दलों का सामना करना पड़ेगा। भारत के लोग राष्ट्र को अपने राजनीतिक संप्रदाय से श्रेष्ठ मानेंगे अथवा अपने राजनीतिक संप्रदाय को राष्ट्र से श्रेष्ठ मानेंगे? यदि दलों ने अपनी राजनीतिक प्रणाली को राष्ट्र से श्रेष्ठ माना तो स्वतंत्रता फिर खतरे में पड़ सकती है। इससे अपने देश की रक्षा करनी है।

समता, स्वतंत्रता, बंधुता के आधार पर लोकतांत्रिक व्यवस्था की रक्षा हो सकती है। इसमें समता और स्वतंत्रता दोनों की रक्षा के लिए बंधुता अत्यंत आधारभूत है। आज बंधुता के आधार पर ही संपूर्ण समाज को संगठित किया जा सकता है और स्वतंत्रता की रक्षा की जा सकती है।

लोकशिक्षक बाबासाहेब

उच्च शिक्षा के पहले चरण में इंग्लैंड से भारत आने पर बाबासाहेब ने बंबई के सिडे हॅम महाविद्यालय में दो साल अर्थशास्त्र का अध्यापन किया। बाद में एक निजी संस्था में प्रोफेसर ऑफ मर्केन्टाईल के पद पर कार्य किया। सन् 1928 में वे शासकीय विधि महाविद्यालय में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हो गए। आगे चलकर इसी महाविद्यालय में सन् 1935 में प्राचार्य पद पर उनकी नियुक्ति हुई। इस पूरी अवधि में उन्होंने एक सव्यसाची, विद्यार्थी प्रिय, प्राध्यापक और अनुशासनप्रिय प्रशासक के रूप में ख्याति प्राप्त की। अध्यापन, विषय का गहरा ज्ञान, चौतरफा वाचन और अत्यंत व्यामिश्र जीवनानुभव से उनका अध्यापन प्रभावी और वजनदार था। उनकी अध्यापन शैली में संवाद कुशलता, भाषा की शान और गहरा ज्ञान था। अंग्रेजी भाषा पर उनका अनूठा प्रभुत्व था। उन्हें विद्यार्थियों को विषय, क्रमिक पुस्तक पढ़ाने का जैसे एहसास था, वैसे ही उनका चरित्रनिर्माण करना है, साथ-साथ मार्गदर्शन करना है, इसका भी ज्ञान था। महाविद्यालय के प्राचार्य के नाते, बंबई विश्वविद्यालय के कामकाज पर उन्होंने अमिट छाप छोड़ी थी।

अध्यापन लौकिक पेशा था और उसके साथ-साथ वे व्यावहारिक कुशलता सिखाने का, लोकशिक्षक का काम भी करते थे। सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं की उन्हें गहरी समझ थी। 'मूकनायक', 'बहिष्कृत भारत', 'जनता' आदि नियतकालिकों (पीरियाडिकल्स) से उन्होंने इन समस्याओं की कठोर चिकित्सा की और उनके बारे में दिग्दर्शन भी किया। बहिष्कृत हितकारिणी सभा, समाज समता संघ आदि संस्थाओं से उन्होंने समाज परिवर्तन को गति दी। दलित और अस्पृश्य समाज की अनेक परिषदों में उन्होंने अपने प्रभावी भाषणों के माध्यम से समाज का मार्गदर्शन किया। सन् 1927 में महाड में हुई परिषद और चवदार तालाब सत्याग्रह के समय उनके भाषण विशेष रूप से मशहूर हुए। उन्होंने दलित मुक्ति आंदोलन की नींव डाली। बंबई, दिल्ली, बीबीसी लंदन और वायस ऑफ अमरीका आदि रेडियो केन्द्रों से उन्होंने विचार करने को बाध्य करने वाले प्रभावी भाषण दिए। अनेक शासकीय समितियों और मंचों से विचार व्यक्त किए। प्रांतीय और राष्ट्रीय स्तर पर शासकीय यंत्रणाओं में जिम्मेदारी के पद को विभूषित करते हुए किया हुआ कार्य और व्यक्त किए विचार, व्यापक अर्थ से लोकशिक्षा ही है। उनमें जो कालनिरपेक्षता और चिरनूतनता है, वह दर्शनीय तो है ही पर सच्चे अर्थों में समाजमन पर किए गए जादू जैसी है। लोक शिक्षक के रूप में बाबासाहेब का किया हुआ काम चिरस्मरणीय है।

सौजन्य : कैलाश यादव, केबल नेटवर्क, अध्यक्ष-अखिल भारतीय यादव महासभा, जिला-पूर्वी दिल्ली

पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी की स्थापना करके उन्होंने दलित समाज के विद्यार्थियों के लिए बंबई और औरंगाबाद में उच्च शिक्षा महाविद्यालयों की स्थापना की। ये महाविद्यालय उपेक्षित समाज के विद्यार्थियों के लिए ज्ञान के मुक्तद्वार थे। संस्था संचालन करते हुए उन्होंने दूरदर्शिता, तत्वनिष्ठा और पारदर्शी व्यवहार पर बल दिया। इन संस्थाओं में आर्थिक अनुशासन और सच्चाई पर जोर दिया गया। सार्वजनिक पैसे का भलीभांति हिसाब रखकर, उसे समय-समय पर जनता को दिखाना और इसे पवित्र कर्तव्य समझना उनकी संस्था व्यवहार के बारे में संकल्पना थी।

उन्होंने दलित विद्यार्थियों के लिए छात्रावास, उत्तम ग्रंथालय और प्रयोगशाला आदि सुविधाओं की भी व्यवस्था की। शिक्षण संस्थाओं में अध्यापकों की नियुक्ति करते समय उन्होंने जाति को नहीं, बल्कि योग्यता को महत्व दिया। उनका आग्रह था कि मेरे विद्यार्थियों को गुणी अध्यापकों से सर्वोत्तम ज्ञान मिलना चाहिए। बाबासाहेब के समय इन शिक्षा संस्थाओं में कार्यरत रहे प्राध्यापकों की और प्राचार्यों की नामावली देखी जाए तो वे कितने उच्च स्तर के नामवर थे, इसका उदाहरण मिलता है। वे समाज को तत्वनिष्ठ व्यवहार और उत्कृष्ट विचार देकर रुके नहीं। आदर्श शिक्षा केन्द्र कैसा होना चाहिए, उसका एक आदर्श उन्होंने समाज के सामने रखा।

महाविद्यालय के प्राध्यापकों को संबोधित करते हुए वे कहते हैं, 'अध्ययन और अध्यापन के काम में प्राध्यापक इतने जुट जाएं कि अपने घर की ओर देखने के लिए भी उनको वक्त न मिले। अध्ययन और अध्यापन के साथ अनुसंधान भी आ जाता है। उनका केवल विद्वान होना ही अपेक्षित नहीं, वे बहुश्रुत भी हों, उनमें विषय को रंजक बनाने की कला और उत्साह हो। इनमें से कुछ गुण तो आपमें होंगे ही, पर कुछ अध्ययन और अनुभवों के द्वारा साध्य करने होंगे।'

अध्यापकों को संबोधित करते हुए वे कहते हैं कि 'प्रत्येक पीढ़ी एक स्वतंत्र राष्ट्र है, ऐसा हम मानें। हर पीढ़ी को बहुमत से स्वयं को बंधित करने का हक है। दूसरे देश पर बंधन लादने का अधिकार जैसे उन्हें नहीं, वैसे ही अपने पीछे आने वाली पीढ़ी पर बंधन डालने का भी उन्हें हक नहीं है।' इन विचारों से बाबासाहेब ने सच्चे लोकतंत्र का सार हमारे सामने रखा है।

> बाबासाहेब का कहना था कि अपने ही लोगों की अप्रामाणिकता और विश्वासघात के कारण इतिहास में भारत ने अपनी स्वतंत्रता गंवाई थी। दाहिर के सेनापति ने मीर कासिम की ओर से रिश्वत ली थी, मोहम्मद गोरी को निमंत्रण देने वाला जयचंद था और कई मराठा व राजपूत सरदार शिवाजी के खिलाफ मुगलों की ओर से लड़े थे। स्वतंत्रता की रक्षा के लिए भारतीयों में बंधुता अनिवार्य है।

पाठशाला और शिक्षा संस्था

डॉ. आंबेडकर कहते हैं कि पाठशाला एक पवित्र संस्था है। वहां छात्रों के मन सुसंस्कृत होते हैं। इसीलिए पाठशाला का कारोबार अनुशासन से चलना चाहिए। अन्य जगहों पर अंधाधुंध कारोबार से सार्वजनिक पैसे की हानि होगी, परंतु शिक्षा के कारोबार में अगर अंधाधुंध गड़बड़ी हो जाए तो नई पीढ़ी का नुकसान होगा। इस भेद और धोखे को कोई भी, कभी भी न भूले। 'बहिष्कृत भारत' के एक लेख में वे कहते हैं, 'पाठशाला के छात्रों के मन को समाजहित के लिए मोड़ देना चाहिए। पाठशाला उत्तम नागरिक बनाने का कारखाना है। अर्थात् इस कारखाने में फोरमैन जितना कुशल, उतना अच्छा माल कारखाने में तैयार होगा।' अध्यापकों और संस्था चालकों के लिए कारोबार का बाबासाहेब का दिशादर्शन है यह।

बाबासाहेब ने शिक्षा क्षेत्र की आदर्श संस्था का श्रीगणेश पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी की स्थापना करके किया। शिक्षा संस्था के संचालन की जो नियमावली बाबासाहेब ने तैयार की, उससे शिक्षा संस्था के आदर्श कारोबार और व्यवहार के बारे में उनका दृष्टिकोण स्पष्ट होता है। वे शिक्षा संस्थाओं में अध्यापक-प्राध्यापकों की नियुक्ति करते समय जाति-पांति का नहीं, उच्च योग्यता का आग्रह करते हैं। वे कहते हैं कि मेरी शिक्षा संस्थाओं में पिछड़े वर्ग के छात्रों के प्रवेश को सर्वाधिक प्रधानता है, परन्तु उन्हें पढ़ाने वाला अध्यापक वर्ग केवल उच्च योग्यता वाला ही हो, भले ही वह किसी भी जाति का क्यों न हो। उनका मानना था कि राजनीतिक दलों को भी शिक्षा कार्य करना चाहिए और उसके लिए शिक्षा संस्थाओं का जाल तैयार करना चाहिए। इसी वजह से उन्होंने शे.का. फेडरेशन के घोषणा पत्र में इस विषय का स्पष्ट उल्लेख करने वाली धारा को समाविष्ट किया।

बाबासाहेब सहशिक्षा के समर्थक थे। उन्होंने कहा है कि स्त्रियों को पुरुषों की बराबरी में एक साथ शिक्षा प्राप्त हो। वे कहते हैं कि स्त्रियों के साथ रहकर भी जो पुरुष अपना मन काबू में रखते हैं और पुरुषों के संग में रहकर भी जो स्त्रियां अपना पांव न फिसले, इस बारे में सजग रहती हैं, उन्हें नीतिमान कहना चाहिए। बाबासाहेब का स्पष्ट मत था कि संस्था चालकों को सहशिक्षा को प्रोत्साहन देना चाहिए।

छात्रों का दायित्व

बाबासाहेब स्वयं अनेक वर्षों तक प्राध्यापक रहे थे, अतः छात्रगण से उनका गाढ़ा परिचय था। शिक्षा से छात्रों का आत्मविश्वास जागना चाहिए, इस विचार को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं-आत्मविश्वास जैसी दूसरी दैवी शक्ति नहीं, हमें अपना आत्मविश्वास कभी गंवाना नहीं चाहिए। बाबासाहेब मूल्य शिक्षा पर बल देते हुए कहते थे कि विद्या, विनय, शील और कड़ा अनुशासन - सब कुछ छात्रों को आत्मसात करना चाहिए। विद्या के साथ शील चाहिए, क्योंकि शील के बिना विद्या व्यर्थ है। वे कहते थे कि शिक्षा से छात्रों की सामाजिक संवेदनाएं भी सजग होनी चाहिए। छात्रों को राजनीति में दखलअंदाजी नहीं करनी चाहिए। अगर वे अध्ययन छोड़कर राजनीति को अपनाने लगेंगे, तो जीवनभर उनकी हानि होगी।

उपाधि की सीमाएं स्पष्ट करते हुए बाबासाहेब कहते हैं कि केवल उपाधि धारण करके कुछ भी साध्य नहीं होगा, क्योंकि विश्वविद्यालयों की उपाधियों और बुद्धिमत्ता में अन्योन्य संबंध होता हो, ऐसा नहीं है। परीक्षा में सफल होना और उपाधि पाना अलग है और सुशिक्षित और ज्ञानी होना अलग है। अर्थात् उनकी छात्रों से यह अपेक्षा थी कि छात्रों का भारवेत्ता होने से ज्ञानवेत्ता होना ज्यादा जरूरी है।

छात्रों की कमियों को सही ढंग से जानते हुए बाबासाहेब कहते हैं कि विषय की जड़ तक पहुंचकर सम्यक् ज्ञान का मार्मिक आकलन करके उसकी भलीभांति रचना करने की योग्यता, सर्वसाधारण ज्ञान की बुनियादी अवस्था, युक्तिवाद, निर्दोष मत प्रदर्शन, प्रश्नों के तर्क की कसौटी पर उत्तर खोजना, मन के विचारों को सुस्पष्टता से रखना - आदि बातें छात्रों में आजकल कम मात्रा में दिखाई देती हैं।

सिद्धार्थ महाविद्यालय के छात्रों को संबोधित करते हुए बाबासाहेब कहते हैं -'शिक्षा से आपके मन, दृष्टि, विचारशक्ति, समस्या सुलझाने की ताकत

सौजन्य : जतिंदर खरबंदा, जोधाराम त्रिलोक चंद, मंडी केसरगंज, लुधियाना

आदि का विकास होना चाहिए। आज हमारा देश जिन समस्याओं से जूझ रहा है, उन समस्याओं के बारे में इस शक्ति के माध्यम से अपना अभिमत बनाने में उस शक्ति का, दृष्टि का पूर्ण उपयोग करना चाहिए। इतना ही नहीं, राजनीतिज्ञों को इन समस्याओं को सुलझाने में आपके इस ज्ञान का उपयोग करना चाहिए। आपकी सहकारिता से वे उत्तर खोजे जाने चाहिए। अगर वे कहीं गलती कर रहे हैं तो निडरता से, स्पष्टता से उन्हें बताने का साहस शिक्षा से प्राप्त होना चाहिए।' इतनी बड़ी अपेक्षा वे छात्रों से रखते थे।

अध्यापकों की योग्यता

स्वयं एक उत्कृष्ट अध्यापक रहे बाबासाहेब की अध्यापक वर्ग से क्या अपेक्षाएं थीं। उनका कहना था कि शिक्षा एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है और अध्यापक उसका मुख्य आधार है। इसीलिए शिक्षा और योग्यता उनकी ज्ञानपिपासा, विद्याव्यासंग, आत्मीयता और ध्येयासक्त जीवनदृष्टि इन बातों पर निर्भर है। बाबासाहेब ने अपनी ज्ञानसाधना में वाचन-मनन, चिंतन और अध्ययन के त्रिसूत्र को अपनाया था। इसी वजह से वे स्वयं एक उत्कृष्ट अध्यापक और व्यापक अर्थ में समाजशिक्षक बन पाए। इस संदर्भ में उनकी भूमिका पहले करनी बाद में कथनी थी।

अध्यापक को बहुश्रुत होना आवश्यक है। उसे अपने विचारों का विन्यास अच्छी तरह करना जरूरी है, अपने और दूसरों के विचार जांचना जरूरी है, तभी वे छात्रों को अध्ययन करने तथा विचार करने के लिए प्रवृत्त कर सकेंगे। वह तेज बुद्धि का और चयनशीलवृत्ति का हो। उसमें चिकित्सकवृत्ति तथा मर्मज्ञता हो। उनकी दृष्टि में अध्यापक वर्ग राष्ट्र का सारथी है, क्योंकि उनके हाथों में शिक्षा की बागडोर होती है। अतः पाठशालाओं में सम्बुद्धि वाले, उदात्त विचारों से भरपूर और विशाल हृदय के अध्यापक होना जरूरी है।

शिक्षा नीति

डॉ. आंबेडकर ने अपनी शिक्षा विषयक नीति क्रमबद्ध रूप से ग्रंथित नहीं की। इस संदर्भ में उनके रखे विचार अन्य स्थानों पर अलग-अलग माध्यमों द्वारा व्यक्त हुए हैं। उनकी संपादित पत्रिकाएं, स्थापित की हुई सामाजिक और शिक्षा संस्थाओं के ध्येय और नीतियों से उनके विचारों का पता चलता है। उनके अन्यान्य शासकीय समितियों, आयोगों के सामने दिए गए साक्ष्य, प्रस्तुत किए गए पत्र-प्रपत्र इनके माध्यम से भी शिक्षा नीति का चिंतन सामने आता है। विविध परिषदों में, सम्मेलनों में, महाविद्यालयों तथा शिक्षण संस्थाओं में दिए भाषणों के द्वारा भी विचार प्रस्तुत हुए हैं। वैधानिक क्षेत्र अर्थात् बंबई विद्यापीठ सीनेट, शिक्षण संस्थाओं में उनके भाषणों में भी विचार प्रस्तुत हुए। बंबई विधिमंडल, महाराज्यपाल की मंत्रिपरिषद, संविधान सभा, लोकसभा आदि में हुई चर्चाओं में उन्होंने शिक्षा नीति के अनेक मुद्दों पर विशद विचार व्यक्त किए हैं। उनके विस्तृत चिंतन में शिक्षा क्षेत्र की सामाजिक विषमताएं, उस पर उपाय, साक्षरता प्रसार और विकास की आवश्यकता, प्राथमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा और संशोधन, व्यवसाय प्रशिक्षण, तंत्र शिक्षा जैसे विषय विविध स्तरों के संदर्भ में दिखाई देते हैं। उनके व्यापक चिंतन में से कुछ विशेष मुद्दों पर विचार इस प्रकार हैं :

एकसूत्रीय राष्ट्रीय नीति

केन्द्रीय सत्ता की परिकल्पित एकसूत्रीय राष्ट्रीय नीति से ही सार्वजनिक शिक्षा की समस्या - यह खंड-खंड करके सुलझने वाला प्रश्न नहीं है, बल्कि यह प्रश्न एकसूत्री नीति से ही सुलझ सकता है, क्योंकि शिक्षा निरंतर चलने वाली प्रदीर्घ प्रक्रिया है। शिक्षा क्षेत्र को सच्चे अर्थों में स्वतंत्र होना चाहिए, उस पर व्यक्ति की सत्ता धोखादायक है। शिक्षा की जिम्मेदारी स्थानिक स्वराज्य संस्थाओं को न सौंपें। वे कहते हैं, शिक्षा गटर साफ करने जैसी बातों से भिन्न है, यहां कारोबार उपयुक्त नहीं।

...भारत की स्वतंत्रता के लक्ष्य पर कोई विवाद नहीं।...
– समर्थकों की बैठक, मुंबई, 10 मई, 1945

शिक्षा अन्न के समान

साक्षरता प्रसार और विकास तथा सार्वत्रिक शिक्षा के उद्देश्य पर बल देते हुए बाबासाहेब कहते हैं कि एक बार बच्चे ने प्राथमिक शाला में प्रवेश ले लिया, तो वह साक्षर हो गया, ऐसा नहीं है। जब तक उसमें जीवनभर साक्षर रहने की क्षमता विकसित नहीं होती, तब तक वह प्राथमिक शाला या साक्षरता वर्ग न छोड़े। उनकी दृष्टि में शिक्षा अन्न के समान है, उसकी आवश्यकता जीवनभर होती है। उनको दृढ़ मत था कि इस संदर्भ में पूरी जिम्मेदारी शासन को ही उठानी होगी।

सामाजिक विषमता

शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त सामाजिक विषमता के बारे में बाबासाहेब का मत अत्यंत स्पष्ट है। सन् 1927 में बंबई विधिमंडल में दिए भाषण में उन्होंने इस संदर्भ में प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा स्तर पर जो विषमता है, उसकी सांख्यिकी प्रस्तुत की। उस पर आधारित निष्कर्ष थे- समूचे हिन्दू समाज में निरक्षरता का परिमाण 82.5 प्रतिशत है, उसमें भी पिछड़े समाज में वह 98 प्रतिशत जैसा भयंकर है। माध्यमिक और उच्च शिक्षा के स्तर पर पिछड़े वर्ग की अवस्था अत्यंत दयनीय है। शैक्षिक विषमता की जड़ सही मायने में सामाजिक और आर्थिक विषमता में है।

उपाय

इस परिस्थितियों के उपाय बताते हुए वे कहते हैं कि असमान बर्ताव तत्व को स्वीकार करके कुछ वर्गों को विशेष सहूलियतें देने की आवश्यकता है। जो निम्नस्तरीय हैं, उन्हें विशेष दर्जा और सहूलियत देने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। वे कहते हैं, केवल छात्रवृत्ति देने से पिछड़े वर्ग की समस्या नहीं सुलझ पाएगी। छात्रावास, अभ्यासगृह, बालवाड़ी, संस्कार केन्द्र आदि से उनके लिए उचित, प्रेरणादायी सामाजिक वायुमंडल का निर्माण करना आवश्यक है। आगे चलकर भारतीय संविधान में शामिल हुए आरक्षण नीति के बीज उनके इस भाषण में मिलते हैं।

समाज परिवर्तन एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। शिक्षा से समाज परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त होता है। बाबासाहेब कहते हैं कि परिवर्तन की इस प्रक्रिया को गति देने के लिए समाज मानस में परिवर्तनवादी विचार दृढ़ होना

सौजन्य : विनोद गोयल, वोमैक्स इंटरप्राइजेज, लुधियाना

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 8:14 PM Page 20

आवश्यक है। व्यापक एवं सार्वत्रिक शिक्षा द्वारा ये विचार समाज में दृढ़ बन सकते हैं। शिक्षा का सामाजिक आशय कभी भी आंखों से ओझल नहीं होना चाहिए। शिक्षा की संकल्पना के अंतर्गत 'पढ़ो और पढ़ाओ' की प्रक्रिया अभिप्रेरित होती है। उसी से समाज की प्रगति संभव होती है। बाबासाहेब कहते हैं कि शिक्षा के बिना किसी भी समाज में संवेदनशीलता, प्रतीति या सजगता निर्मित नहीं होगी तथा बिना जागृति के समाज की उन्नति भी नहीं होती। शिक्षा का आशय खासकर ऐहिक होना चाहिए। उनकी व्यावहारिक अपेक्षा थी कि समाज में जो विषमताएं हैं, वे शिक्षा के माध्यम से दूर हों। वे एक आदर्शवादी विचार सामने रखते हैं कि शिक्षा किसी के व्यक्तित्व में निहित सुप्त शक्तियों को मुक्त करती है और मनुष्य को पशुता से मनुष्यत्व की ओर ले जाती है। बाबासाहेब यह कहने से भी नहीं चूकते थे कि शिक्षा का हेतु व्यक्ति का सामजिकीकरण और नैतिकीकरण करना है क्योंकि सभ्यता और संस्कृति की बुनियाद शिक्षा ही है।

बाबासाहेब की ज्ञान की संकल्पना बड़ी ही व्यापक और आदर्श है। वे कहते हैं कि विद्या, प्रज्ञा, करुणा, शील और मित्रता इन पंचतत्वों के अनुसार हरएक को अपना चरित्र निर्माण करना चाहिए। वे कहते हैं कि विद्या के साथ शील भी चाहिए, शील के बिना विद्या व्यर्थ है। विद्या तलवार के समान है इसीलिए जो उसे धारण करे, उस पर उसकी महत्ता अवलंबित है। बुद्धि और चतुराई को सदाचार अर्थात् शील का साथ मिलना चाहिए। बगैर शील के अगर शिक्षित लोग निर्मित होने लगेंगे, तो उनकी शिक्षा से राष्ट्र और समाज का नाश होगा। मनुष्य का निर्माण करे, वह शिक्षा। ज्ञान और प्रज्ञा का सुचारु मेल माने शिक्षा। व्यक्ति को स्वत्व की प्रतीति कराना शिक्षा का कार्य है।

ज्ञान का अर्थ है प्रकाश। गौतम बुद्ध की दी हुई शिक्षा की यह परिभाषा बाबासाहेब को भाती है। यह प्रकाश सामाजिक, आर्थिक, राजकीय क्रांति का आधार बनना चाहिए। प्रकाश शब्द का विश्लेषण वे इस प्रकार करते हैं- शिक्षा का संदर्भ सामाजिक होना चाहिए, शिक्षा शोषणमुक्ति का महामार्ग है, अतः समाज में जो पीड़ित, उपेक्षित, शोषित घटक हैं उनकी दैन्यावस्था मिटाने वाला अचूक उपाय है शिक्षा । उनकी दृष्टि से समाज में जो पददलित हैं, उनकी आत्मनिर्भरता और आत्मसम्मान का आंदोलन है शिक्षा। वे समाज के निम्नस्तर को उच्चस्तर तक उठाने के लिए शिक्षा और शिक्षा में आरक्षण के दोहरे उपायों के कठोर क्रियान्वयन की जरूरत मानते हैं। समताधिष्ठित, मूल्याधिष्ठित और नीतिमान समाज- यह सफल लोकतंत्र की पूर्वशर्त है और यह संस्कार केवल शिक्षा के माध्यम से ही हम पा सकते हैं। उनका यह प्रतिपादन चिंतनीय है।

> पहले और बाद में भी, हम भारतीय हैं।
> - बाबासाहेब

समाज में निरक्षरता के परिमाण के बारे में चिंता व्यक्त करते हुए बाबासाहेब कहते हैं कि इसी निरक्षरता ने जनता को मानसिक दृष्टि से गुलाम, आर्थिक दृष्टि से दरिद्र, सांस्कृतिक दृष्टि से लूला-लंगड़ा और सामजिक दृष्टि से पिछड़ा बना दिया। इसी वजह से समाज विदेशी आक्रमकों के विरुद्ध संघर्ष करने की ताकत खो बैठा है। उनके इस अभिप्राय का भावार्थ समझने की आवश्यकता है। बाबासाहेब ने शिक्षा और शिक्षाशास्त्र की केवल तात्विक चर्चा नहीं की है। उनका शिक्षा संबंधी ध्येय यह है कि औपचारिक शिक्षा को नैतिकता का साथ मिलना चाहिए।

बंबई विश्वविद्यालय से बीए की उपाधि पाने के बाद सन् 1913 में वे उच्च शिक्षा हेतु अमरीका गए। कोलंबिया विश्वविद्यालय से उन्होंने एमए और पीएचडी की उपाधि प्राप्त की। अनेक चर्चा सत्रों में उन्होंने शोध निबंध भी प्रस्तुत किए। बाद में इंग्लैंड जाने के बाद उन्होंने लंदन विश्वविद्यालय, लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स तथा ग्रेज इन नामक विश्वमान्य संस्थाओं में अध्ययन किया। वहां उन्होंने एमएससी, डीएससी, एलएलडी, बार एट लॉ ये उपाधियां सम्मान सहित प्राप्त कीं। सन् 1952 में कोलंबिया विश्वविद्यालय ने उन्हें डीलिट की उपाधि सम्मान के साथ प्रदान की। हर उपाधि के लिए उन्होंने ज्ञानसाधना कर स्वतंत्र संशोधन ग्रंथ लिखे और वे ग्रंथ विश्वविख्यात हुए। इनमें प्रमुख रूप से सामाजिक, आर्थिक और वित्तीय विषयों के ग्रंथों का समावेश है। विदेश से वापस आने पर देश के सामने जो अनेक समस्याएं थीं, उनपर अध्ययन करके उन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे। उनका अध्ययन और लेखन निर्बाध गति से सदा चलता रहा। सडसठ साल की उम्र में उनकी जीवनयात्रा समाप्त हुई। उससे कुछ दिन पूर्व उन्होंने 'बुद्ध और धम्म' नामक महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखकर पूरा किया था। उनका समग्र साहित्य 22 खंडों में 15,000 पृष्ठों में ग्रंथित हुआ है। बाबासाहेब के इस योगदान का परामर्श लेना एक स्वतंत्र अध्ययन का विषय है।

बाबासाहेब ने वैचारिक विश्व में जो परिवर्तन किया, उसका प्रमुख आधार रहा उनका अखंड ग्रंथ पठन। वे विदेशी विश्वविद्यालयों के ग्रंथालयों में प्याला भर दूध और ब्रेड के दो चार टुकड़े खाकर 18-18 घंटे अध्ययन करने वाले विद्यार्थी थे। पेट काटकर उन्होंने 35,000 ग्रंथ खरीदे। और तो और, हर ग्रंथ बारीकी से पढ़ा हुआ और हाशिये में टिप्पणी किया हुआ था। ग्रंथ तो मानो उनके प्राण ही थे। पं. मदनमोहन मालवीय जी ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए इन ग्रंथों की मांग की थी। वे उन ग्रंथों के लिए मुंहमांगा दाम देने के लिए तैयार थे। उसे बड़ी नम्रता से अस्वीकार करते हुए बाबासाहेब ने कहा, 'आप तो मानो मेरे प्राण ही मांग रहे हैं।'

शिक्षा विषयक चिंतन

शिक्षा लो, संगठित हो और संघर्ष करो- बाबासाहेब ने प्रगति का यह मूलमंत्र समाज को दिया। इस मूलमंत्र में शिक्षा का प्रथम स्थान है। परंतु उनका शिक्षा विषयक चिंतन, सुसंगठित रूप में, प्रबंध रूप में उपलब्ध नहीं बल्कि अन्यान्य रचनाओं में बिखरा पड़ा है। सम्मेलनों और परिषदों में किए हुए भाषण, पत्रवांग्मय, पत्रिकाओं में छपे लेख, शिक्षा संस्थाओं को दी भेंट, प्रांतिक या केन्द्रीय विधिमंडलों में तथा विश्वविद्यालयों में किये भाषण, अन्यान्य वर्गों के सामने दिए हुए साक्ष्य आदि में ये विचार व्यक्त हुए हैं। अपने समग्र चिंतन में शिक्षा का तत्वज्ञान, ध्येयवाद, शिक्षा का सामाजिक आशय, पाठ्यक्रम का स्वरूप और ध्येय, विद्यार्थियों का दायित्व, अध्यापकों की पात्रता, पाठशाला तथा महाविद्यालयों की जिम्मेदारी, शिक्षा क्षेत्र में रखे गए आरक्षण और उनकी मीमांसा जैसे शिक्षा विषयक अलग-अलग पहलुओं पर उन्होंने भाष्य किया है। प्राथमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा, विश्वविद्यालयों का कारोबार, साक्षरता प्रसार, सार्वत्रिक शिक्षा की अनिवार्यता आदि बातों की भी उन्होंने चर्चा की है। उन्होंने सैद्धांतिक रचना के साथ व्यावहारिकता को भी महत्व दिया। हम अब उनकी इसी विचारसंपन्नता का संक्षिप्त लेखा- जोखा लेंगे।

बाबासाहेब का मत था कि शिक्षा और समाज का एक अटूट रिश्ता होता है क्योंकि शिक्षा ही समाज के सांस्कृतिक उन्नयन का आधार होती है। वे कहते हैं कि समाज द्वारा अपना स्तर अधिक से अधिक उंचा उठाने के लिए सामूहिक पद्धति से किया प्रयास शिक्षा होता है। समताधिष्ठित समाजनिर्मिति के लिए शिक्षा जैसा दूसरा कोई साधन नहीं है। समता के लिए सबको शिक्षा मिलना जरूरी है। समता के सिवाए स्वतंत्रता माने परतंत्रता को आमंत्रण। अपना यह मुद्दा स्पष्ट करते हुए बाबासाहेब कहते हैं कि सामाजिक समानता और स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए आवश्यक होने वाली शक्ति शिक्षा है। वे यह भी कहते हैं कि व्यक्ति की स्वतंत्रता को अबाधित रखने और उसकी रक्षा के लिए काम आने वाली ताकत शिक्षा से ही प्राप्त हो सकती है। इससे उनका शिक्षा विषयक विस्तृत दृष्टिकोण स्पष्ट होता है। ■

(लेखक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह सरकार्यवाह हैं)

सौजन्य : आर्यावर्त कोऑपरेटिव अर्बन थ्रिफ्ट एण्ड क्रेडिट सोसाइटी लि., अध्यक्ष-विनोद गोयल, महामंत्री- प्रवेश कुमार

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 9:16 PM Page 21

नेता हो तो उनके जैसा

» मधुभाई कुलकर्णी

भारतरत्न तथागत पू. डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी का जीवन युवा वर्ग के लिए आदर्श मार्गदर्शक तथा अनुकरणीय है। राजनीति छोड़कर किसी भी क्षेत्र में जो अपना 'करिअर' विकसित करना चाहते हैं उनके लिए अत्यंत प्रेरणादायक है। अनुसूचित जाति के लिए नहीं, सभी भारतीयों के लिए यह गौरव की बात थी। अनुसूचित जाति में जन्मा बालक संपूर्ण समाज का विधि-विधाता बन गया। धरती की धूल शिखर पर जा पहुंची। सदियों पश्चात एक नए युग का सूत्रपात डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी के कारण हुआ है।

आनंद तथागत गौतम बुद्ध के प्रिय शिष्यों में से थे। तथागत का निर्वाण समय नजदीक आया देख आनंदजी ने प्रश्न पूछा- आपके बाद हम किससे मार्गदर्शन लें? महात्मा गौतम बुद्ध ने कहा 'अत्त दीपो भव।' कोई कहता है इसलिए मत मानो, मैं कहता हूं इसलिए भी मत मानो। आप स्वयं जानने का प्रयास करो। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी का जीवन 'अत्त दीपो भव' का मूर्तिमंत उदाहरण है। किसी भी विषय का मूल में जाकर अध्ययन करना उनका स्वभाव था। 16-16 घंटे अध्ययन में लगाते थे। संस्कृत सीखी, वेद-उपनिषदों का गहराई से अध्ययन किया। अपने अध्ययन के आधार पर 'हू वर द शूद्राज ?' किताब लिखी। आर्य बाहर से नहीं आये इसका प्रतिपादन किया। 'हिन्दू कोड बिल' बनाया। उनके द्वारा लिखी पुस्तकों की केवल सूची पढ़ेंगे तो उनके 'अत्त दीपो भव' की कल्पना आएगी : -

1. Administration and Finance of East India Company.
2. Small Holdings in India and their remedies.
3. Evolution of Provincial Finance in British India.
4. Problem of Rupee.
5. Caste in India.
6. Annihilation of Caste with reply to Mahatma Gandhi.
7. Mr. Gandhi and the Emancipation of the untouchables.
8. What congress and Gandhi have done to untouhables?
9. Who were the Shudras?
10. The Untouchables.
11. State and Minorities.
12. Mr. Rusell and Reconstruction of Society.
13. Riddles in Hinduism
14. Thoughts on Pakistan
15. Ranade, Gandhi and Jinnah
16. Thoughts on Linguistic States
17. The Buddha and his Dhamma

एक बार आत्मविश्वास के साथ उन्होंने कहा - 500 विद्वानों की बराबरी मैं अकेले कर सकता हूं। आधे अधूरे ज्ञान पर उन्होंने कोई मत बनाया नहीं है। एक जीवन में एक ध्येय को सामने रखकर जो पूरा जीवन लगाते हैं उनकी गणना महान विभूतियों में होती है। उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था अस्पृश्य होने के आधार पर दूर धकेले गए समाज की उन्नति करना। उनको स्वाभिमान से खड़ा करना। उनको न्याय अधिकार प्राप्त कराना। महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ जी को उन्होंने कहा था- समाजशास्त्र और पब्लिक फाइनैन्स विषयों में उच्च शिक्षा लेने के लिए विदेश जाने की इच्छा है। इससे मेरे समाज बांधवों की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति बदलने के लिए क्या उपाय योजना हो सकती है, इसकी जानकारी मुझे मिलेगी और मैं उस कार्य में अपना जीवन लगाना चाहता हूं। अस्पृश्य वर्ग की गुलामी सर्वकष गुलामी थी। राजकीय, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, वैचारिक गुलामी में समाज जकड़ा हुआ था।

समाज के नेतृत्वकर्ता के रूप में बाबासाहेब अतुलनीय हैं तो अपने अर्जित गुणों के कारण। जिज्ञासा, अध्ययनशीलता और समस्याओं से जूझने के कारण। विकारों से दूर रहते हुए समाज की चिंताओं में स्वर मिलाने वाला व्यक्तित्व कैसा प्रखर नेतृत्व दे सकता है, इसके वह उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

एक सभा को संबोधित करते हुए बाबासाहेब।

सौजन्य : सुरेश गुप्ता, नवीन शाहदरा, दिल्ली

इंग्लैंड और फ्रांस देशों की एकत्रित जनसंख्या जितना बड़ा समाज जन्म से अपवित्र माना जाता था। डॉ. आंबेडकर जी ने सभी मोर्चों पर एकाकी संघर्ष किया। उन्होंने सत्याग्रह किए, पत्रिका प्रकाशन, शिक्षण संस्थानों की स्थापना की, संविधान में अस्पृश्यता को कानूनन अपराध घोषित करवाया तथा अंत में बौद्ध धर्म की सामूहिक दीक्षा ली। सभी कार्यों का उद्देश्य एक ही था। डॉ. आंबेडकर जी के जीवन की केवल घटनाओं की कल्पना करें, तो उनके ध्येय समर्पित जीवन की कल्पना आ जाती है।

1920 में मूकनायक साप्ताहिक, 1923 में बैरिस्टर, 1927-28 में महाड चवदार तालाब का सत्याग्रह, बहिष्कृत भारत साप्ताहिक, 1930 में कालाराम मंदिर नासिक सत्याग्रह, जनता साप्ताहिक, 1936 में स्वतंत्र मजदूर पक्ष की स्थापना, 1942 में ऑल इंडिया शेड्यूल कास्ट फेडरेशन की स्थापना, 1945 में पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी की स्थापना, 1947 में में संविधान मसौदा समिति के अध्यक्ष। कोलंबो में विश्व बुद्ध परिषद में उपस्थिति, 1953 में सिद्धार्थ कॉलेज ऑफ कॉमर्स एंड इकॉनामिक्स की स्थापना, 1955 में भारतीय बौद्ध महासभा के संस्थापक, 1956 में सिद्धार्थ कॉलेज ऑफ लॉ स्थापना, बौद्ध धर्म सामूहिक दीक्षा समारंभ।

अस्पृश्य समाज बांधवों के बारे में उनकी संवेदना मां के अंतःकरण की संवेदना थी। व्यक्तिगत स्वार्थ, खुद का नाम बड़ा हो या सत्ता में स्थान मिले ऐसी छुद्र इच्छा से कोई काम नहीं किया। विदेश में रह जाते तो उनके खानदान का आर्थिक लाभ होता, अवमानना न होती।

राष्ट्रीय चेतना जागृत करने में जिन महापुरुषों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कालखण्ड में अपने जीवन की बाजी लगाई उसमें भारतरत्न तथागत पू. डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी का नाम पहली पंक्ति में लिखना होगा। अस्पृश्यता की समाजघातक दुष्ट रूढ़ि के खिलाफ अनेक महापुरुषों ने काम किया। लेकिन हीनता की ग्रंथि से पीड़ित, जानवरों से भी बदतर जीवन जीने वाले अपने समाज के वर्ग में ज्ञान संपादन की लालसा उत्पन्न करने में और स्वाभिमानपूर्वक जीवन जीने की प्रेरणा जागृत करने में डॉ. बाबासाहेबजी की बराबरी कोई नहीं कर सकता। महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, स्वातंत्र्यवीर सावरकर, डॉ. हेडगेवार ऐसी अनेक समकालीन विभूतियां हैं। सभी ने राष्ट्र जीवन पर अमिट छाप छोड़ी है। महापुरुषों में तुलना नहीं हो सकती। गुलाब गुलाब है, मोगरा मोगरा है। समाज के जिस वर्ग से और जिस परिस्थिति में भीमराव खड़े हुए, वह युगप्रवर्तक घटना थी। अस्पृश्य समाज के स्वाभिमान और अस्मिता निर्माण करने में वे यशस्वी हुए-यह उनका कार्य राष्ट्र जीवन समृद्ध करने वाला है।

17 अगस्त 1952 को शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन के कार्यकर्ताओं के सामने उन्होंने कहा, 'अस्पृश्य बांधवों के मन में स्वाभिमान जागृति निर्माण करना और उनको राजकीय अधिकार प्राप्त करा देना यह मेरा स्वप्न था। उसमें सफल हुआ हूं, ऐसा मुझे लगता है।'

स्वामी विवेकानंद जी ने खुद का अनुभव नीचे के शब्दों में लिखा है- जब मस्तिष्क इच्छाशक्ति में बदल जाता है, स्नायु तंत्रों का वैद्युत प्रवाह बिजली की तरह हो जाता है। इससे पता चलता है कि जब इच्छा शक्ति स्नायु तंत्र के विद्युत प्रवाह में बदलती है, तो वह बिजली बन जाती है। जब शरीर की हर गति पूरी तरह लय में आ जाती है, तो शरीर इच्छाशक्ति की किसी विशाल बैटरी में बदल जाता है।

क्या डॉ. आंबेडकर जी ने अपनी प्रत्येक हलचल, गतिविधि, पढ़ना-लिखना, कानून मंत्री, संविधान मसौदा समिति का अध्यक्ष पद या बौद्ध धम्म दीक्षा एक ही लक्ष्य सामने रखकर जीवन का सर्वस्वार्पण नहीं किया?

जिनको कुछ करके दिखाना है, उनमें आत्मविश्वास व निर्भयता होना आवश्यक है। थॉट्स ऑन पाकिस्तान पुस्तक में वे लिखते हैं, इस्लामी भ्रातृत्व विश्वव्यापी भ्रातृत्व नहीं है। जो मुसलमान समूह से बाहर है उनके बारे में उनके मन में घृणा और शत्रुत्व की भावना ही रहती है। इस्लाम मुसलमान को भारत की अपनी मातृभूमि और हिन्दू को अपना भाई मानने की इजाजत नहीं देता।

एनीहिलेशन ऑफ कास्ट पुस्तक में महत्व के निष्कर्ष हैं। चातुर्वर्ण्य के आधार पर हिन्दू समाज का पुनर्निर्माण असंभव है और हानिकारक भी है। समाज का पुनर्गठन ऐसे तत्वों पर किया जाना चाहिए जो समता, स्वतंत्रता, बंधुता के पोषक हों। जातिभेद और वर्ण का धार्मिक अधिष्ठान नष्ट करना चाहिए।

बहिष्कृत भारत (21 सितंबर 1928) में वे लिखते हैं, अत्यन्त प्राचीन काल में उदय हुए राष्ट्रों में से हिन्दू राष्ट्र एक है। यह बात इतनी मशहूर है कि किसी को भी इसे बार-बार बोलने की आवश्यकता नहीं... हिन्दूराष्ट्र का अधःपतन उसके विकृत धर्मशास्त्र के कारण हुआ है। हिन्दू चेतना जैसा कुछ नहीं है। जिस चेतना का अस्तित्व है, वह जाति चेतना है। जब तक जाति रहेगी, तब तक कोई संगठन नहीं होगा, और जब तक कोई संगठन नहीं होगा, तब तक हिन्दू कमजोर और दीन बने रहेंगे। समाज का मार्गदर्शन करने वाले नेतृत्व के विचार बहुत अच्छे हों, लेकिन नेता का चरित्र खराब हो, तो उसके अच्छे विचारों का प्रभाव अनुयायियों पर तथा जनमानस पर अक्सर नहीं पड़ता है। भीमराव आंबेडकर जी ने व्यक्तिगत चारित्र्य, आर्थिक शुचिता को बहुत महत्व दिया है।

> राजनीतिक अत्याचार सामाजिक अत्याचार की तुलना में कुछ भी नहीं है। और एक सुधारक, जो समाज को खारिज कर देता है वह सरकार को खारिज कर देने वाले राजनीतिज्ञ से कहीं अधिक साहसी है।
> **- बाबासाहेब**

वे कहते हैं, 'देश की राजनीति में शीर्षस्थ बैठे लोग चरित्रवान होने चाहिए। संपूर्ण समाज के उत्थान का मनोभाव और व्यक्तिगत स्वार्थों की शून्यता ही श्रेष्ठ चारित्र्य का लक्षण है। विद्या, प्रज्ञा, करुणा, शील व मैत्री-भाव इन धर्मतत्वों से प्रत्येक को अपना चरित्र बनाना चाहिए। आज देश में चारित्र्य ही नहीं बचा है। जिस देश में नैतिकता नहीं होती, उसका भविष्य कठिन होता है। मंत्री देश का उद्धार नहीं करते। जिसने धर्म को भली-भांति समझा है, वही देश को तार सकता है। महात्मा फुले जी को वे अपना आदर्श मानते थे।' अन्य एक स्थान पर वे कहते हैं, 'मेरा तत्वज्ञान राजनीतिकसे नहीं, धर्म से उपजा है। स्वातंत्र्य, समता और बंधुत्व यह तत्व मैंने फ्रेंच राज्यक्रांति से नहीं, तो भगवान बुद्ध से लिए हैं।'

जीवन गढ़ने में जिन व्यक्तियों का सहयोग मिला, उनके बारे में मन में कृतज्ञ भाव रहना शील का ही अंग है। प्राथमिक विद्यालय के गुरुवर्य श्री आंबावड़ेकर, सेकेंडरी के शिक्षक श्री केलुसकर, बड़ौदा के महाराज सयाजीराव गायकवाड़, कोल्हापुर के छत्रपति शाहूजी महाराज, शिवतारक, प्रोफेसर इराणी, वेदपंडित देवराज नाईक ऐसे अनेक व्यक्तियों को वे कभी भूले नहीं। प्राथमिक विद्यालय के गुरुवर्य श्री आंबावड़ेकर जी ने ही उनमें में बचपन में ही पढ़ने की प्रेरणा जगाई ऐसा वे मानते थे। श्री आंबावड़ेकर जी अपने घर से भोजन का डिब्बा मंगवाते थे और बालक भीम को खिलाते थे। उनके प्रति लगाव इतना कि जीवनभर उनकी स्मृति बनी रहे, इस उद्देश्य से अपना 'सपकाल' नाम छोड़कर आंबेडकर नाम धारण किया।

डॉ. आंबेडकर जी के सार्थक जीवन की ऊंचाई को नापना बहुत कठिन है। 'अस्पृश्य' यह ठप्पा लगने के कारण तथाकथित उच्चभ्रू समाज की ओर से अनेक बार अवमानना सहन करनी पड़ी। विद्याविभूषित होकर विदेश से वापस आने के बाद बड़ौदा में युवा डॉ. भीमराव को रहने के लिए एक कमरा किराये पर नहीं मिला। कारण केवल 'अस्पृश्य' होना! इसकी पीड़ा लेकर वे स्पृश्य समाज से संघर्ष करने खड़े हुए। उनके होते हुए संघर्ष समाप्त नहीं हुआ।

सौजन्य : सुरेंद्र कपिला, मोना एप्परेल्स, लुधियाना

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 9:06 PM Page 23

वे कहते थे, 'अस्पृश्य' यह हमारे शरीर पर लगा हुआ कलंक है। हमको ही इस ग्रंथि से बाहर आना पड़ेगा।' मुसलमान या ईसाई न होते 'अस्पृश्य' कलंक को धोने का एक ही भारतीय मार्ग था, वह मार्ग यानी बौद्ध धम्म स्वीकारना। इतने कटु अनुभव, अवमानना, रूढ़िवादी पत्थर-हृदयी समाज का भेदभावपूर्ण व्यवहार होते हुए भी समाज में आमने-सामने दो वर्ग खड़े हो और हिंसा हो, ऐसी उनकी इच्छा नहीं थी। विरोध, स्पष्ट विचार, तर्कशुद्ध प्रतिपादन था। लेकिन द्वेष, मत्सर की भावना नहीं थी। बदले की भावना नहीं थी। 'अद्वेष्टा सर्व भूतानां मैत्रः करुण एव च' ऐसा पूर्ण अध्यात्मिक अंतःकरण लेकर ही उनका जन्म हुआ था। एक स्थान पर वे कहते हैं, "यदि मैं घृणा और बदले की भावना से ओतप्रोत रहा होता, तो मैं इस धरती पर पांच वर्ष से भी कम समय में तबाही ला देता। " लोग मुझे भारत के इतिहास में विध्वंसक के नाते याद करें ऐसी मेरी इच्छा नहीं है।

नेतृत्व के स्थान पर शिखर पर जो व्यक्ति होता है, उस व्यक्ति को कदम-कदम पर सावधान रहना पड़ता है। लोग पैर छूने लगें, तो अधिक सतर्क होना पड़ता है। समाज की एकता और राष्ट्र का हित इसका अनुसंधान कभी नहीं छूटा। वे संकुचित अर्थ में किसी जाति वर्ग के नेता नहीं थे। वे पूरे देश के नेता थे। राजनैतिक प्रतिनिधित्व का अधिकार किसी भी इच्छा या कृपा का विषय न रहे, इस दृष्टि से संविधान में आरक्षण सुनिश्चित किया गया। परंतु डॉ. बाबासाहेबजी को डर था कि आरक्षण का तत्व राष्ट्रजीवन में स्थायी रूप ले लेगा। अगर ऐसा हुआ तो समरसता, एकात्मता को खतरा ही होगा। इसलिए उन्होंने आग्रह किया कि आरक्षण की समय सीमा बढ़ाने के लिए कानून समय-समय पर बनाना पड़े। कानून न बना, तो आरक्षण व्यवस्था अपने आप समाप्त हो जाएगी।

डॉ. बाबासाहेब अस्पृश्य समाज के लिए 'हरिजन' शब्द का प्रयोग करने के विरोधी थे। हरिजन कहने से 'अस्पृश्य' मान्यता समाप्त होगी, यह संभव नहीं। आज 'दलित' शब्द प्रचलित हो गया है। भय इसी बात का है कि दलित वोट बैंक राजनीति के कारण 'दलित' शब्द भी समाज के विशिष्ट वर्ग से सदा के लिए चिपक जाएगा। दलित शब्द से अस्पृश्यता की गंध आती ही रहेगी। ऐसा हुआ तो राजकीय, आर्थिक, परिवर्तन होने के बाद भी सामाजिक समानता दूर की बात रह जाएगी। पू. बाबासाहब आंबेडकर जी द्वारा किए सभी प्रयास निष्फल होंगे। उनकी तपःचर्या और जीवन समर्पण व्यर्थ जाएगा।

महापुरुषों के अनुयायी ही महापुरुष को नष्ट कर देते हैं। जातीयता के बड़वानल में भगवान गौतमबुद्ध समाप्त हो गए। विवेकानंद समाप्त हुए। ज्ञानेश्वर तुकारामादि भी खाक हुए। ऐसा डॉ. बाबासाहेब ने स्वयं कहा है। 'दलित' नाम का नया वर्ग तैयार न हो इसकी चिंता सभी पक्षों को करनी चाहिए। पू. बाबासाहेबजी के कारण समरसता का नया युग प्रारंभ हो गया ऐसे मानने वाले सभी तथाकथित सवर्ण हों या अनुसूचित जाति के हों, दलित नाम का स्वतंत्र वर्ग निर्माण न हो, इसके लिए अभी से प्रयास करने की जरूरत है। यही उस महापुरुषों को सही श्रद्धांजलि होगी।

25 नवंबर 1949 को संविधान समिति में किया गया डॉ. आंबेडकर जी का भाषण प्रखर राष्ट्रभक्ति का परिचायक है। वे बोलते हैं, 'चिंतित हूं। इसके पहले भी स्वतंत्रता खोनी पड़ी है। राजा दाहिर का पराभव उनके स्वयं सेनापति के कारण हुआ। सम्राट पृथ्वीराज का पराभव सरदार जयचंद के कारण हुआ। छत्रपति शिवाजी ने हिन्दुओं के स्वातंत्र्य के लिए युद्ध छेड़ा था तो मराठा सरदार और राजपूत मुगल बादशाह के पक्ष में लड़ रहे थे। ... इतिहास की पुनरावृत्ति होगी क्या? ... यह सवाल खड़ा करके वे बोले, 'हिन्दू समाज के पुराने दो शत्रु जातिभेद व पंथभेद हैं ही। अब उसमें अनेक राजकीय पक्षों की वृद्धि हो गई है। अगर अपने पक्षहित को राष्ट्रहित से अधिक महत्व का मानने लगे तो भारतीयों का स्वातंत्र्य फिर से धोखे में आ सकता है। खून की आखिरी बूंद तक देश के स्वातंत्र्य की रक्षा करनी होगी।'' ■

(लेखक रा.स्व. संघ के वरिष्ठ प्रचारक एवं अखिल भारतीय कार्यकारी मंडल के सदस्य हैं)

उद्गार/अंश

'भगवान या सुपरमैन के भरोसे मत रहो'

... महिलाओं व सज्जनों, आपके मेरे प्रति मानपत्र के लिए धन्यवाद। यह मानपत्र मेरे कार्य और गुणों की श्रेष्ठतम बातों से परिपूर्ण है। इसका अर्थ यह है कि आप अपने जैसे सामान्य व्यक्ति का दैवीकरण कर रहे हैं। यह नायक पूजा यदि शुरू में ही समाप्त नहीं की गई तो आपका विनाश कर डालेगी। किसी व्यक्ति को देवता का दर्जा देकर आप अपनी सुरक्षा और हल की जिम्मेदारी एक व्यक्ति के हाथ सौंप देते हैं। परिणामस्वरूप आप निर्भरता की आदत पालकर अपने कर्तव्यों के प्रति तटस्थ हो जाते हैं। यदि आप ऐसी सोच के शिकार हो जाते हैं तो आपका भाग्य राष्ट्रीय धारा में बह रहे लकड़ी के टुकड़े से बढ़कर और कुछ नहीं होगा। आपके संघर्ष का परिणाम शून्य होकर रह जाएगा।...

– बधाई समारोह, वाडी बंदर, मुंबई

जनता, 4 मार्च, 1933

सौजन्य : नीलम धीमान, निगम पार्षद, शास्त्री नगर एवं राजन धीमान, उपाध्यक्ष, चांदनी चौक, भाजपा

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 9:07 PM Page 24

पत्रकारिता के प्रकाश स्तंभ

» जे. नंदकुमार

पत्रकारिता डॉ. बाबासाहेब के जीवन का एक ऐसा पक्ष है जिसकी कभी ज्यादा चर्चा नहीं होती। लेकिन बतौर निष्ठावान पत्रकार उनकी लेखनी ने चार दशक तक समाज को राह दिखाई। स्याही के माध्यम से सिद्धांतों के लिए संघर्ष की यह यात्रा अपने आप में अनूठी है।

आंबेडकर को हम सामाजिक न्याय के पुरोधा, संविधान निर्माता और महान राष्ट्रनायक के रूप में जानते हैं, परन्तु पत्रकार के रूप में उन्होंने जो प्रकाश स्तम्भ स्थापित किया है, वह प्रायः चर्चाओं से परे ही रहा। वंचित वर्गों के उद्धार के उनके अंतहीन संघर्ष के एक अंग के रूप में तथा इसके लिए मत निर्माण का एक सशक्त माध्यम मानकर आंबेडकर ने पत्रकारिता क्षेत्र में प्रवेश किया। डॉ. आंबेडकर निष्पक्ष पत्रकारिता के कंटीले रास्ते पर 36 वर्षों तक चलते रहे। समाचार पत्र उनके लिए समाज और राष्ट्र की सेवा का पवित्र साधन था। बाबासाहेब के जीवनी लेखक धनंजय कीर ने समाचार पत्र निकालने के उनके उद्देश्य को व्यक्त करते हुए लिखा है कि उन्होंने वकालत का पेशा अपनाया क्योंकि उन्हें लगता था कि यदि जनकल्याण के लिए समाचार पत्र चलाना है, तो उसके पीछे अपने जीवन यापन के लिए स्वतंत्र आजीविका साधन का आधार आवश्यक है। बिना आर्थिक लाभ के समाचार पत्र संचालन का उनका यह दृढ़ संकल्प और दृष्टि हर काल में उदाहरणीय और सार्थक है।

इतिहास में अपना स्थान बनाने वाले हर उल्लेखनीय व्यक्ति ने अपने कार्य के लिए किसी विशिष्ट क्षेत्र का चुनाव किया है। डॉ. आंबेडकर जी का व्यक्तित्व भी

कम साधनों किन्तु दृढ़ संकल्प के सहारे बाबासाहेब ने सतत पत्रकारिता का जो उदाहरण प्रस्तुत किया वह अपने आप में प्रेरणादायी है।

वास्तविक अर्थ में बहुआयामी था। वे अतुल्य बौद्धिक प्रतिभा के धनी थे, जिन्होंने मानव जीवन के हर क्षेत्र में योगदान दिया। परंतु उनका हर कार्य वंचितों के सामाजिक-राजनीतिक उत्थान एवं सामाजिक समता की स्थापना के लिए समर्पित था। संविधान निर्मात्री सभा के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने महत्वपूर्ण राष्ट्रीय भूमिका निभाई। संविधान सभा में भाग लेने के अपने उद्देश्य को बड़ी स्पष्टता से व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा, 'मेरे संविधान निर्मात्री सभा में आने के पीछे अनुसूचित जातियों की हित रक्षा से बढ़कर कोई और चाह नहीं है। मुझे तनिक भी भान नहीं था कि मुझे किसी और बड़े दायित्व को ग्रहण करने के लिए आमंत्रित किया जाएगा। इसलिए जब सभा ने मुझे ड्राफ्टिंग कमेटी के लिए निर्वाचित किया तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मुझे और भी अधिक आश्चर्य हुआ जब ड्राफ्टिंग कमेटी ने मुझे अध्यक्ष चुन लिया। ...देश की सेवा का अवसर प्राप्त होने के कारण मैं संविधान सभा और ड्राफ्टिंग कमेटी के प्रति कृतज्ञ हूं।' इस कथन के बाद शेष तो इतिहास है।

समाज में समता लाने की तड़प बचपन से ही उनके मन में समाई हुई थी। वे अस्पृश्यता के कलंक को शिक्षा से धोने का निश्चय कर परिश्रमपूर्वक अध्ययन करते रहे पर मार्ग इतना सहज नहीं था। अपनी तीव्र मेधा के कारण वे बड़ौदा के महाराजा के राजनीतिक सचिव नियुक्त किए गए, परंतु तथाकथित उच्च वर्ग वाले उनके अधीनस्थ एक 'महार' से आदेश लेने के लिए तैयार नहीं थे। उन्हें बड़ी पीड़ा हुई। व्यथित हृदय के साथ नवंबर 1917 में वे मुंबई लौट आए। उन्होंने समाज की अंतिम पंक्ति में खड़े बेआवाजों के लिए अपनी आवाज उठाने का निश्चय किया। उन्होंने बहुत थोड़े से साधनों के साथ मीडिया जगत में कदम रखा, और मौन यातनाओं की भावभूमि को अभिव्यक्त करना आरंभ किया। कोल्हापुर के शाहूजी महाराज वंचित वर्ग के उत्थान हेतु किए जा रहे प्रयासों के प्रति गहरी संवेदना रखते थे। उन्होंने सहायता की और 31 जनवरी, 1920 को डॉ. आंबेडकर ने पाक्षिक समाचार पत्र 'मूकनायक' प्रारंभ किया। मूकनायक नाम ही समाचार पत्र प्रकाशन के उद्देश्य एवं विचार को व्यक्त करता है। इसी के अनुरूप विषय सामग्री भी रची जाती रही। संपादक के रूप में भीमराव आंबेडकर ने पत्रकारिता के आदर्श एवं लेखों तथा समाचारों की शैली से कभी समझौता नहीं किया। वे नियमित रूप से संपादकीय एवं मुख्य आलेख लिखते रहे। उनका सार्वजनिक जीवन और पत्रकारिता यात्रा एक साथ प्रारंभ हुए। अतः जीवन एक अनवरत भागदौड़ बन गया। वे दिन भर सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियों में

सौजन्य : राम शरण जिंदल, सूरजमल विहार, पूर्वी दिल्ली-110092

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 9:07 PM Page 25

व्यस्त रहते और समाचार पत्र कार्यालय में देर रात तक कार्य करते। लगभग एक वर्ष तक यह क्रम चला। मन को संतोष नहीं हो रहा था। उन्हें अकस्मात बाधित हुए अध्ययन को पूरा करना था। अध्ययन के लिए लंदन जाना था। धन के अभाव की बाधा सामने खड़ी थी। सौभाग्य से कुछ लोग इस हीरे की चमक को देख पा रहे थे। उन्होंने जिस महान कार्य को हाथ में लिया था, उससे सहानुभूति रखने वाले एवं उनके समर्थक उनके विदेश गमन एवं अध्ययन के लिए निधि संग्रहित करते रहे। धन संग्रह हो गया और 1920 के अंत तक भीमराव एक बार फिर लंदन की ओर रवाना हो गए। परन्तु उनकी अनुपस्थिति में 'मूकनायक' का कार्य ठप्प पड़ गया।

अध्ययन पूरा हुआ। भीमराव आंबेडकर बैरिस्टर आंबेडकर हो गए। उन्हें डॉक्टरेट इन साइंस से नवाजा गया। लंदन में अध्ययन पूरा कर वे मातृभूमि लौटे और पूर्ण हृदय के साथ उपेक्षित-वंचित वर्गों के उद्धार में जुट गए। 1924 में बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना के बाद बाबासाहेब का सुव्यवस्थित सार्वजनिक जीवन प्रारंभ हुआ। भारत के राजनीतिक-सांस्कृतिक इतिहास में यह कालखंड बड़े महत्व का है। इस काल में, गांधी जी कांग्रेस के सर्वमान्य नेता बने, वामपंथी आंदोलन की स्थापना हुई और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का प्रारंभ हुआ, और यही वह समय था जब बाबासाहेब का सामाजिक जीवन में पदार्पण हुआ। बहिष्कृत हितकारिणी सभा के ध्वज तले डॉ. आंबेडकर ने सामाजिक सद्भाव के निर्माण के लिए आंदोलन चलाए। इन मांगों में सशक्त एकरस हिन्दू समाज का सपना छुपा था। उन्होंने अनुसूचित जाति के बंधुओं के लिए मंदिर प्रवेश एवं सबके लिए साझा जल स्रोत की मांग उठाई। रूढ़िग्रस्त समाज द्वारा विरोध स्वाभाविक था। आलोचनाओं की बौछार होने लगी और उन्हें लोगों को जागृत करने और अपनी बात सर्वत्र पहुंचाने के लिए एक मुखपत्र प्रारंभ करने की तीव्र आवश्यकता हुई। वैसे भी उन दिनों किसी भी संगठन की असल सोच और सिद्धांत को लोगों तक पहुंचाने एवं मांगों को उठाने के लिए समाचार पत्र एक तरह की अनिवार्यता थी। समाचार पत्र बिना नेतृत्व, मानो पंख बिना पंछी। अतः 3 अप्रैल, 1927 को उन्होंने मराठी पाक्षिक 'बहिष्कृत भारत' शुरू किया।

अस्पृश्यों की आवाज उठाने के लिए मुखपत्र की जरूरत को रेखांकित करते हुए उन्होंने जानकारियों और प्रामाणिकता की आवश्यकता पर भी बल दिया। इसके पीछे उनके व्यापक उद्देश्य थे। 1920 के बाद देश में अनेक राजनीतिक-सामाजिक सुधार आंदोलन प्रारंभ हुए। इनमें से अनेक को यदि ठीक से न समझा-समझाया जाता तो वे वंचित वर्ग के लिए ही हानिकर सिद्ध होते। वातावरण में पनप रहे दुष्प्रभावों से वंचित वर्ग की रक्षा करते हुए उन्हें देश में घट रही घटनाओं तथा उनके उचित-अनुचित परिणामों की जानकारी से सुसन्नद्ध रखना आवश्यक था। साथ ही सरकार तथा जनसामान्य को वंचित वर्ग के कष्टों, प्रतिक्रियाओं और दृष्टिकोण से परिचित करवाना भी आवश्यक था। जरूरत थी वंचित वर्ग तक बोलचाल की भाषा में पहुंचने की। इसके लिए उन्होंने समाचार पत्र की आवश्यकता समझी और उसे प्रारंभ किया। पत्रकार के रूप में डॉ. आंबेडकर का यह सफर अगले चार दशकों तक जारी रहा।

जनता के सहयोग से उन्होंने भारत भूषण प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना की। 1930 में उन्होंने 'जनता' नामक पत्र निकाला। यह पत्रिका 26 वर्ष तक चलती रही। फिर उन्होंने इसका नाम रखा 'प्रबुद्ध भारत', बाबासाहेब के द्वारा रखे गए ये सारे नाम उनकी राष्ट्रीय भावनाओं और उनके आंदोलन के विभिन्न चरणों की ओर इंगित करते हैं। ये नाम मीडिया में सक्रियता के उनके उद्देश्य और जीवनध्येय दोनों को एकदम स्पष्ट कर देते हैं। 'मूकनायक' ने समाज के उन लोगों को आवाज दी जिनकी प्रायः कहीं कोई सुनवाई नहीं थी। फिर आया 'बहिष्कृत भारत', जो भारत के वंचित वर्ग के साथ दृढ़ता से खड़ा रहा। समाज का प्रत्येक वर्ग जब तक मुख्यधारा से जुड़कर सबके कंधे से कंधा मिलाकर चल नहीं पड़ता, तब तक समरस समाज का स्वप्न साकार होना असंभव है। अतः जागरण के इस चरण में आया 'जनता' और जब उन्होंने भारत की एकात्मता को अक्षुण्ण रखते हुए समता के सनातन मूल्यों की प्राणप्रतिष्ठा करने का लक्ष्य लेकर लाखों अनुयायियों के साथ भगवान बुद्ध के चरणों का आश्रय लिया, तब 'जनता' का नाम बदलकर 'प्रबुद्ध भारत' रखा, जिससे यही पता चलता है कि उपासना पद्धति बदलकर भी उनके मनोचक्षुओं में गौरवमय भारत का स्वप्न ही साकार हो रहा था। संक्षेप में, पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उनके सारे प्रयासों के केंद्र में सदा मातृभूमि ही रही।

वे समर्पित पत्रकार थे। उनकी दिनचर्या बड़ी व्यस्तता भरी रहती थी, लेकिन उनकी राजनीतिक गतिविधियां हों, या वायसराय काउंसिल के सदस्य के नाते जिम्मेदारियां या संविधान निर्मात्री सभा के अध्यक्ष के नाते किये गए महती प्रयास हों, वे अपनी पत्रिका के लिए लिखने का समय अवश्य निकाल लेते थे। यहां तक कि जब वे गोलमेज सम्मेलन के सिलसिले में देश से बाहर थे, या ऐसे ही विदेश गमन के दूसरे अवसरों पर भी वे अपने सम्पादकीय भेजने से नहीं चूकते थे। उनका प्रबल आग्रह रहता था कि प्रत्येक अंक पूरी तरह त्रुटिरहित हो, और लेखनी की गुणवत्ता और पत्रकारिता के सिद्धांतों से कोई समझौता न किया जाए। उनकी लेखनी से उनका द्वेषरहित संघर्ष और उनका सामाजिक न्याय स्थापना का लक्ष्य मुखरित होता रहा। उन्होंने आह्वान किया कि हिन्दू समाज के वंचित वर्ग के लिए समस्त मंदिरों के द्वार खुलें। सबका एक कुआं हो। उन्होंने अपनी चुटीली, निर्भीक और तर्कपूर्ण शैली में एक के बाद एक सम्पादकीय लिखे और सरकार से एस. के.बोले प्रस्ताव को स्वीकार कर-के आगे बढ़ने की मांग की। श्री बोले के प्रस्ताव में उपरोक्त आवश्यकताओं पर बल दिया गया था। उन्होंने ऐसे लोगों पर कार्रवाई की मांग की जो सामाजिक सुधार के प्रयासों में रोड़े अटकाकर सामाजिक सद्भाव के पावन लक्ष्य को भटकाने का प्रयास कर रहे थे। पत्रकारिता के मूल्यों के प्रति उनके प्रबल आग्रह का पता उनके इन खरे-खरे शब्दों से चलता है-

'भारत में पत्रकारिता कभी पेशा हुआ करती थी। अब यह व्यापार बन गया है। इसकी नैतिकता साबुन निर्माण से अधिक नहीं रह गई है। अब यह (पत्रकारिता) अपने आप को जनता का जिम्मेदार सलाहकार नहीं मानती। किसी खास मंतव्य के बिना निष्पक्ष समाचार देना, सार्वजनिक नीतियों पर समाज के लिए हितकारी लगे ऐसे दृष्टिकोण सामने रखना, कोई कितना भी ऊंचा क्यों न हो - गलत रास्ता चुनने पर उसकी निर्भीक आलोचना और सुधार आदि मूल्यों की आज भारतीय पत्रकारिता में मान्यता नहीं रह गई है। पहले इन सबको सर्वप्रथम कर्तव्य माना जाता था। आज उसका मुख्य सिद्धांत है, एक नायक चुनकर उसकी पूजा करना। इसके अंतर्गत समाचार के स्थान पर सनसनी को प्रमुखता देना, तार्किक मत के स्थान पर अतार्किक भावोत्तेजना, जिम्मेदार लोगों के मन को स्पर्श करने के स्थान पर गैरजिम्मेदार लोगों की भावनाओं को उकसाना आदि देखने में आ रहा है।' लार्ड सालिसबरी ने कहा था कि 'भारतीय पत्रकारिता चारणों द्वारा उनके नायकों का महिमामंडन है।' कभी भी नायक पूजा के लिए देश के हितों को इस तरह कुर्बान नहीं किया गया था। न ही कभी नायक पूजा इतनी अंधी रही है जैसी आज भारत में देखी जा रही है। मुझे इस बात की खुशी है कि कुछ सम्मानजनक अपवाद मौजूद हैं लेकिन उनकी आवाज कभी सुनी नहीं गई।' ■

(लेखक रा.स्व. संघ के अखिल भारतीय सह प्रचार प्रमुख हैं)

जैसे मनुष्य नश्वर है, उसी तरह विचार भी नश्वर हैं, जैसे एक पौधे को पानी की जरूरत होती है, उसी तरह विचार को प्रचार-प्रसार की जरूरत होती है। नहीं तो दोनों मुरझा कर मर जाते हैं।

- बाबासाहेब

सौजन्य : संजय विरमानी, दिल्ली

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 9:36 PM Page 26

विदेश नीति की यथार्थवादी दृष्टि

प्रफुल्ल केतकर

दूरदर्शिता डॉ. आंबेडकर के विचारों में कूट-कूटकर भरी थी। उन्होंने चीनी चाल को उसी समय भांप लिया था, पाकिस्तान के इरादों से निपटने की जरूरत जताई थी, कश्मीर और पूर्वी बंगाल में की जा रही गलतियों पर वे बेहद चिंतित थे। उनकी सोच उस विदेश नीति की पक्षधर थी, जिसमें राष्ट्रहित सर्वोपरि हो

जो इतिहास को भूल जाते हैं, वे इतिहास नहीं बना सकते। भारतीय सेना में मुसलमानों के दबदबे को कम करने के लिए और सेना को सुरक्षित बनाने के लिए, इन शत्रुतापूर्ण तत्वों को बाहर जाने देने में ही बुद्धिमानी है। अपनी धरती की रक्षा हम करेंगे। इस गलतफहमी में न रहें कि पाकिस्तान अपने मुस्लिम साम्राज्य का विस्तार भारत में करने में सक्षम हो जाएगा। हिंदू उसे धूल चटा देंगे। मैं स्वीकार करता हूं कि कुछ बिन्दुओं पर सवर्ण जातियों के हिंदुओं के साथ मेरा झगड़ा है। लेकिन मैं आपके सामने यह संकल्प ले सकता हूं कि अपने देश की रक्षा में अपना प्राण न्यौछावर कर दूंगा। (पृ.सं.340-341)

हमारी (नेहरूवादी) विदेश नीति का महत्वपूर्ण बिन्दु है अन्य देशों की समस्याओं को हल करना और अपने देश की समस्याओं का समाधान न करना।- डॉ. बी.आर. आंबेडकर (डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, धनंजय कीर, पृष्ठ 456)।

किसी नव स्वतंत्र राष्ट्र के लिए विदेश नीति बनाना महत्वपूर्ण होता है और स्वतंत्र भारत की विदेश नीति का वास्तुकार नेहरू को मानने की प्रवृत्ति अभी भी है। अगर नेहरूवादी अवधि के दौरान विदेश नीति की धारणाओं को सबसे बड़ी दूरदर्शी चुनौती किसी ने प्रस्तुत की थी, तो वह डॉ. आंबेडकर थे। चाहे वह गुटनिरपेक्षता की नीति हो, पड़ोसियों के प्रति नीति हो, रक्षा तैयारियां हों, या इस्लामी देशों के साथ संबंधों की समस्या हो, आंबेडकर ऐसी दूरदर्शी अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं, जो आज भी प्रासंगिक हैं। कोई संदेह नहीं कि दलित वर्गों के लिए उत्थान और उनका सम्मानजनक जीवन सुनिश्चित करने में आंबेडकर का योगदान भारतीय संदर्भ में अद्वितीय है। लेकिन अगर विदेश नीति का अर्थ दूसरे देशों के साथ संबंधों में राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा सुनिश्चित करना माना जाए, तो डॉ. आंबेडकर की दृष्टि हमें वह वैकल्पिक विचार प्रदान करती है, जो नेहरू के आदर्शवादी ढांचे को चुनौती देते हैं।

यथार्थवाद की नींव : बाबासाहेब ने कई मोर्चों पर नेहरू की नीतियों की आलोचना की थी। नेहरू की विदेश नीति की सबसे प्रबल आलोचना उन्होंने मंत्री पद से इस्तीफा देते समय की। वे स्वतंत्र भारत की विदेश नीति की दिशा से न केवल असंतुष्ट थे, बल्कि उन्होंने *वास्तविक बेचैनी और चिंता* भी व्यक्त की थी। अपने भाषण में उन्होंने कहा था कि - जिसने भी हमारी विदेश नीति की दशा-दिशा पर ध्यान दिया है, और भारत के प्रति अन्य देशों के रवैये पर गौर किया है, वह इस बात का एहसास किए बिना रह ही नहीं सकता है कि हमारे प्रति उनके दृष्टिकोण में अचानक परिवर्तन आ चुका है। 15 अगस्त 1947 को, जब हमने एक स्वतंत्र देश के रूप में अपना जीवन शुरू किया, तब कोई भी देश ऐसा नहीं था, जिसने हमारा बुरा सोचा हो। दुनिया का हर देश हमारा दोस्त था। आज, चार साल बाद, हमारे सभी दोस्त हमें छोड़ चुके हैं। हमारा कोई दोस्त नहीं बचा है... हम एक सुनसान राह पर चल रहे हैं, जिसमें संयुक्त राष्ट्र में हमारे प्रस्तावों का समर्थन करने के लिए भी कोई नहीं है। जब मैं विदेश नीति के बारे में सोचता हूं, तो याद आता है कि बिस्मार्क और बर्नार्ड शॉ ने क्या कहा था। बिस्मार्क ने कहा था- *राजनीति आदर्शों को साकार करने का खेल नहीं है, राजनीति संभावनाओं का खेल है।* बर्नार्ड शॉ ने कहा था कि अच्छे आदर्श अच्छे होते हैं, लेकिन आपको यह नहीं भूलना चाहिए कि बहुत अच्छा होना भी अक्सर खतरनाक होता है। हमारी विदेश नीति विश्व के इन दो महान लोगों द्वारा बताई गई बातों के ठीक विपरीत है। इससे स्पष्ट होता है कि आंबेडकर यथार्थवादी विदेश नीति के पक्ष में थे, जो राष्ट्रीय हितों की रक्षा की नींव पर आधारित हो, और उनकी दृढ़ राय थी कि नेहरू द्वारा प्रतिपादित आदर्शवादी नीतियों का कोई परिणाम नहीं निकलेगा।

स्वतंत्र भारत की विदेश नीति जिन तीन विचारों पर रची गई थी, आंबेडकर को उन तीनों में भारी त्रुटि नजर आती थी। इन तीन विचारों में एक शांति थी, दूसरा कम्युनिज्म और लोकतंत्र के बीच सह-अस्तित्व था और तीसरा सीटो का विरोध करना था।

शांति की रट लगाने की आलोचना करते हुए उनका मानना था कि विदेशी संबंधों में बलप्रयोग अपरिहार्य है, और इस कारण भारत को रक्षा तैयारियों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। उन्होंने कहा- *बुराई की जड़ बल प्रयोग में नहीं, बल्कि जीत के दुरुपयोग में है।* यहां तक कि द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान भी उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि ब्रिटेन भारतीयों को अपने स्वयं के बचाव के लिए तैयार करे। लखनऊ विश्वविद्यालय के छात्रों को सम्बोधित करते हुए नवंबर 1951 में उन्होंने कहा- सरकार की विदेश नीति भारत को मजबूत बनाने में असफल रही है। भारत को सुरक्षा परिषद में स्थायी सीट क्यों नहीं मिलना चाहिए? प्रधानमंत्री ने इसके लिए कोशिश क्यों नहीं की? भारत को संसदीय लोकतंत्र और तानाशाही के कम्युनिस्ट रास्ते के बीच चयन कर लेना चाहिए और एक अंतिम निष्कर्ष निकाल लेना चाहिए।

लोकतांत्रिक गुट के बजाय कम्युनिस्ट अधिक पसंद : गुटनिरपेक्षता के बोल बोलते हुए, कम्युनिस्ट गुट की ओर नेहरू का झुकाव सभी जानते हैं। आंबेडकर मानते थे कि दीर्घकाल में यह भारत के लिए और संविधान की

सौजन्य : संजय गर्ग, सेवा भारती, दिल्ली प्रांत

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 9:17 PM Page 27

लोकतांत्रिक भावना के लिए घातक साबित होगा। कम्युनिस्ट रूस की विस्तारवादी नीति का जिक्र करते हुए आंबेडकर ने कहा- यह एक ऐसा विशाल देश है जो अन्य लोगों को नष्ट करने में, उन पर कब्जा करके अपने आपमें अवशोषित कर लेने में निरंतर लगा हुआ है, और सिद्धांत रूप में वह उन्हें मुक्त कर रहा है। उन्होंने विचार व्यक्त किया कि-कम्युनिज्म जंगल की आग की तरह है; यह जलती जाती है और जो कुछ भी इसके रास्ते में आता है, उस सबको निगलती जाती है। जंगल की आग के आसपास के क्षेत्र में रहने वाले देश खतरे में थे। वह मानते थे कि गुटनिरपेक्षता का सिद्धांत बेतुका है, क्योंकि वह इस तथ्य पर आधारित है कि कम्युनिज्म और लोकतंत्र एक साथ रह सकते हैं।

शीत युद्ध के बाद की अवधि में जब अमरीका के साथ भारत के संबंधों में काफी सुधार हुआ, तो आंबेडकर की ही बात सही साबित हुई, जिन्होंने कहा था कि भारत को शीत युद्ध में कम्युनिस्ट गुट के बजाय लोकतांत्रिक गुट का साथ देना चाहिए था। अमेरीका के नेतृत्व वाले सीटो के बारे में आंबेडकर का मानना था कि यह किसी देश पर आक्रमण करने के लिए बनाया गया संगठन नहीं है, बल्कि रूस और चीन को और आगे आक्रमण करने से रोकने और मुक्त दुनिया के किसी भी और भाग पर कब्जे करने से रोकने के लिए बना संगठन है। भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति का प्राथमिक कारण अमेरीका के बारे में नेहरू का संदेह और इस बात का भय था कि अगर भारत सीटो में शामिल हो गया तो रूस क्या सोचेगा, न कि कोई सैद्धांतिक बातें। आंबेडकर महसूस करते थे कि *लोकतांत्रिक देशों की नैसर्गिक निकटता* और भारत-अमेरीका करीबी संबंध भारत की विदेश नीति के मार्गदर्शक सिद्धांत होने चाहिए। आंबेडकर ने एशिया में और उसके आगे लोकतांत्रिक देशों की एक लीग की वांछनीयता व्यक्त की थी, जो पूर्व की ओर देखो और पूर्व दिशा में काम करो की वर्तमान नीति के अनुरूप है।

भू-रणनैतिक विचार : बाबासाहेब की विदेश नीति की भू-रणनैतिक समझ किसी परिपक्व राजनेता की तरह की थी। वह मानते थे कि किसी देश की विदेश नीति में भौगोलिक पक्ष सबसे महत्वपूर्ण पहलुओं में से एक था। उनका दृढ़ विश्वास था कि प्रत्येक देश अपनी भौगोलिक स्थिति के आधार पर अपनी विदेश नीति निर्धारित करता है। संसद में बोलते हुए उन्होंने इस तथ्य की ओर सदन का ध्यान आकर्षित किया कि भारत एक तरफ से पाकिस्तान और अन्य मुस्लिम देशों द्वारा पूरी तरह घेर लिया गया है और दूसरी तरफ उसने चीन को ल्हासा का कब्जा करने दिया है। आंबेडकर ने कहा - 'प्रधानमंत्री जी, इसने व्यावहारिक रूप से चीन को अपनी सीमा भारतीय सीमा तक ले आने में मदद दी है। इन बातों को देखते हुए मुझे लगता है कि ऐसा न मानना बचकाना होगा कि आक्रमण अगर ठीक अभी भारत पर नहीं हुआ है, तो भारत आक्रमण होने के नजदीक पहुंच चुका है और यह आक्रमण उन लोगों द्वारा किया जा सकता है, जो हमेशा आक्रमण करने के आदी हैं।'

आंबेडकर ने कहा प्रधानमंत्री को माओ द्वारा स्वीकार किए गए और अनाक्रमण की तिब्बत संधि में दर्ज किए गए पंचशील पर निर्भर नहीं होना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि अगर माओ को पंचशील में जरा भी विश्वास था, जो बौद्ध धर्म का अनिवार्य हिस्सा है, तो वह निश्चित रूप से अपने ही देश में बौद्ध धर्म से एक बहुत ही अलग तरह से पेश आया होता। उन्होंने कहा- एक तो राजनीति में पंचशील के लिए कोई जगह नहीं है; और दूसरी बात किसी कम्युनिस्ट देश की राजनीति में जरा भी नहीं है। ये चेतावनी भरे शब्द बताते हैं कि भारत की चीन नीति के संदर्भ में वह कितने दूरदर्शी थे।

पाकिस्तान और इस्लामी दुनिया का आकलन : आज पूरी दुनिया इस्लामी आतंकवाद के खतरे का सामना कर रही है और पाकिस्तान ऐसी आतंकवादी गतिविधियों की जड़ माना जाता है, तब ऐसे वैश्विक इस्लामी आतंकवाद की पूर्व चेतावनी देने वालों में सावरकर के साथ-साथ आंबेडकर थे।

अपनी पुस्तक *पाकिस्तान ऑर द पार्टीशन ऑफ इंडिया* और 10 अक्तूबर 1951 को अपने इस्तीफे पर संसद में दिए भाषण में आंबेडकर इस आकलन की एक स्पष्ट तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। उनकी ऐतिहासिक पुस्तक मुसलमानों की सुधारवाद विरोधी प्रवृत्ति की कठोर आलोचना करती है। वह कहते हैं- मुसलमानों पर लोकतंत्र का प्रभाव नहीं है। मुसलमानों की मुख्य रुचि मजहब में है, उनकी राजनीति मूल रूप से मौलवियों पर निर्भर है। ..उनकी किताब कहती है... किसी मुस्लिम के लिए इस्लाम एक विश्व मजहब है, जो सभी लोगों के लिए हर समय के लिए और सभी स्थितियों के लिए उपयुक्त है। इस्लाम का भाईचारा मनुष्यता का सार्वभौमिक भाईचारा नहीं है। यह केवल मुसलमानों का मुसलमानों के लिए भाईचारा है। गैर मुसलमानों के लिए इसमें अवमानना और शत्रुता के अलावा कुछ भी नहीं है। मुसलमानों की निष्ठा उस राष्ट्र के प्रति है, जो किसी मुस्लिम द्वारा शासित हो; जिस देश पर किसी मुस्लिम का शासन नहीं है, वह उनका दुश्मन देश है। पुस्तक में आंबेडकर निष्कर्ष निकालते हैं कि इस्लाम कभी किसी सच्चे मुसलमान को भारत को अपनी मातृभूमि और हिंदुओं को अपने बंधुओं-बांधवों के रूप में अपनाने की अनुमति नहीं दे सकता है। आक्रामकता की भावना मुस्लिम की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। उन्होंने कहा कि मुसलमान हिंदुओं की कमजोरी का फायदा उठाते हैं और गुंडागर्दी करते हैं।

क्या यह आकलन आंबेडकर को मुस्लिम विरोधी या सांप्रदायिक बनाता है? उन्होंने इस्लाम की उस समस्या का वर्णन किया है, जो विभाजन से भी पहले ही दिखाई दे रही थी और संभावित नतीजों के बारे में चेतावनी दी है।

पाकिस्तान के प्रति नीति स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि - पाकिस्तान के साथ हमारा झगड़ा हमारी विदेश नीति का एक हिस्सा है, जिसके बारे में मैं गहराई से असंतुष्ट महसूस करता हूं। पाकिस्तान के साथ हमारे संबंध दो आधारों पर खराब हुए हैं। एक है कश्मीर और दूसरा है पूर्वी बंगाल में हमारे लोगों की दुर्दशा। मुझे लगता है कि हमें पूर्वी बंगाल के बारे में और अधिक गहराई से चिंतित होना चाहिए जहां सभी अखबारों से लगता है कि हमारे लोगों की हालत कश्मीर के साथ तुलना में ज्यादा असहनीय है। इसके बावजूद हम कश्मीर मुद्दे पर अपना सभी कुछ दांव पर लगाते जा रहे हैं। फिर भी मुझे लगता है कि हम एक अवास्तविक मुद्दे पर लड़ रहे हैं। मेरे दिमाग में असली मुद्दा यह नहीं है कि कौन सही है, बल्कि मुद्दा यह है कि क्या सही है। इस आधार पर वह मानते हैं कि अगर विभाजन होता है, तो हिंदुओं और मुसलमानों की आबादी पूरी तरह स्थानांतरित होना चाहिए।

इस प्रकार विदेश नीति की आंबेडकर की दृष्टि समस्या के समाधान की थी। उनके विदेश नीति संबंधी विचारों के मूल सिद्धांत लोकतंत्र और विकास और रणनीतिक विकल्पों की वृद्धि करना था। दुनिया की राजनीति के बारे में उनकी समझ एक यथार्थवादी की थी और वह पूरी तरह विशुद्ध राष्ट्रीय हितों की रक्षा पर आधारित थी। यह सत्य है कि श्रम और कानून मंत्री के रूप में उनकी प्रतिबद्धता की वजह से और भारतीय संविधान का मसौदा तैयार करने में उतनी अधिकांश ऊर्जा खर्च हुई और इस कारण वह विदेश नीति से संबंधित मुद्दों पर अधिक ध्यान नहीं दे सके, जिनके बारे में वे काफी चिंतित थे। इसके बावजूद, विदेश नीति के निर्माण और उसके आधारभूत सिद्धांतों के बारे में उनकी अंतर्दृष्टि आज भी प्रासंगिक है। ■

(लेखक साप्ताहिक आर्गनाइजर के संपादक हैं)

सौजन्य : आर्यावर्त सोसाइटी, अध्यक्ष-संजय जैन, महामंत्री-चेतन कुमार प्रजापति

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:35 PM Page 28

राष्ट्रवाद और सामाजिक न्याय एक ही सिक्के के दो पहलू

बाबासाहेब ने जीवन की शुरुआत तो अस्पृश्यता निवारण के कार्य से की और उसका समापन हम संविधान की निर्मिति में देखते हैं। उनके राष्ट्रीय कार्य की कोई चिंता नहीं करता।

» रमेश पतंगे

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी का उल्लेख 'सामाजिक न्याय के महान योद्धा' इन शब्दों में किया जा सकता है। वैसे उनके नाम के पहले अनेक विशेषण लगाने की प्रथा है, जैसे दलितोद्धारक, भारतीय संविधान के शिल्पकार, अस्पृश्यता रूढ़ि के नाशक, समता के प्रवर्तक, धम्मप्रवर्तक आदि। ये सारे विशेषण उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर करते हैं। लेकिन कोई भी एक शब्द समग्रता से उनका बोध नहीं कराता है, ऐसा मेरा नम्र मत है। बाबासाहेब के व्यक्तित्व और कृतित्व के साथ जो विशेषण नत्थी किए जाते हैं, उसके सारे भाव सामाजिक न्याय शब्द में समाहित हैं। अस्पृश्यता की रूढ़ि अन्यायकारक है, वह समाप्त हो जानी चाहिए, एक ही धर्म के लोगों को आपस में समता का व्यवहार करना चाहिए, समता के लिए संवैधानिक व्यवस्था होनी चाहिए, जातिभेद, अस्पृश्यता के पीछे धर्म मान्यता खड़ी करना अधर्म है, उसे समाप्त करना चाहिए, ऐसे सारे विषय 'सामाजिक न्याय' नामक दो शब्दों में आ जाते हैं।

'सामाजिक न्याय' और 'राष्ट्रवाद' एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, इसलिए पूज्य डॉ. बाबासाहेब जी को आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद के शिल्पकार के रूप में प्रस्तुत करना चाहिए। राष्ट्र का अर्थ होता है जन, भूमि और संस्कृति। जन, भूमि के आधार पर संस्कृति का विकास होता है और यह संस्कृति राष्ट्र को जोड़ने का काम करती है। बाबासाहेब जी ने 1916 में कोलंबिया विश्वविद्यालय में 'कास्ट इन इंडिया' प्रबंध पेश किया जिसमें वे लिखते हैं- 'भारत में सर्वव्यापी सांस्कृतिक एकता है। यद्यपि समाज अनगिनत जातियों में बंटा है फिर भी वह एक संस्कृति से बंधा हुआ है।' बाबासाहेब जी का कहना है कि राष्ट्र केवल एक संस्कृति से खड़ा नहीं होता। राष्ट्र के खड़े होने के लिए सांस्कृतिक एकता के साथ-साथ सामाजिक एकता का भी इतना ही महत्व है। जब समाज विभिन्न जातियों में आपस में बंट जाता है, तब उसके आदर्श अलग-अलग होते हैं और वे एक-दूसरे से टकराते हैं। समाज का एकवर्णीय होना बहुत महत्वपूर्ण है। इसीलिए बाबासाहेब 'भगवान बुद्ध और उनका धम्म' शीर्षक ग्रंथ में आदर्श समाज के बारे में विस्तार से बताते हैं। इस ग्रंथ के पृष्ठ 232 पर बाबासाहेब लिखते हैं कि, धर्म को सधर्म का स्वरूप देने के लिए धर्म में सामाजिक भेद से उत्पन्न सभी कानून नष्ट कर देने चाहिए। ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ और शूद्र सबसे कनिष्ठ, इस प्रकार की बात से राष्ट्र खड़ा नहीं होगा। राष्ट्र के खड़े होने के लिए 'जैसे दूसरे वैसा ही मैं। जैसे हम वैसे ही दूसरे। इस विचार से दूसरों के साथ समरस हो जाओ।' इस विचारणा को खुले हृदय से अपनाना होगा यह भगवान बुद्ध का उपदेश है। (भगवान बुद्ध और उनका धम्म, पृ. 236.)।

सामाजिक न्याय और सोशल जस्टिस : सामाजिक न्याय अर्वाचीन शब्द है। यह अंग्रेजी शब्द 'सोशल जस्टिस' का पर्याय है। 'सोशल जस्टिस' शब्द का प्रथम प्रयोग जेसुइट लुईगी टप्पारेल्ली ने 1840 में किया। उस समय मार्क्स के साम्यवादी तत्वज्ञान का यूरोप में बहुत बोलबाला था। औद्योगिक क्रांति के कारण जो नई सामाजिक-आर्थिक रचना हुई उसमें पूंजीपतियों के हाथ में असीम सत्ता आ गई और उन्होंने इस सत्ता के माध्यम से आम आदमी का भीषण शोषण किया। कष्ट सहन करने वाली जनता बहुत दुर्बल बन गई। मार्क्स ने शोषित लोगों से कहा कि, 'आप जग जाओ, संगठित बनो और पूंजीपतियों को समाप्त कर दो। आर्थिक न्याय की प्रस्थापना करो। सामाजिक समता का युग लाओ।' मार्क्स ने पंथसत्ता का भी आह्वान दिया। इस आह्वान को स्वीकारते हुए ईसाई मिशनरियों ने बाइबल का नए ढंग से इंटरप्रिटेशन आरंभ कर दिया। और कहना प्रारंभ किया कि बाइबल में सोशल जस्टिस यानी सामाजिक न्याय का जिक्र किया गया है। आगे चल कर यूरोपीय समाज में परिवर्तन होते गए और उन्होंने अपने समाज में सामाजिक न्याय की प्रस्थापना करने की दृष्टि से राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक सुधार किए।

सामाजिक न्याय पद-युग्म में न्याय शब्द के अर्थ के बारे में थोड़ा विवरण देना आवश्यक है। इसके लिए

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:35 PM Page 29

अंग्रेजी प्रतिशब्द है जस्टिस। भारतीय विचार परंपरा में न्याय शब्द का अर्थ केवल जस्टिस नहीं होता। न्याय को धर्म से जोड़ा गया है, सत्य से जोड़ा गया है। धर्म यानी न्याय, सत्य यानी न्याय इस प्रकार से न्याय शब्द को अपने यहां परिभाषित किया जाता है। जब कोई कहता है कि यह धर्म का काम है तो उसका मतलब होता है कि यह न्याय का काम है और न्याय का काम होने के कारण यह सत्य का काम भी है, ऐसा अर्थ लिया जाता है। आम तौर पर आम आदमी न्याय के अर्थ को न्यायालयों में चलने वाले मुकदमों के साथ जोड़ता है। ये मुकदमे राज्य द्वारा बनाए कानून के आधार पर तय किए जाते हैं और उसमें जो निर्णय होता है, उसे न्याय कहा जाता है। उसमें न्याय होता ही है ऐसा नहीं है और कई बार न्याय का क्रूर मजाक भी होता है। इस प्रकार सामाजिक न्याय शब्द को राज्य निर्धारित कानून, मुकदमे, न्यायालय के ही संदर्भ में नहीं देखा जा सकता। यह बहुत व्यापक संकल्पना है और इसके अंतर्गत राज्य के कानून और न्यायालयी संस्था का भी अंतर्भाव होता है।

जब न्याय के पहले सामाजिक शब्द को जोड़ा जाता है तब उसका एक और विशिष्ट अर्थ बनता है। इस अर्थ को भी हमको समझना पड़ेगा। समाज कुछ रचना बनाकर मार्गक्रमण करता है। पश्चिम में समाज की रचना वर्गाधारित है। हिंदू समाज में समाज की रचना पहले वर्णाधारित और बाद में जाति आधारित बनी। वर्ग और वर्णव्यवस्था में कुछ मौलिक अंतर है। वर्गरचना जन्माधारित नहीं होती, वर्णरचना जन्माधारित होती है, जातिप्रथा भी जन्माधारित होती है, जबकि वर्गरचना में एक वर्ग से दूसरे वर्ग में जाया जा सकता है। वर्णव्यवस्था और जातिव्यवस्था में जो जिस जाति और वर्ण का है, मरते दम तक उसी स्थान पर रहता है। वर्णव्यवस्था श्रमिकों का विभाजन नहीं करती लेकिन, जातिव्यवस्था श्रमिकों को भी बांट देती है। जाति व्यवस्था में व्यवसायबंदी, ज्ञानबंदी, रोटीबंदी, मंदिरबंदी, परस्परसंबंध पर पाबंदी होती है। वर्णव्यवस्था धर्माधारित नहीं होती, वर्ण और जाति व्यवस्था के पीछे धर्म का आधार खड़ा किया जाता है, पाप और पुण्य की कल्पना खड़ी की जाती है, इसलिए उसमें परिवर्तन लाना कठिन कर्म बन जाता है।

अन्यायों की जननी : वर्ण-जाति व्यवस्था : वर्ण-जाति व्यवस्था अनगिनत प्रकार के अन्यायों की जननी होती है- 1. आर्थिक अन्याय, 2. सामाजिक अन्याय, 3. राजनीतिक अन्याय, 4. धार्मिक अन्याय, 5. सांस्कृतिक अन्याय। हम सभी जानते हैं कि बाबासाहेब का जन्म एक अछूत जाति में हुआ। बाल्यकाल से ही उनको पांचों प्रकार के अन्याय सहन करने पड़े और इन अन्यायों ने जीवन के अंत तक किसी ना किसी रूप में उनका पीछा नहीं छोड़ा। अछूत होने के कारण अछूत जातियों को कोई भी अच्छा काम करने के लिए समाज की मनाही थी। उन पर असंख्य बंधन लगाए गए। अंग्रेजों ने अछूतों को सेना में, पुलिस में भर्ती करना भी बंद कर दिया था। वे व्यापार नहीं कर सकते थे। कोई दुकानदारी नहीं कर सकते थे। होटलिंग व्यवसाय भी उनके लिए वर्जित था। अल्पशिक्षित होने के कारण अच्छी नौकरियों से उन्हें दूर ही रहना पड़ता था।

उन पर सैंकड़ों सालों से अनेक प्रकार के राजनीतिक अन्याय होते रहे हैं। कोई अछूत कभी राजा नहीं बन सकता था। इसी प्रकार कोई अछूत कभी सेनापति नहीं बन सकता था। अंग्रेजों ने भी उन्हें कोई विशेष राजनीतिक अधिकार नहीं दिए थे। प्रजातंत्र में मतदान का अधिकार, चुनाव में खड़े होने का अधिकार, राजनीतिक संगठन बनाने का अधिकार प्राप्त होते हैं। अंग्रेजी शासनकाल में इन सारे अधिकारों पर अनेक प्रकार के छुपे निर्बंध रहा करते थे। आंबेडकर जी ने कई प्रकार के धार्मिक अन्याय सहन किए। उनके कालखंड में अछूत मंदिरों में प्रवेश नहीं कर सकते थे। उन्हें सार्वजनिक जलस्त्रोतों से पानी नहीं भरने दिया जाता था। उनके श्मशान भी अलग हुआ करते थे। उनको वेदविद्या नहीं सिखाई जाती थी। संस्कृत भाषा से उनको दूर रखा गया था। कोई अछूत अगर हिम्मत करके परंपरागत कानून तोड़ता था तो उस पर सामाजिक बहिष्कार का अस्त्र चलाया जाता था। सामाजिक बहिष्कार का मतलब होता है बहिष्कृत व्यक्ति, सवर्ण समाज को उस परिवार या जाति के साथ किसी भी प्रकार का लेन-देन का व्यवहार नहीं करना चाहिए। यह सामाजिक अन्याय का सब से भयानक और कारगर शस्त्र होता था।

आंबेडकर जी की वास्तव प्रतिमा : डॉ. बाबासाहेब जी ने यहां बताए पांच प्रकार के अन्याय के विरोध में जीवनपर्यन्त कठोर संघर्ष किया। उनके संघर्ष की कुछ विशेषताएं हमको ध्यान में रखनी पड़ेंगी। दुर्भाग्य से जो लोग खुद को प्रगतिशील समझते हैं और आंबेडकर दर्शन के भाष्यकार समझे जाते हैं, इस विषय में कुछ लिखते नहीं और तोड़-मरोड़कर आंबेडकर जी को प्रस्तुत करते हैं। बाबासाहेब जी ने सामाजिक न्याय के संघर्ष को राष्ट्रकार्य से जोड़ा है। महाड चवदार तालाब सत्याग्रह की भूमिका का विशद वर्णन करते समय उन्होंने भाषण और लेखों में आग्रह पूर्वक कहा- 'अस्पृश्यता की रूढ़ि से मुक्त हो कर अगर उन्हें आत्मस्वातंत्र्य प्राप्त होता है, तो इससे वे केवल अपनी ही उन्नति नहीं करेंगे, बल्कि अपने पराक्रम से, बुद्धि से देश की उन्नति के लिए कारण सिद्ध होंगे। हमारा आंदोलन केवल पतितोद्धार का नहीं है, उसमें लोक संग्रह की भूमिका है।... हमने जो कार्य हाथ में लिया है वह केवल अपने उद्धार के लिए नहीं हिंदू धर्म के उद्धार के लिए है और यह सत्य है और यही राष्ट्रकार्य है। (डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, धनंजय कीर, पृ. 97)।

ऐसा भी नहीं है कि वे केवल अस्पृश्यों के ही हितों का विचार करते थे। यद्यपि उनका आंदोलन अस्पृश्यता मुक्ति के लिए ही चला था और अस्पृश्यता मुक्ति के लिए उन्होंने हिंदू धर्माचार्यों, हिंदू धर्मग्रंथ, हिंदू तत्वज्ञान, सनातनी लोग, ब्राह्मण्यग्रस्त ब्राह्मण- इन पर बहुत कठोर प्रहार किए हैं। महाड में उन्होंने मनुस्मृति का दहन किया और आगे चलकर यह भी कहा कि, 'हिंदू धर्म धर्म नहीं है' यह अधर्म है और मैं इस अधर्म में नहीं रहूंगा। मैं धर्मांतरण करूंगा।' कुछ लोग इन्ही बातों पर बल देकर बाबासाहेब का चित्रण हिंदू विध्वंसक के रूप में करते हैं। ये लोग उनकी वैदिक धर्मनाशक छवि बनाने पर तुले हैं।

प्रजातंत्र का मूलाधार- ब्रह्म सिद्धांत : केवल अस्पृश्यता से मुक्ति ही उनके जीवन का एकमात्र मकसद नहीं था। केवल इतना ही होता तो, बात आसान हो जाती। वे हिंदू धर्म को त्याग कर मुसलमान या ईसाई बन जाते। लेकिन उनके जीवनकार्य का यह मतलब नहीं था। वे अस्पृश्यता विरोधी आंदोलन को माध्यम बनाकर स्वतंत्रता, समता और बंधुता- इन तीन आधार पर समग्र हिंदू समाज का पुनर्गठन या पुनर्रचना करना चाहते थे। उनके सामाजिक न्याय का अर्थ था स्वतंत्रता, समता और बंधुता। स्वतंत्रता से उनका मतलब था- जन्म से प्रत्येक व्यक्ति समान है और उसे समान अवसर मिलना चाहिए। समाज, धर्मसत्ता और राजसत्ता को उसकी उन्नति में बाधक किसी भी नियम को समाप्त कर देना चाहिए। ऐसे सभी नियमों को त्याग देना चाहिए। समता से उनका मतलब समस्त समाज के लिए था। वे केवल अस्पृश्यों के लिए समता नहीं चाहते थे। वे सारे समाज के लिए समता चाहते थे। बंधुभाव से उनका मतलब यह नहीं था कि अस्पृश्य जातियों को आपस में बंधुभाव का व्यवहार करना चाहिए। उनकी बंधुता की कल्पना समाजव्यापी थी। वे हिंदू धर्म के कड़े आलोचक जरूर थे, लेकिन उसके दो प्रकार हैं। एक प्रकार इस्लामी और ईसाईयत के विरोध का है जो अपनी मूल्यपरंपरा, जीवन परंपरा को ही समाप्त करना चाहते हैं। और दूसरा प्रकार धर्म में मूलगामी परिवर्तन लाने का है।

धर्म के मूलगामी परिवर्तन के दो अर्थ होते हैं। एक अर्थ है धर्म के मूलभूत सिद्धांतों में परिवर्तन और दूसरा अर्थ है धर्म के आचार संबंधी, व्यवहार संबंधी नियमों में परिवर्तन। बाबासाहेब का संघर्ष धर्म के मूलभूत सिद्धांतों में

सौजन्य : जे.डी. गोगिया, अध्यक्ष-सलाहकार समिति, इन्द्रप्रस्थ पंजाबी सभा, दिल्ली

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:36 PM Page 30

परिवर्तन करने का नहीं था- इस बात को उचित प्रकार से अधोरेखित करना चाहिए। हिंदू धर्म में ब्रह्म की कल्पना की गई है। ब्रह्म यानी वह अंतिम सत्य, जिसके कारण सारी सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। 'रिडल्स इन हिंदुइज्म' नामक ग्रंथ में डॉ. बाबासाहेब लिखते हैं कि यह सत्य है कि हम ब्रह्म को देख नहीं सकते, लेकिन प्रजातंत्र के मूलाधार के लिए ब्रह्मसिद्धांत का बहुत महत्व है। जब प्रत्येक व्यक्ति ब्रह्म का ही अंश है तब प्रत्येक को समता प्राप्त होती है और प्रजातंत्र का यही मतलब होता है। इसीलिए प्रजातंत्र के लिए ब्रह्मसिद्धांत एक बुनियादी सिद्धांत बन जाता है।

आमूलचूल बदलाव का संघर्ष : बाबासाहेब जी का जीवन संघर्ष हिंदू समाज के व्यवहार में आमूलचूल बदलाव के लिए था, धर्म नष्ट करने के लिए नहीं था। वे धर्मनिष्ठ थे और धर्म का महत्व अच्छी तरह से जानते थे। उनके अनुसार धर्म को अगर नष्ट किया तो समाज में अराजकता फैलेगी। वे तो धर्माधारित समाज के पक्षधर थे। 'गौतम बुद्ध और उनका धम्म' में वे लिखते हैं- 'अकेले व्यक्ति को धर्म की आवश्यकता नहीं होती है, लेकिन जब दो व्यक्ति जुड़ते हैं तब परस्पर व्यवहार के लिए धर्म की आवश्यकता होती है। समाज धर्म के बिना जीवित नहीं रह सकता। समाज ने धर्म को त्याग दिया तो उसके सामने तीन विकल्प बचते हैं, एक- अराजकता, दो- तानाशाही और तीन- मैजिस्ट्रेट आधारित न्याय को स्वीकार कर समाज का चलन करना। सामाजिक न्याय तीसरी व्यवस्था में ही संभव है। अराजकता में डार्विन का सिद्धांत काम करता है। तानाशाही में स्वतंत्रता का विनाश हो जाता है और संविधानाधारित समाज रचना में सामाजिक न्याय तथा स्वतंत्रता का रक्षण होता है।

बाबासाहेब जी ने केवल अस्पृश्य वर्ग पर विचार नहीं किया है, बल्कि सभी जातियों का विचार किया है जिसमें ब्राह्मण भी आते हैं। उसी प्रकार उन्होंने समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों पर विचार किया है। समाज में श्रमिक, काश्तकार, महिला आदि वर्ग होते हैं। वर्ग या इकाई से उनकी समस्याएं अलग-अलग होती हैं। श्रमिक, काश्तकार और महिलाओं पर विभिन्न प्रकार के अन्याय होते रहते हैं। श्रमिक जितनी मेहनत करता है उसके अनुपात में उसे वेतन नहीं मिलता। पूंजीपति श्रमिकों के अतिरिक्त मूल्य का हरण करते हैं। काश्तकार भी सरकारी नियमों के कारण, दलालों के कारण, मार्केट आधारित अर्थव्यवस्था के कारण पीड़ित रहता है। समाज में महिलाओं को दोयम दर्जा दिया जाता है। उन्हें पुश्तैनी जायदाद में हिस्सा न देने की अपनी परंपरा थी। वे विवाह विच्छेद नहीं कर सकती थीं। बाबासाहेब जी ने ऐसे सारे वर्ग के प्रश्न पर विचार किया है।

श्रमिकों की सुरक्षा : उन्होंने 1936 में इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी का गठन किया और इस पार्टी के नाम में ही लेबर यानी श्रमिक है। बाबासाहेब श्रमिकों के पक्षधर थे। उन्होंने अपनी पार्टी का जो घोषणापत्र प्रकाशित किया, उसमें श्रमिक और काश्तकारों के लिए हम लोग क्या करना चाहते हैं, इसकी सूची दी है। इसमें वेतनवृद्धि, काम का योग्य वेतन, काम करने के घंटों की मर्यादा, बीमारी अथवा अन्य आकस्मिक संकट में श्रमिकों को योग्य मुआवजा, इत्यादि विषय आते हैं। उन्होंने 1938 में बंबई के विधिमंडल में कांग्रेस द्वारा लाए गए श्रमिक विरोधी बिल का डटकर विरोध किया था। यह बिल ऐसा था कि जिसके पास होने के बाद श्रमिक वर्ग हड़ताल नहीं कर सकता था, अगर वह हड़ताल करेगा तो उस पर कानूनी कार्रवाई होगी। बाबासाहेब ने इस बिल के विरोध में 7 नवंबर, 1938 को बंबई के अन्य श्रमिक संगठनों के साथ मिलकर एक दिन की सफल हड़ताल की। इसके कारण बाबासाहेब श्रमिक नेता की श्रेणी में आ गए। श्रमिकों की समस्याओं के संदर्भ में उनका मूलगामी चिंतन रहा था। श्रमिक में केवल अस्पृश्य ही नहीं, सभी जाति-वर्ग के लोग होते हैं। बाबासाहेब की महानता इसमें है कि सामाजिक न्याय की प्रस्थापना की लड़ाई में समाज के जिन-जिन घटकों पर अन्याय होता है, वे उनका पक्ष लेते दिखाई देते हैं।

काश्तकारों की हितरक्षा : काश्तकारों की समस्याओं के बारे में भी उनका चिंतन मूलगामी है। बंबई विधिमंडल में 1927 को लघु भूधारकों के हित में एक बिल लाया गया था। इसी समय जर्नल ऑफ इंडियन इकोनॉमिक सोसायटी में उन्होंने 'स्मॉल होल्डिंग्स इन इंडिया एंड देअर रेमेडिज' शीर्षक लेख लिखा था। उस समय की चर्चा का विषय था कि खेती छोटे-छोटे टुकड़ों में बंटती है, इस कारण वह फायदेमंद नहीं होती। खेती का यह बंटवारा बंद कर देना चाहिए और छोटे टुकड़ों को एकसाथ जोड़ना चाहिए। इस विचार का खंडन करते समय बाबासाहेब ने कुछ मूलभूत सवाल खड़े किए। वे कहते हैं कि खेती का लाभदायी अथवा नुकसानदेह होना उसके आकार पर निर्भर नहीं है। खेती के लिए मजदूर, पूंजी, औजार, बीज और उर्वरकों की आवश्यकता होती है। अगर काश्तकार के पास पर्याप्त मजदूर और पूंजी रहते हुए भी खेती घाटे में जाती है तब ही उसका विचार करना चाहिए। खेती के कारण ग्रामीण दरिद्रता, बेरोजगारी बढ़ती जा रही है, यह भी गलत सिद्धांत है। उसे खारिज करते हुए उन्होंने कहा कि अपने देश का औद्योगिकीकरण होना चाहिए। श्रमिक अगर उद्योग में लगेंगे तो अपनी आय बचा कर वे खेती के लिए पूंजी का संचय कर सकते हैं। खेती का बंटवारा बंद कर देना चाहिए, इस सोच को भी बाबासाहेब ने यह कह कर नकार दिया कि हिन्दुओं को विरासत में मिला हक का कानून के कारण धनिकशाही पर प्रतिबंध लगा है। इस विरासत के हक के कारण अपनी जायदाद में हरेक को कुछ ना कुछ हिस्सा मिलता है और इसके चलते वे आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र रहते हैं। यह आर्थिक स्वतंत्रता छीन लेना अन्याय है, ऐसा उनका मत था।

> बाबासाहेब जी ने अपने महती कार्यों से भारतवर्ष को बलवान किया है। राष्ट्र चलाने के लिए हजार कार्य करने पड़ते हैं। उसमें से अधिकतम कार्य सार्वजनिक होते हैं। इन कार्य में समाज के सभी जाति-वर्गों की सहभागिता आवश्यक होती है। सहभागिता से संस्था और काम में आत्मीयता निर्मित होती है। यह काम मेरा है, यह भाव पैदा होता है।

महिला उत्थान : इसी प्रकार डॉ. बाबासाहेब ने महिला वर्ग की समस्याओं पर गहराई से विचार किया है। महिलाओं की समस्याओं के बारे में दो प्रकार से विचार किया जा सकता है। एक- अस्पृश्य समाज की महिलाओं की समस्या और दो- अस्पृश्येतर समाज की महिलाओं की समस्या पर विचार। अपनी अस्पृश्य भगिनियों को बाबासाहेब ने कहा. 'अपने को अस्पृश्य नहीं समझना। अपना घर स्वच्छ रखो। जैसे स्पृश्य स्त्रियां वस्त्र पहनती हैं, उसी प्रकार से वस्त्र पहनना। आपको प्रतिज्ञा करनी होगी कि हम कलंक की स्थिति में नहीं रहेंगी। अपनी पुरानी और तुच्छ आदतें छोड़ देनी चाहिए। शरीर पर हो सके तो स्वर्ण का ही अलंकार पहनना चाहिए। अपनी पहचान बताने वाले अन्य गहने नहीं पहनने चाहिए। मृत जानवर का मांस खाना बंद करो। शराबी पति और पुत्र को खाना देना बंद करो... इत्यादि।'

स्त्रियों का संगठन होना चाहिए ऐसा उनका मत था। कन्या अथवा पुत्र का विवाह कम उम्र में नहीं करना चाहिए, उन्हें शिक्षा देनी चाहिए। शिक्षा के

सौजन्य : भारत भूषण मदान, निगम पार्षद, मोती नगर, दिल्ली-110015

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:36 PM Page 31

लिए पैसा नहीं होगा तो एक समय का खाना बंद कर वह पैसा शिक्षा में खर्च करना चाहिए, ऐसी उनकी सीख थी। महाराष्ट्र में हम यह देख पाएंगे कि बाबासाहेब जी के उपदेश का यथावत पालन हमारी सभी माता-भगिनियों ने किया है। इस प्रकार बाबासाहेब ने समाज के एक वर्ग को उन्नत करने का अद्भुत कार्य किया।

लेकिन ऐसा नहीं है कि बाबासाहेब ने केवल अस्पृश्य वर्गों की महिलाओं की समस्याओं पर विचार किया। महिलाओं को लेकर उनके विचार ऐसे थे- 'स्त्री वर्ग को योग्य सम्मान देकर ही विश्व के देशों ने उन्नति की है। जिस देश में अथवा जिस जाति में स्त्री वर्ग का यथोचित सम्मान नहीं होता, वह देश अथवा जाति कभी भी उन्नतावस्था प्राप्त नहीं कर सकती। स्त्री वर्ग अगर पढ़ा-लिखा होगा तो उनकी संतान भी वैसी बनेगी और उन्हीं के माध्यम से देश में विद्या, ज्ञान, शक्ति, भक्ति की जागृति होगी।

हिंदू कोड बिल का निर्माण : उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के प्रारंभिक काल में हिंदू नारियों की अवस्था दयनीय थी। बालविवाह, सतीप्रथा, पुनर्विवाह बंदी, शिक्षा बंदी, संपत्ति के अधिकार पर रोक, इत्यादि उनकी दयनीय परिस्थिति के लक्षण थे। इस में मूलग्राही बदलाव के लिए देश में राजा राम मोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, महात्मा ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले, स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद आदि ने जमकर प्रयास किए। इसके फलस्वरूप स्त्रीविषयक जागृति का एक कालखंड अपने देश में आया। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने इस प्रक्रिया को और अधिक गतिमान किया है। इस संदर्भ में उन्होंने हिंदू कोड बिल के माध्यम से जो कानूनी प्रयास किए हैं, वे ऐतिहासिक स्वरूप के हैं। इस हिंदू कोडबिल के पांच भाग थे- 1. विवाह, 2.विवाह विच्छेद, 3.विरासत, 4. गुजारा भत्ता, 5.दत्तक।

इस कोड बिल में हिन्दू स्त्री और पुरुष की विवाहयोग्य आयु निर्धारित कर दी गई। विशिष्ट परिस्थिति में हिंदू स्त्री को विवाहविच्छेद का अधिकार मिला, उसे जायदाद में विरासत का अधिकार भी मिला, द्विभार्या प्रतिबंधक कानून बना। बाबासाहेब ने जिस प्रकार हिंदू कोड बिल को प्रस्तुत किया था उस प्रकार एक कोड के रूप में वह पारित न हो पाया। लेकिन आगे चलकर टुकड़े कर उसके स्वतंत्र कानून बनाए गए। आज प्रत्येक हिंदू स्त्री को जो अधिकार मिले हैं और समाज में उसे जो स्वतंत्र गरिमा मिली है, उसकी कानूनी बुनियाद डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने ही रखी है। यह विषय भी सामाजिक न्याय के अंतर्गत आता है। सामाजिक न्याय के तहत दुर्बल घटकों को न्याय, समान अवसर मिले, उनका पिछड़ापन उनकी दुर्बलता ना बने इसकी व्यवस्था, उनके लिए विशेष संवैधानिक संरक्षण, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में समता का व्यवहार इत्यादि सारे विषयों को जोड़ना पड़ता है।

संविधान की देन : इन विषयों पर विचार करते हुए बाबासाहेब ने देश को जो संविधान दिया है, उसका अनन्य महत्व है। भारतीय संविधान सामाजिक न्याय की बुनियाद पर खड़ा है। केशवानंद भारती मुकदमा बहुत प्रसिद्ध है। यह मुकदमा भारतीय संविधान के संदर्भ में कुछ बुनियादी तत्वों को रखता है। उसमें से एक है मूलभूत ढांचे का सिद्धांत। इस मुकदमे का फैसला मूलभूत ढांचा क्या है, यह नहीं बताता। लेकिन मूलभूत ढांचे को तोड़ा या मरोड़ा नहीं जा सकता यह इस फैसले से ज्ञात होता है। इस मूलभूत ढांचे में सामाजिक न्याय से जुड़ी संकल्पना आती है। हम संविधान के तीन खंडों में इसका दर्शन कर सकते हैं। पहला खंड है उद्देशिका, जिसमें स्पष्ट कहा गया है कि स्वतंत्रता, समता, बंधुता और न्याय के लिए इस संविधान को हम स्वीकार करते हैं। दूसरा खंड है मूलभूत अधिकारों का, जिसमें प्रत्येक नागरिक को विभिन्न प्रकार की स्वतंत्रता की, समानता की, समान अवसर की, और भेदभावरहित बर्ताव की गारंटी दी गई है। जिसे हम न्यायालय में जाकर भी प्रस्थापित कर सकते हैं। और तीसरा खंड है संविधान के

उद्‌गार/अंश

मैं इन तमाम वर्षों में हिन्दू समाज और इसकी अनेक बुराइयों पर तीखे एवं कटु हमले करता रहा हूं, लेकिन मैं आपको आश्वस्त कर सकता हूं कि अगर मेरी निष्ठा का उपयोग बहिष्कृत वर्गों को कुचलने के लिए किया जाता है तो मैं अंग्रेजों के खिलाफ हिन्दुओं पर किए हमले की तुलना में सौ गुना तीखा, तीव्र एवं प्राणांतिक हमला करूंगा।

— **महार मांग वतनदार सम्मेलन,** सिन्नर (नासिक) 16 अगस्त, 1941

डायरेक्टिव प्रिन्सिपल ऑफ स्टेट पॉलिसी का जिसमें राज्य को समाज के अंदर सामाजिक और आर्थिक मूलगामी बदलाव लाने के लिए क्या-क्या आवश्यक कदम उठाने चाहिए, यह बताया गया है। इस पर अमल करना केंद्र और राज्य सरकारों को बंधनकारक है। इसी कारण समाज के अनाथ, अपंग, बेसहारा, बीमार आदि लोगों की चिंता करने का दायित्व राज्य को सौंपा गया है और अपना राज्य इस दायित्व को निभा भी रहा है।

चेतावनी : डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने अपने जीवन की शुरुआत तो अस्पृश्यता निवारण के कार्य से की और उसका समापन हम संविधान की निर्मिति में देखते हैं। वे जब जीवित थे तब लोगों ने उनकी ओर एक दलित नेता की दृष्टि से देखा। आगे चलकर कुछ मतलबी विद्वानों ने उनकी इस छवि को और गहरा करने का काम शुरू किया। उनके नाम से राजनीति चलाने वाले भी बाबासाहेब जी की ओर इसी दृष्टि से देखते हैं। उनके राष्ट्रीय कार्य की कोई चिंता नहीं करता। वे किस प्रकार समग्र राष्ट्र का विचार करते थे, इस पर बहुत कम लोग बल देते हैं। भारत के जलस्रोतों के बारे में उन्होंने कहा था कि जल राष्ट्रीय संपत्ति है। भारत की नदियों को जोड़ना चाहिए। इसके कारण जलमार्ग से यातायात भी बढ़ेगा और व्यापार भी बढ़ेगा। भारत का विकास नियोजन करने से ही होगा। बाढ़ को रोकने के लिए उत्तम योजना बना कर बांध का निर्माण करना चाहिए, जिसके कारण बिजली मिलेगी और खेती के लिए पानी भी मिलेगा। इस प्रकार से वे आर्थिक न्याय के संदर्भ में सोचते हैं। वे सही मायनों में राष्ट्रपुरुष थे।

बाबासाहेब जी ने अपने महती कार्यों से भारतवर्ष को बलवान किया है। सामाजिक न्याय का एक बिंदु होता है सहभागिता की भावना। बाबासाहेब ने वैचारिक परिवर्तन के माध्यम से, आंदोलन के माध्यम से, संविधान के माध्यम से इस सहभागिता की भावना पर बहुत बल दिया है। सामाजिक न्याय के तहत वह संपूर्ण राष्ट्र को बलशाली राष्ट्र के रूप में देखना चाहते थे। ■

(लेखक हिंदुस्थान प्रकाशन संस्थान के अध्यक्ष, सामाजिक समरसता मंच के संस्थापक सदस्य हैं)

सौजन्य : सुराज, राष्ट्रीय अध्यक्ष, डा. संजीव कुमार तिवारी, दिल्ली प्रदेश अध्यक्ष, विनोद गोयल

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:36 PM Page 32

हम केवल 150 साल तक गुलाम रहे-पंडित नेहरू की यह मान्यता बाबासाहेब को स्वीकार नहीं थी। वह मानते थे कि भारत शताब्दियों बाद स्वाधीन हुआ है और इस स्वराज्य की रक्षा हर नागरिक का प्रथम कर्तव्य है। इस राष्ट्रहितकारी सोच के साथ समाज का नेतृत्व करते डॉ. आंबेडकर इस देश के रक्षा कवच प्रतीत होते हैं।

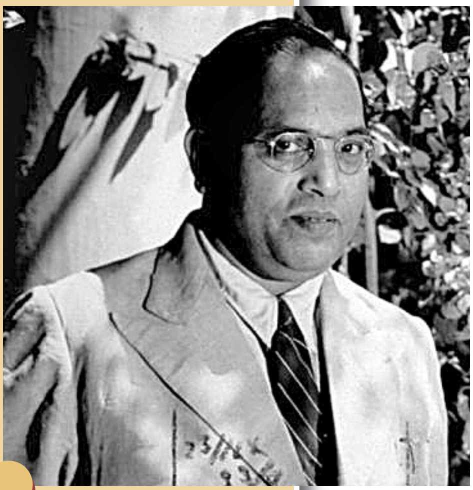

राजनीति राष्ट्र के जीवन का सबकुछ और अंतिम नहीं है।
- बाबासाहेब

कार्यकर्ताओं की बैठक, औरंगाबाद
जुलाई-अगस्त, 1953

राष्ट्र के रक्षा कवच

» डॉ. नरेन्द्र जाधव

भारतरत्न डॉ. भीमराव रामाजी आंबेडकर, जो स्नेह से बाबासाहेब कहे जाते हैं, निश्चित ही भारत के सर्वाधिक यशस्वी सपूतों में से एक हैं। वे भारत के सामाजिक राजनीतिक मंच पर 1920 के दशक के प्रारंभ में प्रकट हुए और ब्रिटिश राज से अंत तक भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक कायाकल्प के अग्रस्थान में रहे। सन् 1947 में स्वतंत्रता के बाद से सन् 1956 में मत्युपर्यंत आधुनिक भारत की नींव रखने में डॉ. आंबेडकर ने महत्वपूर्ण एवं अनूठी भूमिका निभाई।

डॉ. आंबेडकर का जीवन एक अविश्वसनीय आख्यान है: एक अस्पृश्य बालक, बचपन से जवानी तक कदम-कदम पर अपमानित, सभी विवशताओं को पार करते हुए वैश्विक स्तर के विश्वविद्यालयों से उच्चतम डिग्रियां प्राप्त करता है। इसके बाद वे अपना जीवन अन्यायपूर्ण एवं मानव अधिकारों से वंचित जातिबद्ध पुरानी सामाजिक व्यवस्था के विनाश हेतु समर्पित कर देते हैं। परिवार के किसी सौभाग्य या किसी राजनीतिक वंशावली के बिना ही केवल कमरतोड़ मेहनत, दृढ़निश्चय, उच्चतम साहस एवं स्वार्थरहित बलिदान के बल पर, जबरदस्त राजनीतिक विरोध तथा सामाजिक भेदभाव पर विजय पाते हुए वे स्वतंत्र भारत के संविधान के प्रधान निर्माता बन जाते हैं। तदुपरांत वो इस सकारात्मक कार्य के लिए रक्षाकवच बनाने के उद्देश्य से एक अधिक न्याययुक्त समाज, जो लाखों-करोड़ों पददलित लोगों को सामाजिक न्याय दे सके, उसकी स्थापना के कार्य में लग जाते हैं और इस प्रकार सामाजिक न्याय एवं तार्किकता पर आधारित एक नए भारत के निर्माण की बुनियाद रखते हैं। इस प्रक्रिया में वे न केवल भारतीय गणतंत्र के साहसी रक्षक वरन आधुनिक भारत के सज प्रहरी भी बनते हैं।

कोई आश्चर्य नहीं कि हमारे राष्ट्र के इतिहास में जितने नेता हुए हैं उनमें सबसे अधिक मूर्तियां डॉ. आंबेडकर की ही लगी हैं। इन मूर्तियों में वे एक हट्टे-कट्टे, नीले सूट और लाल टाई पहने हाथ में पुस्तक लिए हुए, जो निश्चित ही भारतीय संविधान है, दिखाए जाते हैं। ऐसी मूर्तियां सारे देश में हर जगह देखी जा सकती हैं- गांवों में, शहरों में और अकसर चौराहों पर। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि प्रत्येक वर्ष 6 दिसंबर (डॉ. आंबेडकर की निर्वाण तिथ) को लगभग 20 लाख लोग बंबई की चैत्य भूमि पर अपने नायक, जिसको वे अपने रक्षक के रूप में पूजते हैं, उनको श्रद्धांजलि देने के लिए एकत्रित होते हैं। यह भी आश्चर्य की बात नहीं है कि अगस्त 2012 में कुछ टी.वी. चैनलों द्वारा कराए गए ई-मतदान में उन्हें (महात्मा गांधी के बाद) सर्वश्रेष्ठ भारतीय चुना जाता है।

इस पृष्ठभूमि में स्पष्टतः यह भारी अन्याय होगा यदि उन्हें केवल दलितों के नेता के रूप में पहचाना जाए, जैसा कि अकसर जिम्मेदार लोगों के द्वारा भी किया जाता है। डॉ. आंबेडकर सिर्फ एक दलित नेता या भारत के शोषित लोगों के ही नेता नहीं थे। वे एक राष्ट्रीय नेता थे। उनकी विद्वता, उनका जन आंदोलन, सरकार और उसके बाहर उनकी भूमिका दिखाती है कि उनका जन आंदोलन, सरकार और उसके बाहर उनकी भूमिका दिखाती है कि उनका राष्ट्रवाद का ब्रांड उन लोगों से बिलकुल अलग था जो ब्रिटिश शासन से भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ रहे थे। डॉ. आंबेडकर का राष्ट्रवाद केवल भारतीयों को सत्ता हस्तांतरण तक सीमित नहीं था। उनकी दृष्टि में राष्ट्रवाद एक स्थायी प्रकृति के राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का कार्य था अर्थात यह सामाजिक समानता और सांस्कृतिक एकता के जरिए युगों पुरानी जातिग्रस्त, अन्यायपूर्ण, भेदभाव युक्त सामाजिक व्यवस्था को छोड़कर लोकतांत्रिक गणराज्य का निर्माण था।

एक राजनेता और जननायक होने के बावजूद वे गंभीर चिंतक एवं विद्वान थे। जनांदोलनों और राजनीतिक घटनाक्रमों में पूरी तरह से उलझे होने के बावजूद उन्होंने अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, मानवविज्ञान शास्त्र, इतिहास, संस्कृति, राजनीति, कानून एवं धर्म पर महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं जो उनके सच्चे बुद्धिजीवी होने का प्रमाण हैं।

डॉ. आंबेडकर ने बड़ी संख्या में विविध विषयों में क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भाषण दिए। राजनीति के अलावा उनके विषयों का दायरा सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, कानून और संविधान तक था। मंच के रूप में उनका दायरा बंबई प्रांत विधान परिषद, ब्रिटिश सरकार द्वारा लंदन में आयोजित गोलमेज परिषद, वायसराय कार्यकारी परिषद् में श्रमिक सदस्य के रूप में, केन्द्रीय विधानसभा, संविधानसभा तथा संसद तक फैला था। इसके अलावा एक अग्रणी सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों के नेता के रूप में उन्होंने कई सार्वजनिक भाषण दिए हैं। ■

(लेखक अर्थचिंतक एवं योजना अयोग के पूर्व सदस्य हैं)

मायावी आंबेडकरभक्त

रमेश पतंगे

युगप्रवर्तन करने वाले महापुरुषों के विषय में अमूमन समाज में भिन्न-भिन्न धारणाएं निर्मित होती हैं। युगपुरुष का एक भक्तगण वर्ग तैयार हो जाता है और ये भक्तगण उस युगपुरुष को अप्रमादशील देवता मानते हैं। दूसरा वर्ग ऐसा होता है जो उस युगपुरुष को कौड़ी की कीमत देने को तैयार नहीं होता। उसका मत होता है कि उसके कार्य और विचारों के कारण, समाज और राष्ट्र का अपरिमित नुकसान हुआ है। तीसरा वर्ग ऐसा होता है जो चतुर होता है और अपने स्वार्थ के लिए महापुरुष के विचारों का उद्वाहक बन जाता है। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, महात्मा गांधी और स्वातंत्र्यवीर सावरकर तीन ऐसे समकालीन महापुरुष हैं, जिनके बारे में ये तीनों धारणाएं हमें देखने को मिलती हैं। ऐसे भक्तजनों का मत है कि महात्मा गांधी जैसा महान व्यक्ति इस धरातल पर हजारों वर्षों के बाद ही आता है। जबकि दूसरे लोग गांधीजी को पाकिस्तान का निर्माता, भारत के दो टुकड़े करने वाला घमंडी, स्वयं को महात्मा कहनेवाला एक पाखंडी व्यक्ति मानते हैं। और कुछ लोग गांधीजी का उपयोग हिंदुत्ववादी विचारधारा को पीटने के लिए करते हैं। उन्हें गांधीजी तभी याद आते हैं जब कहीं दंगा-फसाद हो जाता है, घरवापसी जैसे कार्यक्रम होते हैं या पाकिस्तान के साथ झगड़े का संबंध आता है। अन्य समय वे चुप्पी साधे बैठे रहते हैं। इसी प्रकार डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी के बारे में भी उन्हें विश्वभूषण, महामानव मानने वाला एक वर्ग है और दूसरा वर्ग आंबेडकर जी को दलितों के नेता के अलावा अन्य कोई स्थान देने को तैयार नहीं है। इस वर्ग का मानना है कि आंबेडकर भारत में उभरे जातिवाद के जनक हैं। तीसरा वर्ग अपनी विचारधारा के स्वार्थ के लिए अत्यंत कुशलतापूर्वक आंबेडकर जी का उपयोग करता है।

हम इस लेख में इस वर्ग में आने वाले कुछ विद्वानों के लेखन का संक्षेप में विश्लेषण करेंगे।

अरुण शौरी

विश्लेषण के इस कार्य में पहला क्रम अरुण शौरी का आता है। उनकी किताब 'वर्शिपिंग फॉल्स गाड्स' काफी समय तक चर्चा में रही है। संक्षेप में उनका कहना है कि आंबेडकर जी की पूजा झूठे देवता की पूजा है। अरुण शौरी जी का कहना इस प्रकार है-

डॉ. आंबेडकर अंग्रेजों के मददगार थे। दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान वे वायसराय के मंत्रिमंडल में थे। इस कालखंड में कांग्रेस की प्रादेशिक सरकारों ने इस्तीफा दे दिया था। केंद्र की सरकार से भी वे अलग हो गए थे। सारा देश स्वतंत्रता आंदोलन में मग्न था। उस समय डॉ. आंबेडकर अंग्रेजों की सेवा करते रहे।

-भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में आंबेडकर जी ने कभी हिस्सा नहीं लिया। वे इससे अलग रहे।

-आंबेडकर अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' नीति का शिकार बन गए। अंग्रेजों के सामने उन्होंने विभक्त चुनाव क्षेत्र (सेपरेट इलेक्टोरेट) की मांग उठाई। अंग्रेजों ने उसे स्वीकृत किया और 1932 के कम्युनल एवार्ड में उन्हें विभक्त चुनाव क्षेत्र दे दिए गए। इसको खारिज कराने के लिए महात्मा गांधी जी को अनशन करना पड़ा।

-भारतीय संविधान आंबेडकर जी की देन नहीं है। संविधान का मूल मसौदा बी.एन. राऊ ने तैयार किया था। संविधान सभा में इसी मसौदे पर बहस चली। उसमें सुधार करने का काम आंबेडकर जी ने किया। भारतीय संविधान का श्रेय बी.एन.राऊ को देना चाहिए।

-डॉ. आंबेडकर जी ने पाकिस्तान की मांग का समर्थन किया। और उसके समर्थन में 'थॉटस् ऑन पाकिस्तान' नामक किताब लिखी। पाकिस्तान की सैद्धान्तिक भूमि बनाने में आंबेडकर जी का बहुत बड़ा योगदान है।

अरुण शौरी ने उपरोक्त बातों के समर्थन के लिए अपनी किताब में पन्ने-पन्ने पर दस्तावेजी साक्ष्य

मायावी आंबेडकरभक्त अनेक कारणों से खतरनाक होते हैं। उनका सार्वजनिक चेहरा दलित, शोषित के उत्थान का होता है और असली चेहरा हिंदू समाज में आग का बवंडर खड़ा करने वाला होता है।

बाबासाहेब (अगली पंक्ति के मध्य में) श्री जगजीवनराम, दादासाहब गायकवाड़ एवं अन्य।

सौजन्य : तरुण गुप्ता, अध्यक्ष, सेवा भारती, दिल्ली प्रांत

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:37 PM Page 34

(डॉक्यूमेंटरी एविडन्स) दिए हैं।

अरुण शौरी की लंबी-चौड़ी किताब इसका एक आदर्श पाठ है कि अनुसंधान की भूमिका लेकर किस प्रकार किसी व्यक्ति का चरित्रहनन किया जा सकता है। लेकिन वह कतई अनुकरणीय नहीं है। राष्ट्रीय एकता और सामाजिक एकता के लिए यह खतरनाक खेल है।

दूसरा पक्ष खुद को पूज्य डॉ. बाबासाहेब जी के अध्येता और उनके बारे में श्रद्धाभाव दिखाने वालों का एक गुट है। इसमें भी दो प्रकार। पहले प्रकार में वास्तविक आंबेडकर अध्येता आते हैं। महाराष्ट्र के कुछ नामों में आद्य चरित्रकार धनंजय कीर, वसंत मून, नामदेव ढसाल, केशव मेश्राम, रावसाहेब कसबे और नरेंद्र जाधव आदि हैं। दूसरे प्रकार में मायावी आंबेडकरभक्त हैं। उनके लक्ष्य अलग होते हैं। और वे छुपे लक्ष्य होते हैं। ये लक्ष्य तुरंत ध्यान में नहीं आते। इस मायावी वर्ग में आने वाले लोग अकादमिक फील्ड में अधिक पाए जाते हैं। अपने कथन को प्रमाणित करने के लिए वे काफी संदर्भ देते रहते हैं और परिस्थिति का विश्लेषण इस प्रकार करते हैं कि जिसका आंबेडकर जी के बारे में विशेष अध्ययन न हो, वह उनकी चाल में अवश्य फंस जाता है। ये लोग स्वयं को प्रगतिशील, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रवादी, बहुलवादी, मानवतावादी वगैरह विशेषणों से विभूषित कर लेते हैं। इनको मंच पर लाने के लिए देश भर में सैकड़ों मंच खड़े किए गए हैं, जिन्हें कल तक शासकीय प्रतिष्ठा भी प्राप्त होती थी। उन्हें मिलने वाले पुरस्कारों की कोई कमी नहीं होती। इनको देश-विदेश के अनेक पुरस्कार दिए जाते हैं। पुरस्कारों के कारण इनकी एक छवि बनती है। यह छवि 'लार्जर दैन लाइफ साईज' (अतिरंजित) होती है। यह 'इंटेलेक्चुअल आइकन' (बौद्धिक प्रतिमा) खड़े करने का एक विश्व प्रसिद्ध फंडा है। आम आदमी इसके पीछे चलनेवाले षड्यंत्रों से अनभिज्ञ रहता है।

गेल आम्वेट

ऐसे नामों में सब से पहला नाम लेना चाहिए गेल आम्वेट का। वे एक अमरीकी महिला हैं जो विदेशी 'सोशियोलॉजी' विद्या में पारंगत हैं। वे भारत की नागरिक बनी हैं। यहां आने के बाद उन्होंने भारत पाटणकर नामक भारतीय युवक से शादी कर ली है, हालांकि अपना नाम नहीं बदला है। उन्हें ऊंचा बनाने के लिए 'युनाइटेड नेशन्स डेवलपमेंट प्रोग्राम' के काम में उनको सहयोगी बनाया गया है। उनका प्रसिद्ध लेखन है, 'कल्चरल रिवोल्ट इन कोलोनियल सोसायटीः द नॉन ब्रह्मण मूवमेंट इन वेस्टर्न इंडिया।' उनकी तीन किताबों का उल्लेख यहां आवश्यक है 'दलित विजन्स', 'बुद्धिज्म इन इंडिया' और 'आंबेडकर टूवर्डस् एन एनलाइटेड इंडिया।' वे इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ एडवांस स्टडी, शिमला की फेलो हैं। नेट पर उनका बहुत विस्तृत लेखन उपलब्ध है। और इस लेख को पढ़नेवालों को मेरी सलाह है कि उनके लेखन को ध्यान से पढ़ा जाना चाहिए क्योंकि हमारे विद्वानों की यह मानसिकता रहती है कि गोरे मुख से जो आया, वह पवित्र, सत्य और स्वीकारणीय है। और दूसरी बात अकादमिक फील्ड में बैठे लोगों के लेखन का पाठ्यक्रमों में समावेश होता है और यह हमारे छात्रों की बुद्धि कलुषित करने का कार्य करता है।

गेल आम्वेट के लेखन की कुछ विशेषताएं इस प्रकार हैंः

1. दलित प्रेम इसका मायावी रूप है।

2. वे हिंदू धर्म, हिंदुत्व (हिंदुइज्म एंड हिंदुत्व) के खिलाफ जहरीला अकादमिक लेखन करती हैं।

3. हिंदू धर्म, हिंदुत्व यानी ब्राह्मणिज्म, जातिवाद, आर्यवंशवाद यह सब उनके गढ़े हुए सिद्धान्त हैं। इन सिद्धान्तों को लेकर वे अपनी हायपोथिसीस बनाती हैं। और फिर लंबे लेख अथवा पुस्तकें लिखती हैं।

4. भारत से हिंदू धर्म और हिंदुत्व को नष्ट किए बिना दलित मुक्ति संभव नहीं है। दलितों की अपनी स्वतंत्र आइडेंटिटी है और यह आइडेंटिटी (पहचान) हिंदुत्व से अलग है।

इसमें इस विद्वान महिला ने यह थीसिस बनाने का प्रयास किया है कि कबीर, रैदास, मंगुराम, रामस्वामी नायकर आदि भारत की महान संतानें किस प्रकार हिंदू विरोधी थीं। इससे हमें पता चलता है कि देश में आकर भारतीय धर्म-दर्शन पर काम करने वाले तमाम विदेशियों ने किस तरह से देश की अस्मिता और हमारे संस्कारों की दुनिया के सामने गलत व्याख्या प्रस्तुत की है। 12 सितंबर, 2008 का एक साक्षात्कार है जिसमें इस विदेशी विद्वान ने कहा है, 'स्कूलों में व्यवहार में लाए जा रहे पाठ्य में प्रत्यक्ष-परोक्ष ढंग से प्रस्तुत हो रहे ब्राह्मणिक हिन्दुइज्म का अंत होना चाहिए।'

> गेल आम्वेट का मानना है कि भारत से हिंदू धर्म और हिंदुत्व को नष्ट किए बिना दलित मुक्ति संभव नहीं है। दलितों की अपनी स्वतंत्र आइडेंटिटी है और यह आइडेंटिटी (पहचान) हिंदुत्व से अलग है। इसमें इस विद्वान महिला ने यह थीसिस बनाने का प्रयास किया है कि कबीर, रैदास, मंगूराम, रामस्वामी नायकर, आदि भारत की महान संतानें किस प्रकार हिंदू विरोधी थीं।

6. दलित विजन्स किताब की मुख्य विचारधारा इस प्रकार है - गेल आम्वेट हिंदुइज्म और ब्राह्मणिज्म को समतुल्य करती हैं। भारत का सेक्युलर डिस्कोर्स ब्राह्मणिकल टर्मिनोलॉजी में चलता है। ब्राह्मणिकल टर्मिनोलॉजी को खत्म किए बिना असली सेक्युलर डिस्कोर्स शुरू नहीं हो सकता। इसका सीधा अर्थ है कि हिंदू धर्म और हिंदू समाज को नष्ट किए बिना भारत में पंथनिरपेक्षता नहीं आ सकती। एक विदेशी महिला हिंदू देश में रहकर, हिंदुओं का अन्न खाकर और हिंदुओं पर ही प्रहार करने की हिम्मत कर सकती है और इसके बदले उसे पारितोषिक के रूप में उच्चपदस्थ स्थान दिए जाते हैं। यह प्रसंग हमारे इतिहास और वर्तमान मन को भयानक पीड़ा देनेवाला है।

जिस महिला को भारतीय समाजशास्त्र की एबीसीडी भी नहीं पता, उसे भारतीय समाजशास्त्र का विद्वान मानना और उसे बड़े स्थानों पर बिठाना भारत की बौद्धिकता का घोर अपमान है। भगवान गौतम बुद्ध, नानक, कबीर, रैदास, महात्मा फुले, आंबेडकर आदि महापुरुषों को समाजक्रांतिकारक या विद्रोही या बगावतखोर इन शब्दों से संबोधित नहीं किया जा सकता। ये सारे अभारतीय शब्द हैं। ये सभी महापुरुष धर्मग्लानि को दूर करने हेतु अवतरित हुए देवपुरुष हैं। क्रांति का मतलब होता है हिंसा और तोड़मरोड़ तथा विद्रोह में किसी से द्रोह करने की लालसा होती है, बगावतखोरी में खुद को दुनिया से सयाना समझने की भावना होती है। इन महापुरुषों में इसका शून्यांश है। उनके हृदय में अखंड प्रेम की धारा बहती थी। वे समाज के बारे में समग्रता से विचार करते थे। उन्होंने समाज का जातियों में कभी विभाजन नहीं किया। उनकी यही धारणा थी कि जाति अहंकार रखनेवाले और उस अहंकार का शिकार बने लोग एक ही अधर्म के भुक्तभोगी हैं। वे समूचे समाज का पुनरुत्थान चाहते थे। उन्हें दलित

आइडेंटिटी का पुरोधा बनाना और आंख पर पट्टी बांध कर हमारा उसको स्वीकारना केवल अपनी बुद्धि का अपमान नहीं, बल्कि मूर्खता की परिसीमा है।

शिक्षा संस्था

अपनी संत परंपरा हमको क्या सिखाती है, इसके कुछ उदाहरण यहां प्रस्तुत हैं-

भगवान गौतम बुद्ध ने धम्मपद में कहा है-
न हि वेरेन वेरानि, सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति, एस धम्मो सनन्तनो।
(वैर से वैर शांत नहीं होता, अवैर से ही शांत होता है।)
परे च न विजानन्ति, मयमेत्थ यमामसे।
ये च तत्थ विजानन्ति, ततो सम्मन्ति मेधगा।।
'हमें इस दुनिया से जाना है यह जान लेने से ही सब झगड़े शांत हो जाते हैं।'

गुरु नानक देव की वाणी ऐसी है-
एक ओंकार सतिनाम, कर्त्ता पुरखु निरभऊ।
निरबैर, अकाल मुरति, अजूनी, सैंभ गुरु प्रसादि।
हरि बिनु तेरो को न सहाई,
काकी मात-पिता, सुत बनिता, को काहू को भाई।

संत कबीर जी की वाणी इस प्रकार हैः
राम निरंजन न्यारा रे आंजन सकल उपचारा रे।
लूट सके तो लूट ले, राम नाम की लूट।
पाछे फिर पछताओगे, प्राण जाहिं जब छूट।।
पांच पहर अन्धे गया, तीन पहर गया सोय।
एक पहर हरि नाम बिनु, मुक्ति कैसे होय।।

रैदास जी कहते हैं-
कृस्न, करीम, राम, हरि, राघव जब लग एक न पेखा।
वेद कतेब कुरान, पुरानन,सहज एक नहिं देखा।।
हरि-सा हीरा छांड कै, करै आन की आस।
ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाषै रविदास।।

धर्म की ऐसी शिक्षा देनेवाले धर्मपुरुषों को दलित आइडेंटिटी के ऑइकन बनाना घटिया किस्म का काम है।

अरुंधति राय

गेल आम्वेट की दूसरी सहेली हैं अरुंधति राय। अरुंधति राय को बुकर पारितोषिक मिला या दिलाया गया, पर इस कारण यह लेखिका एक रात में ही भारत में ऑइकन बन गई। जिस अखबार के नाम में हिंदू है लेकिन पत्र की नीति हिंदूनाशक है, उस हिंदू दैनिक की यह दोनों मान्यवर लेखिकाएं हैं। और हिंदू से उनको काफी सम्मान भी मिलता है, इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है। इस अरुंधति राय का एक चेहरा दलित-शोषित-आदिवासीपरक है। उनके लिए लड़ने-झगड़नेवाली ऐसी उसकी छवि बहुत कष्ट एवं पैसा खर्च करके बनाई गई है। ऐसी बड़ी छवि बनने के बाद अपने स्वार्थ के डर के कारण अनेक लोग इन व्यक्तियों पर कुछ लिखते-बोलते नहीं और चुप्पी साध कर बैठ जाते हैं।

'एनिहिलेशन ऑफ कास्ट' बाबासाहेब जी की अत्यंत महत्वपूर्ण किताब है। इस किताब को दिल्ली की नवयान प्रकाशन संस्था ने फिर से प्रकाशित किया है। इस पुस्तक के लिए उन्होंने अरुंधति राय से प्रस्तावना लिखने के लिए कहा और अरुंधति राय ने लंबी प्रस्तावना लिखी है। जब पुस्तक बाजार में आ गई तब पुस्तक के आवरण पर आंबेडकर जी के नाम के साथ-साथ अरुंधति राय का भी नाम लिखा गया। यह बहुत ही आपत्तिजनक बात है। आंबेडकर जी की पुस्तक की प्रस्तावना लिखने का अरुंधति को क्या अधिकार है-यह पहला प्रश्न है। आंबेडकर जी की किसी भी पुस्तक में अन्य किसी की प्रस्तावना नहीं है। लेखक प्रस्तावना उसी से मांगता है जिसको वह अपने से बड़ा और विद्वान अध्येता समझता है। नवयान ने बहुत चालाकी करके अरुंधति राय को आंबेडकर जी के समकक्ष रखा है।

...जिन लोगों ने तथाकथित नेशनलिस्ट हरिजन पार्टी बनाई है उन्होंने मुझ पर आरोप लगाया है... इस आरोप का खंडन किया जाना है। हरिजनों के इस संगठन के लिए मैंने एक नाम चुना है। मैं उन्हें 'ले भग्गू' - उठाईगीर या उठाकर भागने वाले चोर कहता हूं।..

— **समता सैनिक दल बैठक,** मुंबई, 8 नवंबर, 1936

अरुंधति राय की प्रस्तावना एक शरारतपूर्ण दस्तावेज है। इस पुस्तक में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने कहा है कि, अगर हिंदू समाज को संगठित होना है तो उसे जातिमुक्त होना चाहिए। जाति का बंधन धर्म के कारण है, धर्म की मान्यता समाप्त कर देनी चाहिए, समाज को एकवर्णीय बनना चाहिए। समाज का संगठन, स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व इस तत्वत्रयी पर आधारित होना चाहिए। उनके प्रतिपादन का यह मुख्य विषय है। और इस विषय पर उनका अध्ययन गहन और चिंतन बेजोड़ है। इस भाषण में उन्होंने चातुर्वर्ण्य की बौद्धिक चिकित्सा की है, जातिप्रथा, वेदों और धर्मग्रंथों की चर्चा की है। अरुंधति के लंबे दस्तावेज में इसका कोई जिक्र नहीं है। अरुंधति राय ने इस पुस्तक की प्रस्तावना के माध्यम से महात्मा गांधी जी को बहुत नीचा दिखाने का प्रयास किया है। उसके कुछ वाक्य इस प्रकार हैं -

-बनिया परिवार में जन्मे गांधी एक वैश्य थे।

-आंबेडकर अछूत थे। (दोनों की जातियां निकाली हैं। इसे ही प्रोग्रेसिव (प्रगतिशील) कहना चाहिए।)

-दोनों ही अलग-अलग हितसंबंधों का प्रतिनिधित्व करते थे।

-इतिहास गांधी जी के बारे में दयालु है, उनको संत बना दिया है। लेकिन वे यथास्थितिवाद के संत थे।

-गांधीजी ने चातुर्वर्ण्य का कभी खंडन नहीं किया।

-गांधीजी को महात्मा की उपाधि दिलाने में अंग्रेजों की विशेष भूमिका रही है।

-विशेषाधिकार प्राप्त बनिया जाति में जन्मे गांधी 45 दशलक्ष अछूतों के

नेता कैसे बन सकते थे?

अरुंधति राय ने बड़ी ही निर्ममता से गांधीजी को नीचा दिखाने का काम किया है। प्रश्न यह खड़ा होता है कि हमारे तथाकथित गांधीभक्त क्या पंथनिरपेक्षता की भांग पीकर सो गए हैं? किसी राम पुनियानी ने 'सेकंड एसेसिनेशन ऑफ गांधी' नामक एक किताब लिखी है। अरुंधति राय का यह एसेसिनेशन कितने नंबर का है और इस पर यह पुनियानी क्या कहते हैं?

प्रश्न यह खड़ा होता है कि, अरुंधति राय ने आंबेडकर की भूमिका को लेकर महात्मा गांधीजी को नीचा ठहराने का कष्ट क्यों किया है? आंबेडकर जी को उन्होंने हिंदू विरोधी के तौर पर पेश किया है। महात्मा गांधी हिंदू समर्थक थे। सेक्युलरिज्म को अगर विजयी होना है तो हिंदूवाद को पहले खत्म करना चाहिए। चूंकि गांधीजी हिंदू ऑइकन हैं इसलिए उनकी प्रतिमा को ध्वस्त करना पहला काम होता है।

डॉ. आनंद तेलतुंबडे

इन मायावी आंबेडकरभक्तों में तीसरा नाम डॉ. आनंद तेलतुंबडे का लेना चाहिए। आनंद तेलतुंबडे मैनेजमेंट प्रोफेशनल हैं। वे लेखक और राजनीतिक विश्लेषक हैं। उन के नाम पर कई पुस्तकें हैं। अंग्रेजी में वे काफी लेखन करते हैं और भारत के सेक्युलर फोरम के चहेते वक्ता हैं। वे मार्क्सिस्ट (मार्क्सवादी) हैं लेकिन अपने आप पर मार्क्सवाद का लेबल नहीं लगाते। वे कहते हैं, 'मैं अपने आप को मार्क्सवादी नहीं कहता।'

डॉ. बाबासाहेब जी का जीवन संघर्ष क्या है? अस्पृश्यता मुक्ति का है, जाति निर्मूलन का है, हिंदू समाज की पुनर्रचना करने का है, स्वतंत्रता-समता-बंधुता इन तत्वों के आधार पर समाज को नए सिरे से बांधने का समाज संघर्ष है? या हिंदू समाज को उपरोक्त मौलिक तत्वों के आधार पर संगठित कर संगठित, सामर्थ्य संपन्न हिंदू समाज खड़ा करने का है? भारत में एक भी दलित या मायावी दलित या दलितहितैषी इस दूसरे विषय की चर्चा करने का साहस नहीं कर सकता। डॉ. आनंद तेलतुंबडे अपने आप को जातिनिर्मूलन तक सीमित रखते हैं। बाबासाहेब जी के जीवन के बारे में उनका भाष्य पढ़कर पाठक हैरान हो जाएंगे। वे लिखते हैं- 'बाबासाहेब जी के जीवन पर ऊपरी नजर दौड़ाई तो यह ध्यान में आता है कि उनको हर क्षेत्र में असफलता मिली है। वे जिसकी कामना करते थे उसमें उनको सफलता नहीं मिली। दलितों के लिए राजनीतिक प्रतिनिधित्व पाने हेतु उन्होंने कड़ा संघर्ष किया लेकिन वह सफल नहीं हुआ। वे विरोधी प्रत्याशी के बौना होते हुए भी अपने जीवन में कभी आरक्षित स्थानों से चुनाव नहीं जीत पाए। दलितों की उच्च शिक्षा के लिए उन्होंने शिक्षा संस्थान खोले लेकिन नवशिक्षित दलितों ने उनसे विश्वासघात किया। उन्होंने जातिनिर्मूलन का मंत्र दिया परंतु आधुनिक भारत में जाति को संवैधानिक मान्यता देने का कार्य भी किया। अस्पृश्यता भले ही कानूनी तौर पर दंडनीय अपराध बनी रहे लेकिन सामाजिक स्तर पर उसका कड़ाई से पालन होता है। खुद को आंबेडकरवादी कहनेवाले भी अभिमान से अपनी जाति का उल्लेख करते हैं।'

डॉ. आनंद तेलतुंबडे इस प्रकार की उत्तेजक भाषा का प्रयोग क्यों करते हैं? उनको दलितों से मार खाने का भय नहीं है क्योंकि वे खुद दलित हैं। दलितेतर विद्वान इनकी बातों को उठा नहीं सकता क्योंकि वह मार खाएगा। इनके पीछे जो उद्देश्य छिपा हुआ है, उसे समझना पड़ेगा। डॉ. तेलतुंबडे खुद को मार्क्सवादी भले ही ना कहें (नक्सली भी अपने आप को मार्क्सवादी नहीं कहते होंगे।) लेकिन दलितों को मार्क्सवाद की दीक्षा देना चाहते हैं। डॉ. बाबासाहेब जी ने जीवनभर दलितों को कम्युनिज्म से दूर रखने का प्रयास किया। उनका विचार था कि कम्युनिस्ट बनने से अपना कुछ भला नहीं होगा, ना हमारी अस्पृश्यता जाएगी, ना हमें सामाजिक स्वतंत्रता मिलेगी और ना हमें राजनीतिक अधिकार मिलेंगे, इन बातों को बाबासाहेब बार-बार कहते रहे हैं। भारत में कई बुद्धिवादी लोग नक्सलियों के लिए 'रिक्रूटिंग ग्राउंड' बनाने का काम करते रहते हैं। और उनके राडार पर दलित युवक हैं। लेकिन आनंद तेलतुंबडे क्या चाहते, इस बात को उन्हें ही खुलकर बताना चाहिए।

आनंद तेलतुंबडे का एक विस्तृत लेख है, 'आइडेंटिटी पॉलिटिक्स एंड एनिहिलेशन ऑफ कास्ट।' मैं यहां पर केवल उसके आंतिम परिच्छेद का उल्लेख करना चाहता हूं जिसमें तेलतुंबडे लिखते हैं, 'दलित, दलित बहुजन, मूलनिवासी, बुद्धिस्ट सही मायने में जातिगत पहचान (आइडेंटिटी) नहीं है', इन शब्दों के अंदर ही जाति के तर्कशास्त्र को नकारा गया है। वे अपने आप को शोषित समूह का एक गुट समझते हैं। लेकिन इस प्रकार का विश्लेषण जाति के स्वरूप को ठीक प्रकार से न समझने से किया जाता है। किसी भी नाम से आइडेंटिटी गुट बनाने का प्रयास होता है, वह जाति के आधार पर ही करना पड़ता है। और उसका रूप जाति के खिलाफ है, ऐसा हम कितना भी कहें, फिर भी वह जाति को और सशक्त करने में परावर्तित हो जाता है। जाति के राक्षस को समाप्त करने का एक ही उपाय है और वह है- वर्ग के आधार पर राजनीति को चलाना। दिखने में यह कठिन क्यों न लगे लेकिन इतिहास कहता है कि सामाजिक पंगुता को दूर करने का कोई शॉर्टकट नहीं होता।

> प्रश्न यह खड़ा होता है कि, अरुंधति राय ने प्रो. आंबेडकर की भूमिका को लेकर महात्मा गांधीजी को नीचा ठहराने का कष्ट क्यों किया है? आंबेडकर जी को उन्होंने हिंदू विरोधी के तौर पर पेश किया है। महात्मा गांधी हिंदू समर्थक थे। सेक्युलरिज्म को अगर विजयी होना है तो हिंदूवाद को पहले खत्म करना चाहिए। चूंकि गांधीजी हिंदू ऑइकन हैं इसलिए उनकी प्रतिमा को ध्वस्त करना पहला काम होता है।

इस लेख में मैंने अत्यंत संक्षेप में मायावी आंबेडकरभक्तों की सोच के कुछ उदाहरण रखने का प्रयास किया है। मायावी आंबेडकरभक्त अनेक कारणों से खतरनाक होते हैं। पहला कारण ऐसा कि, उनका सार्वजनिक चेहरा दलित, शोषित के उत्थान का होता है और असली चेहरा हिंदू समाज में आग का बवंडर खड़ा करने वाला होता है। गत कुछ सालों से देश भर में लिंगायत, मराठा, रैदासी आदि अनेक समाजों में इस प्रकार के आंदोलन चल रहे हैं कि हम हिंदू नहीं हैं, हमारी अलग पहचान है। लिंगायत अलग धर्म है, मराठों का शिवधर्म है, चर्मकारों का रैदासी धर्म है। इसकी जड़ में जो अनेक लोग हैं, उनमें गेल आम्वेट का नाम अग्र पंक्ति में आता है। इसी कारण इन मायावी लोगों के मायाजाल को ध्वस्त करना राष्ट्रीय कर्तव्य बनता है। हमारे इतिहास, पुराणों में, रामायण-महाभारत में ऐसे मायावी भक्तों के कई उदाहरण आते हैं और उनसे कैसे निपटना चाहिए, वह कथा यह भी बताती है। यह बौद्धिक लड़ाई है। उसे ध्यान में रखकर हमें भी बौद्धिक योद्धा बनकर जंग के मैदान में उतरना चाहिए। ■

(लेखक हिंदुस्थान प्रकाशन संस्थान के अध्यक्ष, सामाजिक समरसता मंच के संस्थापक सदस्य हैं)

सौजन्य : चेतना संस्थान, हिमाचल प्रदेश

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:40 PM Page 37

एक राह के दो राही

» भि. रा. इदाते

समाज की एकता से जुड़े डॉ. आंबेडकरजी के विचारों को देखकर ही 1973 में आपके 73वें जन्मदिवस पर तत्कालीन सरसंघचालक श्रीगुरुजी ने भीमराव साहित्य संघ मुम्बई के अध्यक्ष श्री शिरीष कडलाक के नाम पत्र लिखकर अपनी भावनाएं व्यक्त की थीं।

श्रीगुरुजी लिखते हैं, 'वंदनीय डॉ. आंबेडकर की पवित्र स्मृति को नमन करना मेरा स्वाभाविक कर्तव्य है। भारत के संदेश की गर्जना द्वारा जिन्होंने सारी दुनिया में खलबली मचाई, उन्होंने कहा कि दीन, दुर्बल, दरिद्र, अज्ञान में डूबे भारतवासी ही मेरे लिए ईश्वरस्वरूप हैं, उनकी सेवा करना और उनके अंदर के सूक्ष्म चैतन्य को जगाकर उनके ऐहिक जीवन को सुखपूर्ण तथा उन्नत करना, यही सच्ची ईश्वर सेवा है, ऐसा कहते हुए, अपने समाज को छुओ मत, इस अनिष्ट रूढ़ि को देख उस पर तथा उस प्रवृत्ति में संलग्न सभी रूढ़ियों के ऊपर कठोर प्रहार कर समूचे समाज की फिर से नई रचना करने के उद्देश्य से जगाकर आह्वान किया। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने बड़े जोश से इस आह्वान का समर्थन किया और अज्ञान के दुखों व कर्दम में लोट रहे तथा अपने अपमानित समाज के बड़े और महत्वपूर्ण हिस्से को आत्मसम्मानपूर्वक खड़ा किया। यह उनकी असाधारण करामात है। उन्होंने राष्ट्र के ऊपर असीम उपकार किया है। वे ऐसे श्रेष्ठ व्यक्ति हैं कि उनसे उऋण होना कठिन हैं।

स्वामी विवेकानंद ने सही ही मार्गदर्शन किया है कि श्रीमत शंकराचार्य की कुशाग्र बुद्धि तथा भगवान बुद्ध के परम कारुणिक विशाल हृदय के मिलाप से ही भारत का उद्धार हो सकता है। यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि डॉ. आंबेडकर ने बौद्ध मत का स्वीकार और पुरस्कार कर इस मार्गदर्शन के महत्वपूर्ण हिस्से को पूर्ण करने के कार्य को अच्छी गति प्रदान की है। उनकी विवेचक तथा कुशाग्र बुद्धि, दार्शनिक दृष्टि से बौद्ध मत की त्रुटियों को देख रही थी और आपने उनका निर्देश भी किया है। डॉ. आंबेडकर ने इस मत को बड़े आग्रहपूर्वक समर्थन दिया। इस कारण कि व्यवहार में सफलता, शुचिता तथा एक दूसरे के लिए कारुण्यपूर्ण स्नेहमयता आदि सभी गुणों से मानवसेवा की विशुद्ध प्रेरणा प्राप्त होती है। बौद्धमत की श्रद्धा से उत्पन्न ये लाभ राष्ट्र की और साथ ही मानवता की उन्नति के लिए अत्यावश्यक हैं। समाज सुधार के उद्देश्य और धर्म के स्वरूप को विशुद्ध बनाने हेतु भगवान बुद्ध ने तत्कालीन समाजधारणा के ऊपर टिप्पणी की, अलग होने के लिए नहीं और वर्तमान काल में भी डॉ. बाबासाहेब ने भी समाज के भले के लिए, धर्म के हित में, अपना चिरंजीव समाज दोष रहित तथा सुदृढ़ बने, इसी उद्देश्य से कार्य किया- समाज से अलग होकर अपना भिन्न पंथ बनाने के इरादे से नहीं- यही मेरी श्रद्धा है और इस युग में भगवान बुद्ध के उत्तराधिकारी इस नाते आपकी पवित्र स्मृति में मैं अंतःकरणपूर्वक अभिवादन कर रहा हूं। (पत्ररूप श्री गुरुजी, पृ. 44)

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के जन्मशताब्दी वर्ष का प्रारंभ दिनांक 14 अप्रैल, 1990 के दिन हुआ। इस उपलक्ष्य में प्रकाशित निवेदन में सरसंघचालक श्री बालासाहेब देवरस कहते हैं, भारत एक नाजुक हालात से गुजर रहा है और उसी समय महान देशभक्त, सामाजिक समरसता के समर्थक तथा भारतीय संविधान के शिल्पकार पूजनीय डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर की जन्मशताब्दी का वर्ष दिनांक 14 अप्रैल, 1990 से आरंभ हो रहा है। आज की कठिन परिस्थितियों में समाज को डॉ. बाबासाहेब के विचारों तथा जीवन से प्रेरणा लेकर भारतीय जनतंत्र, राष्ट्रीय एकात्मता और सामाजिक एकता को मजबूत बनाने का प्रयास करना चाहिए। और निर्मल मन से डॉक्टर साहेब के कार्य का मूल्य मापन करना चाहिए।

दलित बंधुओं के प्रति हो रहे अन्याय को मुखरित कर उन्हें न्याय दिलाने की धारणा और उद्देश्य से किए गए आपके प्रयत्नों की पराकाष्ठता का प्रमुख कारण देश

हिन्दू समाज न्यायपूर्ण हो, समरसतापूर्ण हो और भेदभाव से मुक्त होकर संगठित हो- यही डॉ. आंबेडकर का ध्येय था। 1973 में तत्कालीन सरसंघचालक श्रीगुरुजी ने लिखा था- अपमानित समाज के महत्वपूर्ण हिस्से को आत्मसम्मानपूर्वक खड़ा करके उन्होंने राष्ट्र के ऊपर असीम उपकार किया है।

एक सार्वजनिक कार्यक्रम के दौरान बाबासाहेब

सौजन्य : रामस्वरूप शर्मा, सांसद (लोकसभा) मंडी, हिमाचल प्रदेश-175001

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:41 PM Page 38

की एकता ही था। उनकी धारणा थी कि यदि देश कुछ अच्छे दिन देखे ऐसा किसी को लगा, तो जातिभेद समाज में से नष्ट होना चाहिए और उसके लिए जाति का उच्चाटन होना चाहिए। आपकी इस धारणा का प्रतिपादन करते हुए श्री दत्तोपंत ठेंगडी जी ने आपके एक कथन का संदर्भ दिया है। डॉ. बाबासाहेब कहा करते थे-

So long as castes remain, Hindu religion cannot be made a missionary religion and shuddhi will be both folly and futility. So long as castes remain there would be no Sangathan and so long as there is no Sangathan, the Hindus would remain weak and meek. Caste has made sangathan and co-operation even for a good cause impossible. There is no Hindu consciousness in every Hindu, the consciousness that exists is the consciousness of the castes.

(जब तक जाति रहेगी, हिन्दू धर्म एक मिशनरी धर्म नहीं बनाया जा सकता है और शुद्धि एक नादानी और निरर्थकता ही बनी रहेगी। जब तक जाति रहेगी, तब तक संगठन नहीं हो सकता है, और जब तक संगठन नहीं होगा, हिन्दू कमजोर और दीन बने रहेंगे। जाति ने किसी अच्छे उद्देश्य के लिए भी संगठन और सहयोग को असंभव बना दिया है। प्रत्येक हिन्दू में हिन्दू जागृति नहीं है, जो जागृति है, वह जाति की जागृति है)

(अपने समाज के भविष्य के बारे में अपेक्षाएं- कल की और आज की- पृष्ठ 74)

अगर हम डॉ. बाबासाहेब के राष्ट्रचिंतन को विश्लेषित करें तो हिन्दू समाज पर विचार करना अपरिहार्य लगता है। इतना ही नहीं, हिन्दू समाज में अगर सुधार हो नहीं पाया, आवश्यक परिवर्तन समाज में नहीं हुआ, तो देश कमजोर बना रहेगा, बाबासाहेब को इसका ख्याल था। इसलिए बाबासाहेब हिन्दू समाज में सुधार लाने के अविरल प्रयास कर रहे थे। द्वारका खैरमोडे ने आपके इन प्रयासों का वर्णन नामक चांगदेव खैरमोडे की लिखी पुस्तक डॉ. आंबेडकर और हिन्दू कोड बिल में किया है। वे कहती हैं- अपने आंदोलन के आरंभ से ही माने सन् 1924 से, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के, सामाजिक समता के हित में, जिससे हिन्दू समाज एकात्म होगा, प्रयास जारी थे, वे सीधे उन के जीवन के अंत तक जारी रहे। हिन्दू समाज के कल्याण के लिए आवश्यक एकात्मता की विचार प्रणाली और उसकी पूर्ति हेतु किए जा रहे कार्य को लोगों ने आपके जीवनकाल में ठीक समझा ही नहीं। (पृष्ठ 1) ऐसी स्थिति में पं. नेहरू के लोकसभा में हिंदू कोड बिल को पेश करने के वचन को भंग करने से बाबासाहेब को घोर निराशा हुई और उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। इस अवसर पर दिए गए डॉ. आंबेडकर के भाषण पर रोक लगाकर उपसभापति महोदय ने बाबासाहेब तथा उनकी प्रगाढ़ विद्वता को अपमानित किया। समूचा हिन्दू समाज सम्मानपूर्वक चिरकाल जी सके, भारत की स्वाधीनता अक्षुण्ण रहे, इसके लिए जी तोड़ मेहनत करने वाले और सम्माननीय अवस्था प्राप्त करा देने वाले बाबासाहेब को अपमानित होकर लोकसभा छोड़नी पड़ी। कैसी रही यह दैव की गति!

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के बारे में बाबासाहेब के मन में बहुत जिज्ञासा थी। वे संघ शिविर में गए थे और अस्पृश्यता का कोई नामोनिशान न देखकर प्रसन्न हुए थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के समस्त स्वयंसेवक एकात्मता स्रोत में (ठक्करो भीमरावश्च, फुले नारायणो गुरुः) हर दिन उनका स्मरण करते हैं। डॉ. आंबेडकर ने अनुसूचित जातियों की नाराजगी को कम्युनिज्म के चंगुल में पड़ने से बचा लिया था।

संघ के शिविर में पहुंचे बाबासाहेब छुआछूत के नितांत अभाव और स्वयंसेवकों के अनुशासन से अभिभूत थे। उन्होंने प्रश्न किया कि इनमें अस्पृश्य समाज के कितने स्वयंसेवक हैं? उन्हें उत्तर दिया गया कि इनमें न कोई सवर्ण है, और न कोई अस्पृश्य। जो हैं वे सिर्फ हिन्दू हैं। बाबासाहेब के लिए यह अनुभव अनूठा था।

डॉ. बाबासाहेब की जन्मशताब्दी के अवसर पर प्रसारित निवेदन में रा.स्व.संघ के सरसंघचालक श्री बालासाहेब देवरस इसी भाव को व्यक्त कर कहते हैं- 'डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जिन्हें अपने गुरु मानकर सम्मान देते थे, उन महात्मा फुले का भी अब स्मृति शताब्दी वर्ष है। महात्मा फुले तथा डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने अपने सारे आंदोलन अस्पृश्यों को उनका अधिकार दिलाने के लिए ही छेड़े। इसीलिए जब बाबासाहेब और उनके अनुयायियों के सम्मेलन में हिन्दू समाज से कृतज्ञतापूर्वक धर्मांतरण का अंतिम निर्णय हुआ, तब संघ के प्रचारक श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी बाबासाहेब से मिलने गये थे। चर्चा के दौरान बाबासाहेब ने उनसे कहा, 'मेरे सामने सवाल यह है कि अपने देहावसान के पहले मुझे समाज के लिए कोई भी डिफिनेट डाइरेक्शन देना चाहिए क्योंकि यह समाज अभी तक दलित, पीड़ित, शोषित बना हुआ है। इसलिए अब उसमें जो नवजागृति आ रही है, उसमें एक प्रकार की चिढ़, जोश का होना सहज है और इस प्रकार का जो समाज होता है वह कम्युनिज्म का भक्ष्य बनता है (It is cannon fodder for communism) और मैं नहीं चाहता कि अपना यह समाज कम्युनिज्म के अधीन आ आए। इसलिए आप राष्ट्रीय दृष्टि से उसे सीधा (सही) करने के उद्देश्य से प्रयास कर रहे हैं, लेकिन एक बात समझ लें कि Between scheduled castes and communism Ambedkar is the barrier and between castes Hindus and communism Golwalkar may be a barrier. (अनुसूचित जातियों और कम्युनिज्म के बीच में आंबेडकर एक बाधा है और सवर्ण हिन्दुओं तथा कम्युनिज्म के बीच में गोलवलकर एक बाधा हो सकते हैं) (डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर- द.बा. ठेंगडी - पृष्ठ 16)

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के बारे में उनके मन में बहुत जिज्ञासा थी। वे संघ शिविर में गए और अस्पृश्यता का कोई नामोनिशान न देखकर प्रसन्न हुए थे। वे (महाराष्ट्र में) कराड की भवानी शाखा और दापोली की शाखा में भी गए थे। 1948 में जब संघ पर प्रतिबंध लगा हुआ था तो पूज्य श्रीगुरुजी डॉ. आंबेडकर जी को मिले थे। अपनी व्यथा उनके सामने रखी थी और संघ पर से जब प्रतिबंध हटा तो पूज्य श्रीगुरुजी ने उनको कृतज्ञता पत्र भेजा था। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के समस्त स्वयंसेवक एकात्मता स्रोत में (ठक्करो भीमरावश्च, फुले नारायणो गुरुः) हर दिन उनका स्मरण करते हैं। उनको प्रातःस्मरणीय मानते हैं। ■

(लेखक असंसूचित एवं घुमंतू जनजाति आयोग के अध्यक्ष हैं)

सौजन्य : आशु बेटा, गांधी नगर, दिल्ली -110031

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:01 PM Page 39

ध्येयनिष्ठ जीवन के धनी

डॉ. अशोक मोडक

पिछले तीन दशकों में देश में मध्यमवर्गीय नागरिकों की संख्या लगभग पच्चीस करोड़ हो गई है और सन् 2015 तक यह संख्या पचास करोड़ से ज्यादा होगी, यह अनुमान एशियन डेवलपमेंट बैंक ने निकाला है। दुर्भाग्य से इसी कालावधि में उपभोगिता, स्वच्छंदता और संस्कृतिहीनता की विकृतियां हम सबको अस्वस्थ कर रही हैं। मध्यवर्गीय समाज इन विकृतियों का गुलाम हो रहा है। इस वातावरण में डॉ. आंबेडकर जी की ध्येयवादिता से भूले-भटके नागरिकों को रास्ते पर लाने का, उनकी घरवापसी का मार्गदर्शन होता है। आंबेडकर जी ने तो भारत के दलितों और पंडितों के उद्धार का ध्येय अपनी आंखों के सामने रखा था। उन्होंने अथक परिश्रम से अपने जीवन में इस ध्येय की पूर्ति भी की। यदि हम इसी आदर्श की निजी और सार्वजनिक व्यवहार में निरपेक्ष पूजा करेंगे तो खुद को भी कृतार्थ करेंगे तथा समाज को भी समृद्ध करेंगे।

वैश्वीकरण के कारण दुनिया के भिन्न-भिन्न देशों की हर तरह की चीजें अपने देश के छोटे गांव में भी विपुल मात्रा में उपलब्ध हैं। इन चीजों के उत्पादन और प्रभावी विज्ञापन करने में एक-दूसरे से स्पर्धा है। साधारण मध्यमवर्गीय समाज पड़ोसी को अपना वैभव दिखने की तमन्ना रखता है। किसी विचारक ने लिखा है- जो पड़ोसी मुझे अप्रिय है उसे प्रभावित करना यही मेरी तमन्ना है, और इसी उद्देश्य से वे चीजें खरीदना मेरी चाह है, जिनकी मेरे लिए जरूरत नहीं है। नतीजतन उपभोगप्रियता बेहद बढ़ रही है। यानी स्वच्छंदता भी असीम मात्रा में बढ़ रही है। कोई छात्र आईटीआई की परीक्षा में पास होने के बाद किसी फैक्ट्री में अप्रेन्टिस बनता है। उससे सुबह नौ से शाम छह बजे तक प्रामाणिक काम करने की अपेक्षा की जाती है। वह सुबह ग्यारह बजे कारखाने में आता है और दोपहर दो-तीन बजे घर वापस लौटता है। आश्चर्य इस बात का है कि जो चार घंटे वह कारखाने में बिताता है, तब भी अधिकांश समय कैंटीन में होता है। और ज्यादा आधा घंटा मशीन के इर्द-गिर्द गपशप लगाता है। और विस्मय की बात यह है कि दो साल का अप्रेन्टिसशिप समय समाप्त होने के पूर्व वह मैनेजर महोदय से कैरेक्टर सर्टिफिकेट देने की प्रार्थना करता है। विडंबना यह कि मैनेजर साहेब सर्टिफिकेट दे देते हैं।

संस्कृतिहीनता भ्रष्टाचार, महिलाओं पर बलात्कार और करुणाहीन, लज्जाहीन स्वैरता के रूप में प्रकट हो रही है। खाओ, पियो, ऐशोआराम, मौजमस्ती करो- यही मानव जीवनदृष्टि बनी है। डॉ. आंबेडकर जी के ध्येयवादी जीवन के बारे में चिंतन-मंथन करने से वर्तमान विकृतियों को मात देने का उचित मार्ग प्राप्त होता है। किसी ने लिखा हैः उदात्त ध्येयपूर्ति के लिए जीवनभर स्वयंप्रेरणा से कठोर साधना करने वाले बाबासाहेब आंबेडकर इस परिस्थिति में शाश्वत मार्गदर्शन कर सकते हैं।

इस ध्येयसाधना के बीज बाबासाहेब के बाल्य जीवन में ही बोए गए हैं। विदेश यात्रा पर जाने से पहले, सन् 1893 में बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ से उनकी मुलाकात हुई। सयाजीरावजी ने भीमराव से पूछाः क्यों जाना चाहते हैं विदेश? भीमराव ने उत्तर दिया कि अमरीका और ब्रिटेन जाने का मेरा हेतु केवल उच्च शिक्षा प्राप्त करने तक सीमित नहीं है। जीवन में मेरे दलित भाई-बहनों का उत्थान करने के व्यापक हेतु की पूर्ति के लिए आवश्यक अर्हता प्राप्त करना ही विदेश जाने का मेरा उद्देश्य है। सन् 1952 में यानी अपनी मृत्यु से चार साल पूर्व बाबासाहेब ने बंबई में भाषण देते समय श्रोताओं को जानकारी दी कि सन् 1893 में मैंने सयाजीराव महाराज को जो वचन दिया था, उसे मैंने पर्याप्त मात्रा में पूरा किया है। एक हिन्दी पद की पंक्ति हमें कंठस्थ है

सयाजीराव गायकवाड़ से भीमराव ने कहा था विदेश जाने का मेरा उद्देश्य दलित भाई बहनों का उत्थान करने के लिए आवश्यक अर्हता प्राप्त करना है। सन् 1952 में बाबासाहेब ने कहा कि सयाजीराव को जो वचन दिया था, वह मैंने पूरा किया है।

सौजन्य : मित्तल ट्रेडर्स, गांधी नगर, दिल्ली–110031

उद्‌गार/अंश

...कोई व्यक्ति जन्मजात हीरो नहीं होता। जब इंग्लैंड में मैं छात्र था तो मैंने सफलतापूर्वक अपना पाठ्यक्रम दो साल तीन महीने की निर्धारित अवधि में कर लिया, जबकि सामान्य रूप से इसे पूरा करने में आठ साल लग जाते हैं। इसके लिए मैं दिन में 21 घंटे पढ़ता था। आज मेरी उम्र 40 के पार हो गई है। लेकिन अब भी मैं लगातार 18 घंटे कार्य कर सकता हूं। किन्तु आज के युवा यदि आधे घंटे भी काम कर लेते हैं तो उन्हें विश्राम की आवश्यकता पड़ती है। वे सिगरेट पीएंगे या लेट जाएंगे और ध्यान इधर-उधर कर लेंगे। आज इस उम्र में भी मुझे मन बहलाने के लिए ऐसी चीजों की जरूरत नहीं है। आपका स्वाध्याय व समर्पण ऐसा होना चाहिए।...

— **पुणे अस्पृश्य विद्यार्थियों का 11वां सम्मेलन,** 11 सितंबर, 1938

'शपथ लेना तो सरल है, पर निभाना कठिन है।' वचन देना तो सरल होता है, पर निभाना कठिन होता है। यह पंक्ति भी इस सन्दर्भ में उपयुक्त है।

बाबासाहेब मानो बीसवीं सदी के राजा हरिश्चंद्र थे। वचनपूर्ति करने के लिए उनको कितनी और कैसी यातनाओं से जूझना पड़ा, इसका हिसाब असंभव है। उन दिनों दलित परिवारों की अवस्था पूर्णरूपेण क्लेशदायक थी। हर तरह की प्रतिकूलता थी। वीर सावरकर जी के शब्दों में हिन्दू समाज ने खुद के पैरों में सात शृंखलाएं जकड़कर बांधी थी। वेदाक्तबंदी, व्यवसायबंदी, स्पर्शबंदी, रोटीबंदी, बेटीबंदी, शुद्धिबंदी और सिंधुबंदी-यह थी सप्त शृंखलाएं। दलित बहनों और भाइयों को हर बेड़ी की भीषण यातनाएं भुगतनी पड़ती थीं। भीमराम आंबेडकर ने नन्ही-मुन्नी उम्र में तो ये यातनाएं बर्दाश्त की ही, किन्तु सर्वोच्च शिक्षा पाकर, विदेश से लौटकर और महत्वपूर्ण पदों पर बैठकर भी इन यातनाओं से उन्हें मुक्ति नहीं मिली। हमेशा उपेक्षा और उपहास। लेकिन वे इन विपत्तियों से जूझते रहे। महाभारत के कर्ण ने नियति को बताया था 'स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान सर्वत्र पूज्यते।' अर्थात् विद्वत्व हासिल करके मैं पूजनीय और सम्मानीय बनूंगा- यह संकुचित इच्छा-आकांक्षा नहीं थी। मेरा विद्वत्व दलितों के उत्थान के लिए उपकरण साबित होगा। मेरी पूजनीयता सवर्णों को इन्साफ और इनसानियत के रास्ते पर चलने की प्रेरणा देगी और फलतः जो दलित, इन्साफ और इनसानियत के धनी होंगे वे भी दलितोत्थान के यज्ञ में सहभागी होंगे, यह विश्वास आंबेडकरजी के हृदय में था।

आंबेडकरजी ने केवल छात्र अवस्था में नहीं, अपितु संपूर्ण जीवन कठोर अध्ययन किया, चिंतन और लेखन किया। उनका हरेक लेख हमें बताता है कि वहां तर्क शुद्ध विवेक है। पूर्वाग्रहों और आग्रहों से ऊपर उठकर सप्रमाण निष्कर्ष निकालने का दृढ़ निश्चय हर लेख और पुस्तक में प्रतिबिम्बित है। सन् 1943 में न्यायमूर्ति रानाडेजी की जन्मशती के अवसर पर आंबेडकर जी ने जो मार्मिक भाषण दिया, उसमें उन्होंने रानाडे, तिलक, गोखले आदि पूर्वजों के प्रति भावभीनी भक्ति व्यक्त की और वर्तमान में कितनी गिरावट आई है- यह व्यथा भी मुखरित की। वह पीढ़ी तो चली गई, जो सार्वजनिक कार्य करते समय निजी अध्ययन के पथ पर डटकर चलती थी। अध्ययन-चिंतन उनका स्थायी भाव था।

छात्र अवस्था में भीमराव जी न चित्रपट देख सके, न साइट सीइंग कर सके। न किसी के साथ फालतू गप-शप कर सके। वीर अर्जुन के एकाग्र चित्त की तरह भीमराव जी भी एकाग्र बुद्धि से, निष्ठा से अध्ययन कार्य में जुटे रहे। उनके लिए सामान्य जरूरतों की पूर्ति भी संभवनीय नहीं थी। उनको जो छात्रवृत्ति मिलती थी, उसी धनराशि में से पत्नी के लिए कुछ हिस्सा नियमित भेजना अपरिहार्य था। परिणामतः दिनभर में चाय या काफी का एक कप मिला तो भी पढ़ाई चालू रखते थे। रोज अट्ठारह- उन्नीस घंटे पढ़ाई में व्यतीत करना, भूखे पेट दिन गुजारना। यह साधना दो साल बाद फलद्रुप हुई, लेकिन अल्पतुष्ट होकर विश्राम लेना उन्हें नापसंद था। इसीलिए 'नेशनल डिवाइन्ट ऑफ इंडिया' इस नाम का रिसर्च प्रोजेक्ट कुछ महीनों में ही पूर्ण करके और उसे कोलंबिया विश्वविद्यालय में प्रस्तुत करके आंबेडकर ने नया साहस दिखाया। यही रिसर्च प्रोजेक्ट सन् 1924 में इसी नाम की पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ। भारत स्वतंत्र हुआ और इसी पुस्तक की नींव पर आजतक फाइनांस कमीशन गठित हुए हैं।

आंबेडकर इस साधना में अमरीका में डूबे थे। तब लाला लाजपतराय ने इस मेधावी छात्र को राजनीति में आने का निमंत्रण दिया। तो भारतमंत्री मांटेग्यू ने इस छात्र को बंबई आने का प्रस्ताव दिया। लेकिन आंबेडकर ने दोनों प्रस्ताव नामंजूर कर दिए। कोल्हापुर के राजा शाहू छत्रपति भी बड़ौदा के राजा सयाजीराव गायकवाड़ की तरह आंबेडकरजी को भरसक सहायता देने वाले शुभचिंतक थे। उनको लिखे हुए पत्र में आंबेडकरजी ने जानकारी दी कि व्यक्तिगत कीर्ति प्राप्त करने के बजाए अधिकाधिक ज्ञान ग्रहण करना ही मेरी तमन्ना है और इसी लिए अन्य दिशा में मार्गक्रमण मुझे मंजूर नहीं है। भारत लौटने के पश्चात सन् 1933 में एक सम्मान समारोह में भाषण करते समय डॉ.साहेब ने श्रोता समुदाय के समक्ष अपनी छात्रदशा का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया, 'मैं विदेश में पढ़ाई कर रहा था लेकिन भारत के दलित बांधवों का स्मरण मुझे चुभता था, उनके कल्याण की दृष्टि मुझे बेचैन करती थी और पूरी ताकत तथा लगन से अध्ययन पूर्ण करने की प्रेरणा देती थी।'

सन् 1924 में बाबासाहेब भारत लौटे। उन्होंने जो वृत्तपत्र सम्पादित किए उनमें से हरेक का नाम अर्थपूर्ण था। 'मूकनायक', 'बहिष्कृत भारत', 'समता', और 'जनता'। इस साधक का संकल्प था कि जनसेवा करने के लिए खुद का तन, मन और धन न्यौछावर करना चाहिए। इस संकल्पपूर्ति का प्रारंभ 'मूकनायक' वृत्तपत्र से हुआ, किन्तु सांगता समारोह जनता जनार्दन के चरणों में हुआ। भारत के दरिद्र नारायण ने आंबेडकरजी के रूप में अपने तारणहार के दर्शन किए। हजारों स्थानों पर आंबेडकरजी के सम्मान में समारोह संपन्न हुए। हर समारोह में आंबेडकरजी ने कृतज्ञता प्रकट की। बल्कि यह विनम्रता भी जताई कि मैं भगवान के हाथों का सामान्य उपकरण हूं, उसी की इच्छा साकार करने के लिए मैं कुछ ना कुछ कार्य कर रहा हूं। वर्तमान काल में जब उपभोगमयता बढ़ रही है, तब आंबेडकर ने पूजनीय

सौजन्य : संकल्प कोऑपरेटिव अर्बन थ्रिफ्ट एण्ड क्रेडिट सोसाइटी लि., शाहदरा, दिल्ली –110093

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:41 PM Page 41

समझकर जिस उपकरण भाव की निरंतर पूजा की, वह उपकरण भाव ही भूले-भटके युवक-युवतियों को ठीक रास्ते पर चलने की स्फूर्ति देगा।

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर की जीवनयात्रा कई संस्कृत सुभाषितों को चरितार्थ करती है। ऐसा लगता है कि सुभाषित निर्माताओं ने इस ध्येयवादी साधक को आंखों के सामने रखकर ही यह विचारधन शब्दबद्ध किया है:

1. न ॠते श्रान्तस्य संख्याय देवाः
2. उद्यम साहस धैर्य बुद्धि शक्तिः पराक्रम॥
षडेते यत्र वर्तन्ते तत्र देव सहायकः॥

उद्यमशीलता, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति और पराक्रम ऐसे छह गुणों से सम्पन्न इनसान की ईश्वर सहायता करता है।

3. विद्यया विवादाय धनं मदाय। शक्तिः परेषां परपीडनाय।
खलस्य सार्धो विपरीतमेतत। ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

(विद्या, धन और शक्ति ऐसे गुणों का उपयोग दुर्जनों द्वारा, विवाद छेड़ने के लिए, मदमत होने के लिए तथा औरों को तकलीफ देने के लिए होता है, जबकि सज्जन व्यक्ति इसी गुणसम्पदा को ज्ञान, दाम और रक्षण देता है।)

4. प्राब्धभुत्तभजनाः न परित्यजन्ति।
(अत्युतम मनुष्य हाथ में लिया हुआ कार्य अधूरा नहीं छोड़ता।)

एक महान आदमी एक प्रतिष्ठित आदमी से इस तरह से अलग होता है कि वह समाज का नौकर बनने को तैयार रहता है।

- बाबासाहेब

छात्र अवस्था में भीमराव जी चित्रपट नहीं देख सके। वीर अर्जुन की तरह एकाग्र बुद्धि -निष्ठा से अध्ययन कार्य में जुटे रहे। जो छात्रवृति मिलती थी, उसी में से पत्नी के लिए कुछ हिस्सा नियमित भेजना अपरिहार्य था। दिनभर में एक कप चाय या काफी पीकर पढ़ाई चालू रखते थे। रोज 18-19 घंटे पढ़ाई करना, भूखे पेट दिन गुजारना। साधना कठिन थी, लेकिन अल्पतुष्ट होकर विश्राम लेना उन्हें नापसंद था।

डॉ. आंबेडकर भारत की इस परम्परा को समृद्ध करके भारतरत्न हुए, यह निर्विवाद सत्य है। जो मनुष्य दुर्बल और अनाड़ी है, खुद की शक्ति खो बैठा है, फलतः यातनाएं भुगत रहा है, उसमें आत्मविश्वास जगाना, उसे खुद के पैरों पर खड़ा करना और भारत के स्वतंत्रता संग्राम को सर्वसमावेशक बनाकर नवभारत का निर्माण करना, यही उनके जीवन का उद्देश्य था। मैनचेस्टर गार्डियन के एक प्रतिनिधि सन् 1945 में भारत आए। उनका उद्देश्य महात्मा गांधी, मुहम्मद अली जिन्ना और डॉ. आंबेडकर आदि नेताओं का साक्षात्कार लेना था। रात को नौ बजे वे गांधी जी से मिलने पहुंचे। गांधी जी सो रहे हैं। प्रतिनिधि महाशय तत्पश्चात मुहम्मद अली जिन्ना के निवास स्थान गए। उन्हें वहां जिन्ना के बारे में यही जानकारी मिली। अंत में वे डॉ. बाबासाहेब के घर गए। उनको आश्चर्य हुआ, जब उन्होंने देखा कि बाबासाहेब अपने घर के अध्ययन रूम में चिंतन कर रहे हैं। गांधी जी और जिन्ना जी सो गए हैं, लेकिन आप तो नींद छोड़कर पढ़ाई कर रहे हैं- मैनचेस्टर गार्डियन के प्रतिनिधि ने बाबासाहेब से यही सवाल पूछा। बाबासाहेब का जवाब बहुत ही अर्थगर्भ था, अरे भाई, वो दोनों नेता जिनका नेतृत्व कर रहे हैं, वे समाज जाग्रत हैं। लेकिन मुझे जिनका नेतृत्व करना है, वह निंद्राधीन हैं। श्रीमद् भगवद्गीता में स्थितप्रज्ञ साधु का वर्णन किया हुआ है-यस्यां जाग्रति संयमी।

आंबेडकर ने दलित भाई-बहनों को उपदेश दिया, समाज जागरण करो। इस उद्देश्य की पूर्ति के मार्ग पर पड़ाव थे - अध्ययन, आंदोलन और संगठन। लेकिन शील-संपन्न जीवन बिताना यह अत्यावश्यक सत्कर्म था। बाबासाहेब महाराष्ट्र के एक छोटे-से देहात में दलित महिलाओं को संबोधित करने के लिए जा पहुंचे। अपने सारगर्भित भाषण में उन्होंने उपदेश दिया- 'आप में से कोई बहन यदि वेश्या बनकर देहविक्रय करने लगे तो शायद वह ज्यादा अर्जित करेगी। दूसरी बहन उच्चवर्गीय इनसान के घर में बर्तन मांजने का, कपड़ों की धुलाई करने का काम करेगी। यह दूसरी बहन पहली की तुलना में दरिद्र रहेगी। लेकिन मेरी दृष्टि में यह दूसरी बहन ही सराहनीय, प्रशंसनीय रहेगी। शीलम परम् भूषणम्।'

डॉ. बाबासाहेब मानते थे कि भारत के सर्वसाधारण मनुष्य पर धर्म का प्रभाव है। इसी प्रभाव के कारण गरीब घर की महिला अमीरों के घर में जाकर मजदूर के नाते पसीना बहाती है, परंतु कभी चोरी नहीं करती। डॉ. साहेब की प्रिय परिभाषा थी धर्म का मतलब उदात्त जीवन मूल्यों को निजी और सार्वजनिक व्यवहार में अमल में लाना।

अपने दलित भाई-बहनों को केवल फलानी जाति-उपजाति के कल्याण का ही ख्याल करना चाहिए, व्यवहार करना चाहिए, इस आशय की क्षुद्रता बाबासाहेब को पूर्णतः नामंजूर थी। उनकी पत्रकारिता 'मूकनायक' वृत्तपत्र से शुरू हुई, और 'जनता' नामक पत्र से इस यात्रा की पूर्णता हुई। जीवन भर संघर्ष करने वाले ये महापुरुष जीवन के अंतिम पर्व में प्रजा, शील और करुणा के मंत्रों का उच्चारण और आचरण करने वाले भगवान् गौतम बुद्ध की शरण में गए।

डॉ. आंबेडकर ने जिस ध्येयवाद के प्रकाश में अपना पूरा जीवन व्यतीत किया, वह भी बहुआयामी था। केवल किसी जाति विशेष या पंथ विशेष का ही भला हो, यह सोच गलत है। इस ध्येयवाद का पहला आयाम था सम्पूर्ण भारतवर्ष का, सम्पूर्ण मानवता का चिंतन करना। द्वेष, मत्सर, विद्रोह आदि वृत्ति-प्रवृत्तियां मनुष्य को गलत विषयों की ओर जाने की प्रेरणा देती हैं। अतएव प्रेम, बंधुता, विशालता आदि सत्प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देना चाहिए, यह इस ध्येयवाद का दूसरा आयाम है।

आंबेडकर जी का प्रिय मंत्र था बंधुता। वैयक्तिक तथा सार्वजनिक जीवन में नैतिकता की जड़ें गहराई तक जाएं, यह आंबेडकर के ध्येयवाद का तीसरा आयाम है। बाबासाहेब जब लंदन में पढ़ाई करते थे, तब फ्रांसिस्का फिटजेराल्ड नामक किसी आयरिश युवती के साथ उनका परिचय हुआ। लेकिन बाबासाहेब को इन बंधनों का ख्याल था कि मैं विवाहित हूं, मेरी पतिव्रता पत्नी भारत में नैष्ठिक जीवन बिता रही है और मुझे भी शीलसंपन्न जीवन बीतना चाहिए। फलस्वरूप फ्रांसिस्का फिटजेराल्ड के साथ जो परिचय वृद्धिगत हुआ, वह संयमित और निष्पाप रहा। चांगदेव खैरमोडे, जिनके साथ बाबासाहेब दिल खोलकर चर्चा, विमर्श करते थे, आंबेडकर के चरित्र लेखक हैं। खैरमोडे जी ने लिखा कि आंबेडकर जी और फ्रांसिस्का की मित्रता विशुद्ध थी, किसी तरह से विकारवश नहीं थी। आंबेडकर ने चांगदेव खैरमोडे को फ्रांसिस्का के बारे में जानकारी दीः-

वैयक्तिक जीवन में नैतिकता ही इस सन्दर्भ में हमारा उचित मार्गदर्शन करती है। भारतरत्न डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने शाश्वत जीवनमूल्यों की हमेशा उपासना की इस कारण वे उदात्त, ध्येयनिष्ठ जीवन के धनी थे। उनका पुण्यस्मरण हम सबको निरन्तर सत्कर्म करने की प्रेरणा देगा। उनको विनम्र अभिवादन। ■

(लेखक प्रख्यात चिंतक एवं मुंबई विश्वविद्यालय यूरेशियाई अध्ययन केंद्र में आमंत्रित प्राध्यापक)

सौजन्य : अग्रवाल फाइनेंस कंपनी, दिलशाद गार्डन, दिल्ली–110095

इतने लंबे संघर्ष में भी डॉ.आंबेडकर के समूचे विचारों का संदर्भ देश की एकात्मता रहा है। वे चाहते थे कि हिंदू समाज की पुनर्रचना स्वतंत्रता, समता और बंधुभाव की तत्वत्रयी पर आधारित हो।

सबसे पहले मेरा देश

» भि. रा. इदाते

बाबासाहेब आंबेडकर के जीवन तथा कार्य के संबंध में आज भिन्न प्रकार से विचारमंथन आरम्भ हुआ है। 9 मई, 1916 को, 22 वर्ष की अवस्था में, कोलंबिया विश्वविद्यालय में मानववंशशास्त्र विभाग के अभ्यास मंडल के समक्ष पढ़े गए 'भारत में जातियां' नामक निबंध से लेकर सारनाथ में 1956 में दिए गए उनके 'अंतिम भाषण' तक उनके विचार प्रचुरता में उपलब्ध हैं। उसमें अनुसंधानात्मक ग्रंथ हैं. आम सभाओं में दिए भाषण हैं, आंदोलनों के दौरान का मार्गदर्शन है। अधिकारों का भान कराने वाले समृद्ध विचार हैं। मंडनखंडन है, आत्मसम्मान हेतु कठोर आत्मक्लेश का प्रत्यक्ष दर्शन है। किसी भी महापुरुष के विचारों की दो श्रेणियां होती हैं- शाश्वत विचार तथा तात्कालिक विचार। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के विचारों को भी बांटा जा सकता है, लेकिन इतने लंबे संघर्ष में भी उनके समूचे विचारों का संदर्भ देश की एकात्मता रहा है। देश, राष्ट्र, संस्कृति, धर्म इन सभी के बारे में उन्होंने मूलगामी मार्गदर्शक चिंतन किया है। हर कदम पर उन्होंने हमेशा राष्ट्रहित का भान रखा। उनके समूचे चिंतन का मूल यहां की मिट्टी में, इस संस्कृति में, धर्म में खोजा हुआ है। लगता है, उन्होंने राष्ट्रहित हेतु कभी अपने विचारों को भी मोड़ दिया। यह राष्ट्रचिंतन देश के लिए एक अमूल्य धरोहर है।

डॉ. बाबासाहेब की इस विचार संपदा का सही सम्मान आज देश में नहीं है। अज्ञानवश, अहंकारवश डॉ.आंबेडकर के ऊपर बड़ी विकृत टिप्पणी भी की गई। बहुत से लोगों ने आपके कार्य की ओर उचित दृष्टि से देखा ही नहीं। बाबासाहेब सच्चे राष्ट्रनिष्ठ थे। बाबासाहेब का आंदोलन द्वेष भावना आधारित है- ऐसा कहने वालों के समक्ष उन्होंने कहा था कि, 'यदि मेरे मन में द्वेषभाव तथा बदले का भाव होता तो महज पांच साल में देश का सत्यानाश कर देता (डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर एक प्रेरक व्यक्तित्व द. ठेंगडी पृष्ठ 11. 12) अपने मन में निरंतर देशहित का भाव होने के कारण उन्होंने ऐसा अविवेक नहीं किया। उनकी योग्यता का सही लिहाज कर ही उनके कार्य का मूल्यांकन करना चाहिए।

डॉ.आंबेडकर चाहते थे कि हिंदू समाज की पुनर्रचना स्वतंत्रता, समता और बंधुभाव की तत्वत्रयी पर आधारित हो। आंबेडकरजी के सामाजिक दर्शन के अनुसार प्रत्येक हिंदू को अपने धर्मबंधुओं के साथ सभी प्रकार के निर्बंधों के अधीन रहकर संबंध जोड़ने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। हिंदुओं को चाहिए कि सबके लिए समान सामाजिक संहिता की रचना करें। यदि अपने धर्मबंधुओं को विवाह करने की, साथ भोजन करने की तथा जीवन के सभी क्षेत्रों में साथ साथ काम करने की स्वतंत्रता होती तो हिंदू समाज अखंड बनकर स्वयं शक्तिशाली होने में और दूसरों को अपने धर्म में स्वीकार कर आत्मसात करने में समर्थ बन जाता। उनका निश्चित मत था कि हिंदी ही अपनी राष्ट्रभाषा हो। वे देवनागरी लिपि के बड़े समर्थक थे। डॉ. आंबेडकर इस देश की एकात्मता के कितने दृढ़ प्रेमी थे, यह उनकी पुस्तक 'शूद्र मूलतः कौन थे? में उनके विवेचन से आसानी से स्पष्ट होता है। इसका प्रमुख आशय यह है कि शूद्र क्षत्रिय थे। यह अनगिनत प्रमाणों के आधार पर सिद्ध किया गया सिद्धांत है। वास्तव में यदि बाबासाहेब को इस देश में गड़बड़ी मचानी होती, हिंदू समाज से रिश्ता तोड़ना होता तो इतने सारे प्रयास वे करते ही नहीं।

आर्यों के मूल निवासस्थान के संबंध में आपका प्रतिपादित सिद्धान्त प्रखर राष्ट्रभक्ति का ही एक और

सौजन्य : मनीष अग्रवाल, शांति मोहल्ला, दिल्ली-110031

उदाहरण है। महात्मा फुले को उन्होंने अपना गुरु माना था। महात्मा फुले ने प्रतिपादन किया था कि आर्य इस देश में बाहर से आए थे। अछूतोद्धारक आंदोलन के आद्य प्रणेता गोपालबाबा बलंगजी ने सिद्धान्त रखा था कि अछूत यहां के मूल निवासी और अनार्य थे और आर्यों ने बाहर से आकर उन पर आक्रमण किया। इन दोनों के साथ हिंदू संस्कृति के श्रेष्ठ अध्येता और भारतीय असंतोष के जनक लोकमान्य तिलक जी ने भी अनुमान लगाया था कि आर्यों का मूल निवास स्थान उत्तरी ध्रुव था। ऐसी स्थिति में डॉ.आंबेडकर के सामने कोई बाध्यता नहीं थी कि वे आग्रही वृत्ति से अध्ययन करें और अनुसंधानात्मक रूप में इस बात को प्रतिपादित करें कि आर्यों का मूल निवासस्थान हिंदुस्थान ही है और दलित भी आर्य ही हैं। शूद्र मूलतः कौन थे? इस ग्रंथ के चौथे अध्याय 'शूद्र तथा आर्य, इनमें संघर्ष' में यूरोपियन ग्रंथकारों द्वारा खोजे गए निष्कर्ष डॉ.आंबेडकर निम्न प्रकार देते हैं-

1- वैदिक वाड्मय जिन्होंने तैयार किया वे लोग आर्य वंश के थे ।
2- ये लोग मूलतः भारत के बाहर के थे, उन्होने भारत पर आक्रमण किया।
3- भारत के मूल निवासी दास और दस्यु नाम से पहचाने जाते थे। उनका वंश और आर्यों का वंश भिन्न था।
4- आर्यों का वर्ण गोरा था । दास और दस्यु वर्ण से काले थे।
5- आर्यों ने दास और दस्युओं को अपने अधीन किया।
6- दास और दस्यु को जीतने के बाद आर्यों ने उन्हें गुलाम बनाया और शूद्र नाम दिया।
7-आर्यों के मन में काले वंश के लोगों के लिए तिरस्कार की भावना पैदा हुई और वर्णभेद की नींव पर उन्होने चातुर्वर्ण्य खड़ा किया । उद्देश्य यही की आर्यों का गोरा और दास तथा दस्युओं का काला वंश ये एक दूसरे से भिन्न रहे।

उपरोक्त सभी मुद्दों को डॉ.आंबेडकर ने अपने ग्रंथ में खारिज कर दिया। आर्य शब्द वेदों मे कुल 33 बार प्रयुक्त हुआ है। डॉ.आंबेडकरने लिखा है कि यह शब्द वंशवाचक न होकर गुणवाचक शब्द है। उन्होंने इसे साबित कर दिखाया। डॉ.आंबेडकर का यह अनुसंधान राष्ट्रीय दृष्टि से बड़ा मोल रखता है और एकात्मता के दृष्टिकरण के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस अध्याय का समापन करते हुए डॉ आंबेडकर जो निष्कर्ष बताते हैं, वे सारांशरूप में इस प्रकार हैं-

1- आर्य वंश का अस्तित्व था इसके प्रमाण वेदों में नहीं मिलते।
2- आर्यवंशीय लोगों ने भारत पर आक्रमण किया और वहां के मूल निवासी दास एवं दस्युओं को जीता, इसका वेदों में कहीं प्रमाण नहीं है ।
3- आर्य, दास और दस्युओं के बीच वाशिंक भेद था, यह दर्शानेवाला प्रमाण वेदों में नहीं है।
4-आर्य वर्ण से दास और दस्युओं से भिन्न थे, यह दर्शानेवाला प्रमाण वेदों में नहीं है।

बााबासाहेब की यह धारणा बहुत दृढ़ थी। ३ जून,१९२७ को 'अस्पृश्यता निवारण का खिलवाड़' नामक अग्रलेख में हिन्दू महासभा के बारे में विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा- 'इस महासभा का उद्गमस्थल माना जाने वाला पंजाब ही आर्यों का मूल निवास स्थान है।' (डॉ. आंबेडकर के बहुचर्चित अग्रलेख -प्रकाश गजेंद्र रघुवंशी-पृष्ठ10)

हिन्दुओं की त्रुटियों के कारण इस देश को पराधीनता भुगतनी पड़ी यह डॉ. आंबेडकर ने कई बार स्पष्ट किया है। वे कहते हैं कि हमारे भीतर होने वाले सामाजिक दोष और उन्हें मिल रहा धार्मिक आधार जब तक नष्ट नहीं होते, तब तक दिन अच्छे नहीं होंगे। डॉ. आंबेडकर के इस हिन्दूराष्ट्र चिंतन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। दिनांक 21 सितम्बर, 1928 को आपने 'बहिष्कृत भारत में हिन्दुओं का धर्मशास्त्र' नामक एक अग्रलेख लिखा। उसमें वे लिखते हैं- अतिप्राचीन काल में उदय हुए राष्ट्रों में से एक हिन्दू राष्ट्र है। यह तथ्य इतना विख्यात है कि उसका स्मरण किसी को कराने की आवश्यकता नहीं। उसके साथ रहे इजिप्ट, असीरिया, रोम, ग्रीस आदि राष्ट्र नामशेष हुए यह भी सत्य है, परंतु हिन्दुओं का राष्ट्र इतने दिनों तक सजीव बना रहा। इस कारण यह बलशाली है ऐसा कहना आत्मश्लाघा का और विचारशून्यता का भी लक्षण है। हमें ऐसा लगता है कि हिन्दू राष्ट्र जीवित रहा, इसमें उसका पराक्रम न होकर जिन लोगों ने उन्हें जीत लिया उनकी बुद्धिमानी है। हिन्दू राष्ट्र की असफलता की परंपरा का कारण उसकी विपरीत रचना है तथा जो उसके धर्मशास्त्रों के अनुरूप है, इस कारण हिन्दू राष्ट्र का अधःपतन उसके धर्मशास्त्र के कारण हुआ है।

उद्गार/अंश

...यद्यपि कहा जाता है कि मैं अपने उग्र स्वभाव के कारण सीमा लांघकर अधिकारियों से भिड़ तक गया लेकिन किसी भी अवसर पर देश से विश्वासघात नहीं किया। हृदय में सदैव देशहित की ही भावना रही।...

– न्यूयॉर्क जाने से पूर्व आयोजित रात्रिभोज में, मुंबई, मई, 1952

वास्तव में डॉ. बाबासाहेब धर्मविरोधी नहीं थे, वे सच्चे धर्म के समर्थक थे। लोकमान्य तिलक की मान्यता रखने वाली धारणात् धर्ममित्याहु:। धर्मो धारयति प्रजाः। धर्म की इस परिभाषा को डॉ. आंबेडकर पूर्ण मान्यता देते थे। जो प्रजा की धारणा करता है उसे धर्म कहते हैं, इसमें होने वाले एकात्मता भाव को डॉ. आंबेडकर ने पूर्णतः स्वीकार किया। हां, आचरण में होने वाली सांस्कृतिक एकता के संबंध में भरोसा रखकर भी आचरण के स्तर पर होने वाले अमानुषिक बर्ताव को लेकर वे नाराज थे। 'भारत की जातियां' शीर्षक अपने निबंध में बाबासाहेब कहते हैं, 'वंशशास्त्र की दृष्टि से समूचे लोक समूह के एक होने के लिए सांस्कृतिक एकता ही उनके एकत्व का चिन्ह होता है। यह कथन स्वीकृत हुआ तो मैं साहसपूर्वक एक विधान करना चाहता हूं कि लोगों की सांस्कृतिक एकता को लेकर दूसरा कोई भी देश भारत की बराबरी नहीं कर सकता। केवल भौगोलिक दृष्टि से भारत एक है, यही नहीं, एकता के अन्य किसी भी लक्षण की अपेक्षा भारत की सांस्कृतिक एकता अधिक मूलभूत रही। अगर यह पहले ही एक दूसरे से भिन्न जातियों का समूह होता तो यह विषय बड़ा ही आसान बन जाता। लेकिन जाति पहले से ही एकरूप समाज का हिस्सा है, इसीलिए जाति की उत्पत्ति का स्पष्टीकरण जटिल है। (प्रकाशक गजेंद्र रघुवंशी- पृष्ठ 58)

इस सांस्कृतिक एकता के अंदर आगे चलकर जो विकृति पैदा हुई, उसके

सौजन्य : केसरी ज्वेलर्स, कृष्णा नगर, दिल्ली-110051

उद्‌गार/अंश

...'मैं हिन्दू धर्म का शत्रु हूं, विध्वंसक हूं इस प्रकार मुझे लेकर टिप्पणी होती है, लेकिन एक दिन ऐसा आएगा कि मैं हिन्दू समाज का उपकारकर्ता हूं, इन्हीं शब्दों में हिन्दू लोग मुझे धन्यवाद देंगे।...

– बाबासाहेब

लिए धर्म के उद्देश्य से असंगत आचार पद्धति उत्तरदायी थी और इसी कारण आगे चलकर रूढ़ियों का निर्माण हुआ। बाबासाहेब का तो यहां तक कहना था कि धर्म की आवश्यकता गरीबों के लिए है। पीड़ित लोगों को धर्म की गरज है। गरीब आदमी इस आशा के आधार पर जीता है कि जीवन का मूल आशा में है। धर्म आशावादी बनाता है और पीड़ितों को, गरीबों को संदेश देता है, घबराओ मत कुछ होगा-जीवन आशादायी बनेगा। (डॉ. बाबासाहेब का विचारधन - म. श्री दीक्षित- पृष्ठ 40)

डॉ. बाबासाहेब सद्धर्म चाहते थे। बौद्ध धर्म स्वीकार करते समय भी उसमें से महायान-हीनयान पंथों से भिन्न रचना वे चाहते थे। इसलिए उनके मत को बहुत लोगों ने भीमयान अथवा नवयान कहा है। स्वतंत्रता, समता, बंधुता- इन तीन तत्वों के संबंध में बोलते समय भी उन्होंने स्पष्ट किया कि यह तत्वत्रयी मैंने फ्रांस की राज्यक्रांति से स्वीकार न करते हुए अपने धार्मिक गुरु भगवान बुद्ध के उपदेशों से स्वीकार की है। मेरे इन तत्वों का आधार राज्यशास्त्र न होकर धर्मशास्त्र है। इससे हम समझ सकते हैं कि बाबासाहेब की विचारधारा इस मिट्टी से कैसी जुड़ी हुई है। बौद्ध धर्म भारतीय संस्कृति का ही अंग है, इसीलिए मुसलमानों और ईसाइयों से घिरे रहने पर भी संत गाडगे महाराज के साथ चर्चा करने के बाद उन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। इस देश की सांस्कृतिक एकता की उन्होंने हमेशा रक्षा की। 'डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के आंदोलन की पार्श्वभूमि' शीर्षक ग्रंथ में लेखक चांगदेव खैरमोडे कहते हैं कि जैन तथा बौद्ध हिन्दू धर्म का विनाश करने में सफल नहीं हुए। इसका कारण यह है कि इन दोनों धर्मों ने वेद तथा ब्राह्मण वर्ग को दूर हटा दिया, तो भी ये धर्म हिन्दू धर्म से सर्वथा भिन्न नहीं थे, वे हिन्दू धर्म के ही अंश थे क्योंकि मानवीय विकास को उत्तेजना देने वाले जो तत्व हिन्दू धर्म में थे, उन तत्वों के आधार पर ही जैन तथा बौद्ध धर्म रचना की गई थी।

सन् 1935 में येवला में धर्मांतरण की घोषणा के पहले तक बाबासाहेब ने एकात्म हिन्दू समाज के लिए हर तरह के प्रयास किए। बाबासाहेब का नासिक के कालाराम मंदिर में अस्पृश्यों के प्रवेश के लिए 1927 में महाड के चवदार तालाब में शुरू हुआ आंदोलन 1930 से 1935 तक चलता रहा। इस अवधि में आपके संघर्ष के दौरान हिन्दू समाज उनके साथ न रहा, बल्कि उनका उपहास किया। इसलिए उन्होंने बड़ी उद्विग्नता से धर्मांतरण की घोषणा की और उसके पश्चात की अवधि में दलित बंधुओं को भिन्न मार्ग से ले जाने का प्रयास किया। उनकी मानसिकता निर्माण के लिए लगातार लेखन किया, भाषण दिए। उन्होंने कहा- अछूत प्रथा हिन्दू धर्म के लिए कलंक है, यह जब तक हम मान रहे थे तब तक हम मानते थे कि उसको दूर करने के लिए सभी को प्रयत्न करना चाहिए। परंतु अछूत प्रथा हिन्दू धर्म का कलंक न होकर हमारे शरीर का कलंक है, इस कारण उस कलंक को हटाने के प्रयत्न हमें ही करने चाहिए। इस संबंध में उनके सुझाव कठोर भाषा में भले हों, समूचे राष्ट्र के हित में ही थे। आचार्य अत्रे जी के लेखों का संकलन भाऊसाहब अडसूल ने सन् 1960 में किया है। 'दलितों के बाबा' नाम की इस पुस्तक में बाबासाहब का एक मंतव्य है- 'मैं हिन्दू धर्म का शत्रु हूं, विध्वंसक हूं इस प्रकार मुझे लेकर टिप्पणी होती है, लेकिन एक दिन ऐसा आएगा कि मैं हिन्दू समाज का उपकारकर्ता हूं, इन्हीं शब्दों में हिन्दू लोग मुझे धन्यवाद देंगे (पृष्ठ 96)। आज हिन्दू संगठन करने वाले प्रमुख संस्था-संगठनों ने बाबा साहेब के विचार स्वीकार किए हैं।

सन् 1936 में आपने लाहौर के जात-पात तोडक मंडल के समक्ष देने के लिए जो भाषण तैयार किया था, वह वास्तव में हो न सका। फिर भी वह पुस्तक रूप में एनिहिलेशन ऑफ कास्ट नाम से प्रकाशित हुआ। उसको लेकर महात्मा गांधीजी ने हरिजन में दिनांक 11 जुलाई, 1936 को कुछ प्रश्न रखे थे। डॉ. बाबासाहब ने उन प्रश्नों के उत्तर दिए थे। इस पुस्तक का मराठी अनुवाद जातिभेद निर्मूलन नाम से श्री मा.फ. गांजरे ने किया है। उसके परिशिष्ट 2 में ये उत्तर हैं। बाबासाहब लिखते हैं - जिन प्रमुख मुद्दों को अपने भाषण में मैंने साबित करने का प्रयास किया, वे इस प्रकार हैं-

1. जातिभेद ने हिन्दुओं का सर्वनाश किया।
2. चातुर्वर्ण्य के आधार पर हिन्दू समाज का पुनर्संगठन असंभव है।
3. हिन्दू समाज का चातुर्वर्ण्य के आधार पर पुनर्संगठन हानिकारक है क्योंकि साधारण जनता के ज्ञानार्जन के अधिकार को नामंजूर कर वह उसे अधोगति की ओर ले जाता है और शस्त्र धारण करने का अधिकार नामंजूर कर उसे पौरुषहीन बनाता है।
4. हिन्दू समाज का पुनर्संगठन ऐसे धर्म तत्वों के आधार पर करना चाहिए कि जिनका संबंध समता, स्वतंत्रता और बंधुभाव से जुड़ सके।
5. इसे सफल बनाने के लिए जातिभेद और वर्ण का धार्मिक अधिष्ठान नष्ट करना चाहिए।
6. जब शास्त्रों को भगवद्‌वाणी मानना बंद होगा तभी जाति और वर्ण का धार्मिक अधिष्ठान नष्ट हो सकेगा।

डॉ. बाबासाहेब के प्रतिपादित उपरोक्त सूत्रों की पृष्ठभूमि में पनपने वाली एकात्म राष्ट्रजीवन की संकल्पना आज मान्यता पा रही है। सरसंघचालक श्री बालासाहब देवरसजी ने साफ शब्दों में कहा था- चातुर्वर्ण्य एक व्यवस्था न होकर अव्यवस्था है। इसलिए सभी को मिलकर उसे शीघ्रातिशीघ्र हटा देना चाहिए। अंतरजातीय विवाहों को पुरस्कृत करने वाले श्री बालासाहब देवरसजी के सन् 1974 में पुणे की वसंत व्याखनमाला में 'सामाजिक समता और हिन्दू संगठन' इस विषय पर दिए भाषण और तलजाई में 35,000 स्वयंसेवकों के समक्ष दिए भाषण में समतायुक्त एवं शोषणमुक्त हिन्दू समाज का निर्माण ही अपना ध्येय होने की बात कही गई है। 1983 में विवेकानंद शिला स्मारक के शिल्पकार एकनाथजी रानाडे ने सेवासाधना नामक अपनी पुस्तक में पृष्ठ 67 पर इसका उद्‌घोष किया है। वर्णाश्रम व्यवस्था का जो विकृत एवं विरूप अध:पतन आज जातिवाद में दिखाई देता है, वही इसके लिए जिम्मेदार है। काल के पदचाप को अनसुना कर समाज व्यवस्था में नए प्राण भर देने के संबंध में लापरवाह रहे हमारे सामाजिक नेता, विश्व हिन्दू परिषद की एकात्मता रथ यात्रा में वर्ण एक, हिन्दू ही जाति, एक हिन्दू समता

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:12 PM Page 45

द्वारा की गई उद्घोषणाएं तथा प्रत्यक्ष गंगाजल पूजन के लिए अपने दलित बंधुओं को दिया हुआ अग्रपूजा का सम्मान, सन् 1969 में कर्नाटक के उडुपी नगर में धर्माचार्यों की उपस्थिति में संपन्न हुई विद्वत परिषद में न हिन्दुः पतितो भवेत। हिन्दवः सहोदराः सर्वे। अस्पृश्यता का अस्वीकार करने वाली ऐतिहासिक उद्घोषणा कर दलित बंधुओं की झुग्गी-झोपड़ियों में स्वयं गए जगद्गुरू माधवाचार्य विश्वेशतीर्थ जी, इस दशक के प्रारंभ में कांची कामकोटि शंकराचार्य जयेंद्रस्वामी जी ने केरल के गुरुवायूर में अपने चातुर्मास निवास के दौरान 25 इलवा, 2 कुकुया और 2 परया कुल 29 व्यक्तियों को पौराहित्य का प्रशिक्षण दिया तथा अंत में 40,000 की जनसभा में उन्हें रुद्राक्षमाला पहनाकर कांची कामकोटि पीठ की अधिकृत मुद्रा से अंकित कर इन सभी को पौराहित्य-कुशलता के प्रमाणपत्र प्रदान कर जाति का बहाना कर किसी को भी पौरोहित्य के अधिकार से वंचित किया नहीं जाएगा- यह प्रत्यक्ष कर दिखाया (अपने समाज से भविष्य के संबंध में अपेक्षाएं-दत्तोपंत ठेंगड़ी- पृष्ठ 96), डॉ. हेडगेवार जन्मशताब्दी वर्ष में संपन्न हुए 34,000 वनवासियों के सम्मेलन में पधारे करवीर के जगद्गुरु शंकराचार्य का दिनांक 14 अप्रैल को डॉ. आंबेडकर की प्रतिमा को माल्यार्पण कर कार्यक्रम में सहभागी होना, श्रीराम शिलापूजन कार्यक्रम के अंत में प्रत्यक्ष शिलान्यास हुआ (9 नवंबर 1989) तब संत, महंत, धर्माचार्य, पू. शंकराचार्य आदि की उपस्थिति में बिहार के एक दलित दम्पति द्वारा स्थापित की गई पहली शिला। इस प्रकार कितनी घटनाएं बताई जा सकती हैं कि डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जिस मूल्य हेतु जीवनभर जूझते रहे, उस राष्ट्रीय एकात्मता के लिए आज उनके चिंतन को साकार किया जा रहा है। कारण यह कि इसी में पूरे देश का हित है, यह सभी जान गए हैं। यह आंबेडकर के राष्ट्रचिंतन को दी गई स्वीकृति ही है।

डॉ. आंबेडकर स्पष्ट मानते थे कि मुस्लिम या ईसाई बनना माने राष्ट्रीयता से रिश्ता तोड़ना है। इसलिए इस संबंध में गाडगे महाराज की सलाह आपने शिरोधार्य मानी। इस देश से धोखा हो, ऐसा मैं कुछ भी न करूंगा ऐसा आपने वादा किया। मुस्लिमों के बारे में डॉ.आंबेडकर कहते थे कि मुसलमानों के मन पर जनतंत्र का कोई प्रभाव नहीं होता। मुसलमानों के मन में धर्म के संबंध में ही प्रबल आस्था होगी। उनकी राजनीति के मूल में धर्म है और निष्ठा मुसलमान शासित देशों के लिए ही होती है। जिस देश पर मुसलमान शासन नहीं चलाते वह उनके लिए शत्रुभूमि होती है। इसलिए इस्लाम धर्म सच्चे मुसलमानों को हिन्दुस्थान को मातृभूमि और हिन्दू को अपना इष्टमित्र मानने के विचार उनके मन को स्पर्श तक करने नहीं देगा। जिसकी भारतनिष्ठा संदेहपूर्ण है, उन मुसलमानों का हिन्दुस्तान में रहकर शत्रुत्व करते रहने की अपेक्षा हिन्दुस्थान के बाहर रहकर वे शत्रुत्व करते रहे तो बर्दाश्त होगा। मुसलमानों का प्रभाव न होने वाला सेना दल अपने पास होना सुरक्षित सीमा से बढ़कर है। स्पृश्य हिन्दुओं के साथ कुछ बातों पर मेरा झगड़ा है, परंतु अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा करने के लिए मैं प्राण न्यौछावर करूंगा।

हिन्दुओं की भूलों के परिणामस्वरूप धर्मांतरण कर मुसलमान अथवा ईसाई बनने वाले लोगों के बारे में डॉ. आंबेडकर हिन्दू समाज को सतर्क करने का प्रयास करते हैं। वे कहते हैं- हिन्दुओं के दुष्ट रीतिरिवाजों के कारण उनमें से कुछ लोग हिन्दू धर्म से ऊबकर परधर्म में प्रवेश कर रहे हैं। ईसाई और मुसलमान समाज जो बढ़े हुए दिखाई दे रहे हैं, उसके मूल में यही है। उसके विपरीत परधर्म में से लोगों को हिन्दू धर्म में स्वीकार करने कोई प्रावधान नहीं। दूसरे धर्म से किसी का शुद्धिकरण कर उसे हिन्दू धर्म में अपनाना तय हो, तो पहले उसे किस जाति में स्वीकार करें, यही सवाल खड़ा होता है, क्योंकि जाति जन्म से प्राप्त होती है। हिन्दू समाज में यह परिपाटी होने से नए शुद्धिकृत हिन्दू को कोई भी जाति स्वीकार नहीं करती। जिस समाज में जाति बिना गति नहीं और जन्म के बिना जाति नहीं, उस समाज में दूसरे धर्म का कोई भी व्यक्ति आने का साहस नहीं करता। बाहर जाने का मार्ग हिन्दू धर्म ने खुला रखा है लेकिन बाहर वाले को अंदर आने के लिए मार्ग बंद रखा गया है। पानी लेने की टोंटी बंद, पर पानी छोड़ने की टोंटी खुली होने वाली टंकी में आखिर पानी की एक भी बूंद नहीं बचती, उस प्रकार की अवस्था हिन्दू समाज की न हो और होने वाला अनर्थ टाला जाए ऐसा अगर हम चाहते हैं, तो जातिभेद हटाना निहायत जरूरी है। (डॉ. अंबेडकर के बहुचर्चित अग्रलेख- पृष्ठ 13)

इस विवेचन के आधार पर आसानी से समझ सकते हैं कि धर्मांतरण के पूर्व डॉ. आंबेडकर ने किस तरह चिंतन किया था कि किसी भी हालत में इस देश को खतरा पैदा होना नहीं चाहिए। यह भी स्पष्ट होता है कि संगठित भारत किस प्रकार उनका लक्ष्य था।

बाबासाहेब ने देश के सामने रखी गई विभिन्न योजनाओं पर इसी एकात्मभाव से स्पष्टवादिता तथा निर्भीकता के साथ विचार किया है। सामने कौन है, इसकी चिंता उन्होंने कभी नहीं की। सन1916 के लखनऊ पैक्ट द्वारा मुसलमानों को जो कई सहूलियतें दी गईं उनके संबंध में बाबासाहेब ने साफ-साफ कहा कि यदि सहूलियतें देनी ही थीं, तो वे अस्पृश्यों को देना जरूरी था- मुसलमानों को नहीं। नेहरू कमेटी की रिपोर्ट पर भी उन्होंने मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति को स्वीकृति के कारण बहुत करारी टिप्पणी की थी। उसी प्रकार भाषावार प्रांतरचना के मूल में नेहरू कमेटी की यही मानसिकता है, यह कमेटी मुस्लिमों के हित में अधिक सोचने वाली तथा हिन्दुओं के लिए अन्यायकारक है, यह उन्होंने साफ कहा था। नेहरू कमेटी की योजना और हिन्दुस्थान का भविष्य इस शीर्षक से दिनांक 18 जनवरी, 1929 को 'बहिष्कृत भारत' में प्रकाशित लेख में डॉ. आंबेडकर कहते हैं, भाषावार प्रांतरचना का तत्व अच्छा है, परंतु उस पर अमल करने से देश की असीम हानि होगी, यह हमारा स्पष्ट मत है। इस देश में अगर किसी चीज की कमी है तो वह राष्ट्रीय भावना इस देश में उभर नहीं पाई। उसके अनेक कारण हैं। उनमें से प्रमुख कारण है अनेक भाषाएं। इस कारण को नष्ट किए बिना राष्ट्र की एकता का भाव जनता के मन में पैदा होना संभव नहीं है। जितनी मात्रा में प्रांतीय भावना का पोषण किया जाएगा, उतनी मात्रा में राष्ट्रीय भावना का अंकुर मुरझाने वाला है। भाषावार प्रांतरचना करने के बजाय समूचे राष्ट्र को एक भाषा प्राप्त हो, ऐसे प्रयास करने में ही राष्ट्रहित है, ऐसा हम सोचते हैं। भाषावार प्रांतरचना के तत्व का कमेटी यदि सच्चाई से अनुसरण करती, तो इस देश के क्षेत्र के प्रांतशः 171 टुकड़े करने की योजना बनी होती, क्योंकि इस देश में इतनी संख्या में भाषाएं बोलने वाले लोग हैं। जिस योजना से हिन्दुओं के लिए खतरा पैदा होता है वह योजना किस काम की? डॉ. आंबेडकर इसी लेख के अंत में कहते हैं, हमारी अपने देशबंधुओं से प्रार्थना है कि नेहरू कमेटी की योजना की हमने जो छानबीन की है, उस पर वे पूर्ण रूप से विचार करें। हमने इस कमेटी की योजना का विरोध इसलिए नहीं किया है, कि इस कमेटी ने अस्पृश्यों की अवहेलना की है। बल्कि इसमें हिन्दुओं के लिए खतरा है। वे कहते हैं -अपने शरीर में रक्त की आखिरी बूंद तक हम अपनी स्वाधीनता की रक्षा जी जान से करेंगे, यह हमारा दृढ़निश्चय होना चाहिए। इसी भाषण में जनतांत्रिक प्रणाली की चर्चा करते समय व्यक्तिपूजा से अलिप्त रहने का आह्वान आपने किया है। आयरलैंड के देशभक्त डैनियलओ कोनेला ने कहा है कि स्वाभिमान की बलि चढ़ाकर कोई स्त्री कृतज्ञ नहीं रह सकती और स्वाधीनता की बलि देकर कोई राष्ट्र कृतज्ञता व्यक्त नहीं कर सकता। इस भयसूचक संदेश की गरज अन्य किसी भी देश से अधिक है, तो वह भारत के लिए। डॉ. बाबासाहेब की दी हुई उपरोक्त चेतावनी से क्या उनका दृष्टा होना स्पष्ट रूप में महसूस नहीं होता? ■

(लेखक असंसूचित एवं घुमंतू जनजाति आयोग के अध्यक्ष हैं)

जिहादी मानसिकता और डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर

पूरे विश्व में फैले इस्लामी कट्टरवाद का सही प्रेक्षण बाबासाहेब ने 75 वर्ष पूर्व कर लिया था। उन्होंने जिस निर्भीकता से हिन्दुओं की रूढ़िवादिता और छुआछूत का विरोध किया, वैसे ही मुस्लिम समुदाय की मजहबी कट्टरवाद से प्रेरित राजनीति का भी विरोध किया।

» किशोर मकवाणा

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर का समग्र विचार करने पर हमारे ध्यान में आता है कि इस उच्चकोटि के मनीषी के संपूर्ण जीवन का केन्द्र बिन्दु तो सामाजिक विषमता मिटाकर, समाज में समता-ममता और समरसता के आधार पर हिन्दू समाज को शक्तिशाली बनाना था। मगर उनका अंतःकरण भारत भक्ति से आकंठभरा हुआ था। उन्होंने अपने भारत समर्पण और भारत भक्ति का परिचय एक ही वाक्य में दिया था- पहले भी देश और अंत में भी देश... राष्ट्र व्यक्ति से महान है, व्यक्ति चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो वह राष्ट्र के समक्ष तो छोटा ही है... राष्ट्र की रक्षा के लिए मैं अपना सर्वस्व समर्पित करने को भी तैयार हूं।

मगर भारत भक्ति से ओत-प्रोत डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के विचारों को जान-बूझकर दबा कर रखा गया है। छद्मसेकुलर, ढोंगी आंबेडकरवादी और मार्क्सवादी शक्तियां जानती हैं कि डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के इन विचारों के नजदीक जितना अधिक जाएंगे, उतने ही भयानक बिजली के झटके लगेंगे। स्वतंत्रता के बाद देश के तथाकथित बुद्धिजीवियों ने डॉ. आंबेडकर की इन शक्तियों को जान-बूझकर अप्रचारित रखा।

संविधान सभा में बाबासाहेब।

आज पूरे विश्व में फैले इस्लामी कट्टरवाद का सही प्रेक्षण डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने आज से 75 वर्ष पूर्व कर लिया था। डॉ. बाबासाहेब ने जिस प्रकार अपनी निर्भीकता से हिन्दू समाज में व्याप्त कट्टर रूढ़िवादिता और छुआछूत का विरोध किया, वैसे ही मुस्लिम समुदाय की मजहबी कट्टरवाद से प्रेरित राजनीति का भी विरोध किया। जब हम उनके प्रसिद्ध ग्रंथ 'थॉट्स ऑन पाकिस्तान' को पढ़ते हैं, तब ध्यान में आता है कि पाकिस्तान के सृजन के पीछे कौन-सी मानसिकता जिम्मेदार थी? सोमनाथ का प्रसिद्ध मंदिर क्यों तोड़ा गया था? किन उद्देश्यों से सदियों तक मुस्लिम आक्रांताओं ने इस देश पर आक्रमण कर इसको तहस-नहस कर दिया? हिन्दू-मुस्लिम दंगे क्यों होते रहते हैं? देश का नेतृत्व क्यों मुस्लिम कट्टरवाद के आगे झुकता गया? आज भी हिन्दुस्थान और पूरे विश्व में जिहादी आतंकवाद क्यों फैला है? इन सभी सवालों के जवाब हमें डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के विचारों से मिलते हैं। आज भी इस्लामी कट्टरवाद और मुस्लिम समस्या ज्यों की त्यों है, ऐसे में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के विचारों को समझना जरूरी है।

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर का इस्लामी कट्टरवाद के बारे में दृष्टिकोण हमेशा एकदम स्पष्ट था। जब देश का राष्ट्रीय नेतृत्व हिन्दू-मुस्लिम एकता की आड़ में मुस्लिम तुष्टीकरण में लगा था, उस समय 18 जनवरी, 1929 के 'बहिष्कृत भारत' के संपादकीय में डॉ. बाबासाहेब ने लिखा, 'मुस्लिम लोगों का झुकाव मुस्लिम संस्कृति के राष्ट्रों की तरफ रहना स्वाभाविक है। लेकिन यह झुकाव हद से ज्यादा बढ़ गया है। मुस्लिम संस्कृति का प्रसार कर मुस्लिम राष्ट्रों का संघ बनाना और जितना हो सके काफिर देशों पर उनका अलम चलाना, यही उनका लक्ष्य बन गया है। इसी सोच के कारण उनके पैर हिन्दुस्थान में होकर भी उनकी आंखें तुर्कस्तान अथवा अफगानिस्तान की ओर लगी हैं। हिन्दुस्थान मेरा देश है, ऐसा जिनको अभिमान नहीं है और अपने निकटवर्ती हिन्दू बंधुओं

सौजन्य : एवोन मीटर्स प्राइवेट लिमिटेड, डेराबसी, पंजाब

के बारे में जिनकी बिलकुल भी आत्मीयता नहीं है, ऐसे मुसलमान लोग मुसलमानी आक्रमण से हिन्दुस्थान की सुरक्षा करने हेतु सिद्ध हो जाएंगे, ऐसा मानना खतरनाक है। ऐसा हमें लगता है।'

मुस्लिम कट्टरवाद असहिष्णुता, आक्रामकता और हठधर्मिता के कारण ही अखंड भारत खंडित हुआ और भारतभूमि पर पाकिस्तान नामक एक देश का सृजन हुआ, यही धारणा डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर की थी, जिसे उन्होंने अपनी पुस्तक 'थॉटस ऑन पाकिस्तान' (1941) में प्रस्तुत किया। उन दिनों अपने विषय की यह पहली पुस्तक थी, जिसने बाबासाहेब के दूरगामी राजनीतिक दृष्टिकोण का सच और लोहा मनवा लिया था। यह पुस्तक बाद में दूसरे संस्करण में 'पाकिस्तान एंड पार्टिशन ऑफ इंडिया' नाम से 1945 में प्रकाशित हुई।

जब मुस्लिम लीग ने मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में 1940 में अलग पाकिस्तान का प्रस्ताव अपने लाहौर अधिवेशन में प्रस्तुत किया तब देश के सभी बड़े राजनेता इसे कोरी कल्पना बता रहे थे, बकवास कहते थे। मगर बाबासाहेब की दूरदृष्टि ने जान लिया था कि इसे कोई रोक नहीं सकता, क्योंकि बाबासाहेब ने मुस्लिम कट्टरवाद और इस्लाम के राजनीतिक स्वरूप का गहराई से अध्ययन किया था। डॉ. बाबासाहेब इस्लामी सोच के साथ-साथ अंग्रेज साम्राज्य की कूटनीति को भी जानते थे। डॉ. बाबासाहेब कहते हैं, 'इस बारे में कोई सवाल नहीं उठ सकता कि पाकिस्तान के संबंध में योजना पर ध्यान देना ही पड़ेगा। मुसलमान इस योजना पर विचार करने के लिए दबाव डालेंगे.. राजनीतिक शक्ति के हस्तांतरण पर अपनी सहमति देने से पहले ब्रिटेन हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच किसी न किसी प्रकार समझौते का आग्रह करेगा। ...बहरहाल हिन्दुओं की यह आशा व्यर्थ है कि ब्रिटेन पाकिस्तान की मांग को दबाने के लिए बलप्रयोग करेगा, जो कि असंभव है।' मुस्लिम मानसिकता की असहिष्णुता, आक्रामकता और हठधर्मिता के कारण पाकिस्तान का सृजन हुआ। डॉ. बाबासाहेब की यही धारणा थी, जिसे उन्होंने निर्भीकता से प्रस्तुत किया। हिन्दू-मुस्लिम एकता एक भ्रम और सेकुलरवाद की बातें व्यर्थ हैं- ऐसा बाबासाहेब का मत था। उन्होंने कहा है, 'मेरे तर्कों का बहुत बड़ा भाग हिन्दुओं को संबोधित है। इसका एक स्पष्ट कारण है, जो किसी की भी समझ में आ जाएगा। हिन्दू बहुसंख्या में हैं। इस नाते उनके दृष्टिकोण का महत्व होना ही चाहिए। उनकी आपत्तियों को, चाहे वे तर्कसम्मत हों या भावुकता पूर्ण, दूर किए बिना (हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की) समस्या का शांतिपूर्ण हल संभव नहीं है। मैं अनुभव करता हूं कि जो हिन्दू जन अपने बांधवों के भाग्यों का पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं, उनकी देखने में सक्षम आंख (कार्लाइल के शब्द-प्रयोगानुसार) लुप्त हो गई है और वे कुछ खोखले भ्रमजालों की चमक ओढ़े घूम रहे हैं। मुझे भय है कि इसके परिणाम हिन्दुओं के लिए घातक होंगे। हिन्दुओं को यह बोध नहीं होता, यद्यपि यह अनुभव सिद्ध है कि हिन्दू व मुसलमान न तो स्वभाव में एक हैं, न आध्यात्मिक अनुभव में और न ही राजनीतिक एकता की इच्छा में। जिन कुछ थोड़े क्षणों में वे सौहार्द संबंधों की ओर बढ़े, तब भी ये संबंध तनाव पूर्ण थे। फिर भी हिन्दू इसी भ्रम को प्रसन्नता पूर्वक अपनाए रहेंगे कि पिछले अनुभवों के बावजूद, हिन्दुओं व मुसलमानों में घनिष्ठता बनाने के लिए दोनों के बीच लक्ष्यों, भावनाओं व नीतियों की व्यापक एवं वास्तविक एकता की पर्याप्त मात्रा बची हुई है।'

उस समय का कांग्रेसी नेतृत्व पाकिस्तान के विचार को जिन्ना की सनक बता रहा था, मगर बाबासाहेब ऐसे भ्रम में नहीं थे। उनके विचार से हिन्दू इसी भ्रम को पाले हैं कि पाकिस्तान मात्र जिन्ना की ही एक सनक है और इसका समर्थन न मुस्लिम जनसाधारण में है, न ही अन्य मुस्लिम नेताओं में। वे इस भ्रम से चिपके हुए इसलिए हैं कि सर सिकंदर हयात खान और मिस्टर फजलुलहक जिन्ना का खुला समर्थन नहीं कर रहे हैं। हिन्दू यदि अपना कर्तव्य नहीं निभाते तो वे वही परिणाम भुगतेंगे जिनके लिए वे आज यूरोप पर हंस रहे हैं और यूरोप की ही भांति नष्ट भी हो जाएंगे। हिन्दू जिस भूमि को युगों-युगों से अपनी पुण्यभूमि भारत वर्ष मानते रहे हैं, उसके दो टुकड़े करके एक मुस्लिम राष्ट्र और एक गैर मुस्लिम राष्ट्र बनाने की मांग उठने पर वे भौचक रह गए। वे मुस्लिम समुदाय के इस कथन से रुष्ट थे कि भारत के मुसलमान एक अलग राष्ट्र हैं। हिन्दुओं को लगता रहा है कि भारतीय सामाजिक जीवन की कुछ विशेषताएं दोनों समुदायों के बीच एकता के तारों का काम करती हैं। पर क्या इतना ही पर्याप्त था? डॉ. आंबेडकर कहते हैं- 'यह निर्विवाद है कि अधिकांश मुसलमान उसी जाति के हैं जिसके हिन्दू हैं। इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि सभी मुसलमान एक ही भाषा नहीं बोलते और बहुत से तो वही बोलते हैं जो हिन्दू बोलते हैं। दोनों समुदायों में कई सामाजिक रिवाज भी एक समान हैं। यह भी सत्य है कि कुछ धार्मिक सत्य व प्रथाएं दोनों समुदायों में एक से हैं। परंतु प्रश्न यह है कि क्या इन सभी तत्वों से ही हिन्दू व मुसलमान एक राष्ट्र बन जाते हैं या कि क्या इनसे उनमें एक दूसरे से जुड़ने की इच्छा पैदा हुई है?' 'डॉ. आंबेडकर, पाकिस्तान एंड पार्टिशन ऑफ इण्डिया', पृष्ठ 15 में उन्होंने कहा कि पहली बात तो यह है कि दोनों समुदायों में जो समान विशेषताएं इंगित की जाती हैं, वे दोनों समुदायों में सामाजिक ऐक्य स्थापित करने हेतु एक दूसरे के तौर-तरीकों को अपनाने या उन्हें आत्मसात करने के लिए किए गए किन्हीं सचेतन प्रयासों का परिणाम नहीं हैं। सच्चाई यह है कि ये समानताएं कुछ अनसोचे कारणों का परिणाम हैं। कुछ तो ये मतान्तरण की प्रक्रिया के अधूरी रह जाने से हैं। भारत जैसे देश में, जहां अधिकांश मुसलमान सवर्ण या असवर्ण हिन्दुओं में से बनाये गए हैं, इन मतान्तरित लोगों का इस्लामीकरण न तो पूर्ण हो सका, न प्रभावी। इसका कारण, परिवर्तित व्यक्तियों द्वारा विद्रोह का भय भी हो सकता है अथवा मतान्तरण के लिए मान जाने की स्थिति तक पहुंचाने का तरीका या मौलवियों की अपर्याप्त संख्या के कारण मजहबी पाठ पढ़ाने में रह गई कमी भी हो सकती है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि मुस्लिम समुदाय का बहुत बड़ा हिस्सा अपने धार्मिक-सामाजिक जीवन में यहां-वहां अपने हिन्दू मूल को प्रकट कर देता है। और, कुछ, यह सैकड़ों वर्षों तक एक ही वातावरण में साथ रहने का भी प्रभाव है। समान वातावरण से समान प्रतिक्रियाएं पैदा होना अवश्यंभावी है और उस वातावरण के प्रति एक ही प्रकार की प्रतिक्रिया देते-देते व्यक्तियों की एक ही किस्म बन ही जाती है।

क्या कोई ऐसा ऐतिहासिक घटनाक्रम है जिसे हिन्दू और मुसलमान समान रूप से गौरव या व्यथा के विषय के रूप में याद रखे हुए हैं? समस्या की जड़ में यही प्रश्न है। यदि हिन्दू स्वयं को और मुसलमानों को एक ही राष्ट्र का अंग मानना चाहते हैं, तो उन्हें इसी प्रश्न का उत्तर देना होगा। दोनों समुदायों के बीच संबंधों के इस पक्ष पर दृष्टि डालें तो यही सामने आयेगा कि वे तो बस एक-दूसरे से युद्ध में रत दो सेनाओं की भांति रहे हैं। उनके बीच किसी साझी उपलब्धि की प्राप्ति के लिए मिलेजुले प्रयासों का कोई युग नहीं रहा। ...जैसा कि भाई परमानन्द ने अपनी पुस्तिका 'हिन्दू राष्ट्रवादी आन्दोलन' में उल्लेख किया है, 'हिन्दू अपने इतिहास में पृथ्वीराज, राणा प्रताप, शिवाजी और बन्दा बैरागी के प्रति श्रद्धा रखते हैं, जिन्होंने इस भूमि की रक्षा और सम्मान के लिए मुसलमानों से संघर्ष किया, जबकि मुसलमान मुहम्मद बिन कासिम जैसे विदेशी हमलावरों और औरंगजेब जैसे शासकों को अपना राष्ट्रनायक मानते हैं। धार्मिक क्षेत्र में हिन्दू रामायण, महाभारत और गीता से प्रेरणा पाते हैं। दूसरी ओर, मुसलमान अपनी प्रेरणाएं कुरान और हदीस से प्राप्त करते हैं। अतः जो बातें उन्हें एक सूत्र में बांधती हैं, उनसे अधिक शक्तिशाली वे बातें हैं,

जो उन्हें बांटती हैं। हिन्दुओं और मुसलमानों के सामाजिक जीवन की कुछ विशेषताओं- समान जाति, भाषा व देश जैसी कुछ बातों- पर निर्भर करके हिन्दू उन बातों को आधारभूत और महत्वपूर्ण मानने की गलती कर रहे हैं जो केवल संयोगजनित और ऊपरी हैं। ये समानताएं तथाकथित और ऊपरी हैं। हिन्दुओं और मुसलमानों को जितना ये तथाकथित समानताएं मिलाती हैं, राजनीतिक व साम्प्रदायिक शत्रुताएं उससे कहीं अधिक बांटती हैं। दोनों समुदाय अपना अतीत यदि भूल पाते तो शायद संभावनाएं कुछ और होतीं।' (पृ. 17-18) डॉ. आंबेडकर की मान्यता थी कि हिन्दू-मुस्लिम संबंधों की आज की कड़वी सचाई जिस इतिहास में से निकली है, उसे समझना बहुत आवश्यक है। उनका विश्वास था कि सन् 711 में मुहम्मद बिन कासिम द्वारा सिंध पर किए गए आक्रमण से आरंभ हुए मुस्लिम सेनाओं के निरंतर आक्रमणों और आक्रमणकारियों द्वारा अपनाए गए तौर-तरीकों ने हिंदुओं और मुसलमानों के बीच ऐसी गहरी कड़वाहट पैदा कर रखी है, जिसे लगभग एक शताब्दी की राजनीतिक कार्रवाईयों ने भी न तो शांत किया है, न ही जिसे लोग भुला पाए हैं।

डॉ. बाबासाहेब लिखते हैं, क्योंकि, हमलों के साथ-साथ मंदिरों को नष्ट-भ्रष्ट किया गया, बलपूर्वक मतान्तरण कराए गए, धन-सम्पत्ति की लूट की गई, पुरुषों, महिलाओं, बच्चों को अतिशय अपमानित किया गया या गुलाम बना दिया गया। इसलिए इसमें आश्चर्य की बात क्या है कि इन आक्रमणों की स्मृतियां सदा ही बनी रहीं और मुसलमान उन्हें गर्व से तथा हिन्दू लज्जा एवं ग्लानि के साथ याद करते रहे हैं।

निःसंदेह, मुस्लिम हमलावर हिन्दुओं के विरुद्ध नफरत के गीत गाते हुए ही भारत की ओर आए थे। किन्तु, वे केवल नफरत के ये गीत गाकर और मार्ग में पड़ने वाले मंदिर तोड़कर ही वापस नहीं चले गए। ऐसा हुआ होता, तो यह वरदान होता। वे अपने अभियानों के इतने अस्थायी परिणामों से संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने एक स्थायी कार्य भी किया, वह था इस्लाम का बीज बोने का कार्य। इस पौधे का असाधारण फैलाव हुआ है। (पृ. 47-48) डॉ. आंबेडकर ने डॉ. टाइटस की पुस्तक 'इंडियन इस्लाम- ए रिलीजस हिस्ट्री ऑफ इस्लाम इन इंडिया' और लेनपूल की 'मेडिवल इण्डिया अंडर मोहमडन रूल' से उद्धरण लेकर निम्न विवरण प्रस्तुत किया है। (पृ.36-46) सन् 711 का मुहम्मद बिन कासिम का पहला मुस्लिम आक्रमण देश पर उनका स्थायी कब्जा नहीं करवा पाया, क्योंकि बगदाद का खलीफा, जिसके हुक्म से यह आक्रमण किया गया था, नौवीं सदी के मध्य में इस दूर-दराज के प्रदेश सिंध से अपना सीधा नियंत्रण हटाने को विवश हो गया। इस वापसी के कुछ ही समय बाद सन् 1001 में महमूद गजनवी के भयंकर आक्रमण प्रारंभ हो गए, जो एक के बाद एक होते रहे। महमूद गजनवी की सन् 1030 में मृत्यु हो गई। परन्तु 30 वर्ष के अल्पकाल में उसने भारत पर सत्रह बार हमले किए। महमूद के बाद आया मुहम्मद गोरी, जिसने बर्बर आक्रमणों का अपना अभियान 1173 ई. में आरंभ किया। सन् 1206 में वह मारा गया। 30 वर्ष महमूद गजनवी ने भारत का विनाश किया और तीस वर्ष तक मुहम्मद गोरी ने भी इस देश को वैसा ही उजाड़ा। उसके बाद चंगेज खान के मुगल गिरोहों के हमले होने लगे। ये गिरोह सर्वप्रथम सन् 1221 में आए। उस समय शीतऋतु में वे भारत की सीमा पर ही रुके रहे और अन्दर प्रविष्ट नहीं हुए। उसके बीस वर्ष बाद उन्होंने लाहौर पर धावा बोला और उसे लूट लिया। उनका सबसे भयंकर हमला सन् 1368 में तैमूर की अगुआई में हुआ था। फिर, 1526 में बाबर के रूप में एक नया हमलावर सामने आया। बाबर के बाद भी भारत पर आक्रमण रुके नहीं । दो हमले और हुए। 1738 में नादिर शाह की हमलावर सेनाओं ने धावा बोला जो सागर के रौद्र रूप जैसा था। उसके बाद सन् 1761 में अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण हुआ जिसने पानीपत के युद्ध में मराठा सेनाओं को परास्त कर हिन्दुओं द्वारा मुस्लिम हमलावरों से अपनी हारी हुई धरती को वापस छीनने के प्रयास सदा के लिए समाप्त कर दिए।

ये मुस्लिम आक्रमण केवल लूटपाट और विजय की लालसा से ही नहीं किए गए थे। इनके पीछे एक और उद्देश्य था। मुहम्मद बिन कासिम का अभियान यों तो दंडात्मक स्वरूप का था और सिंध के राजा दाहिर को दंडित करने के उद्देश्य से किया गया था क्योंकि उसने सिंध के बन्दरगाह देवल पर अरब के एक समुद्री जहाज को जब्त करने के बाद उसके लिए मुआवजा देने से इनकार कर दिया था। पर, इसमें भी कोई संदेह नहीं कि इस अभियान का एक उद्देश्य हिन्दुओं की मूर्ति-पूजा और उनके बहुदेववाद पर करारा प्रहार था। राजा दाहिर के भतीजे, उसके योद्धाओं और बड़े अधिकारियों को मार डाला गया तथा काफिरों को या तो इस्लाम कबूल करवा दिया गया या उनका वध कर दिया गया है। मूर्तियों वाले मंदिरों के स्थान पर मस्जिदें और अन्य इबादतगाह बना दिये हैं, खुत्बा पढ़ा जाता है, अजान दी जाती है ताकि नमाज सही वक्त पर हो सके। सुबह-शाम तकबीर और अल्लाह-ओ-अकबर की तारीफ अता की जाती है। (डॉ. टाइटस की पुस्तक 'इंडियन इस्लाम- ए रिलीजस हिस्ट्री ऑफ इस्लाम इन इंडिया' के पृष्ठ 10 से उद्धृत)

> हिन्दू इस भूमि की रक्षा के लिए मुसलमानों से संघर्ष करने वाले पृथ्वीराज, राणा प्रताप, शिवाजी और बन्दा बैरागी के प्रति श्रद्धा रखते हैं, जबकि मुसलमान मुहम्मद बिन कासिम और औरंगजेब को अपना राष्ट्रनायक मानते हैं। हिन्दू रामायण, महाभारत और गीता से प्रेरणा पाते हैं तो मुसलमान कुरान और हदीस से। अतः जो बातें उन्हें एक सूत्र में बांधती हैं, उनसे अधिक शक्तिशाली वे बातें हैं, जो उन्हें बांटती हैं।

यह संदेश, जिसके साथ राजा दाहिर का कटा सिर भी था, प्राप्त होने पर अज्जाज ने अपने सेनापति को यह उत्तर भेजा-

...खुदा का हुक्म है ...काफिरों को कोई पनाह न दो, सिर्फ उनकी गर्दनें काटो। यह जान लो कि यह महान खुदा का हुक्म है।

बाबासाहेब लिखते हैं- महमूद गजनवी भी भारत पर अपने अनेक हमलों को जिहाद के रूप में ही देखता था। महमूद गजनवी के इतिहासकार अल-उत्बी ने इन हमलों का वर्णन करते हुए लिखा है-

उसने मूर्तियों वाले मंदिरों को ध्वस्त कर डाला और इस्लाम को स्थापित किया। उसने नगरों पर कब्जा किया, दूषित मान्यताओं वाले नीच लोगों को मार डाला, मूर्ति-पूजकों को नष्ट किया और मुसलमानों को संतोष प्रदान किया। फिर वह घर वापस हो लिया और इस्लाम की खातिर प्राप्त की गई अपनी फतहों का ऐलान किया और यह कसम खाई कि वह हिन्द के खिलाफ हर साल जिहाद छेड़ेगा। (संदर्भ वही, पृ. 11)

मोहम्मद गोरी भी भारत पर अपने हमलों में इसी मजहबी उत्साह से प्रेरित होता था। इतिहासकार हसन निजामी ने उसके कारनामों का वर्णन इस प्रकार किया है-

उसने अपनी तलवार के जोर पर हिन्द की जमीन से काफिरत और

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:54 PM Page 49

पापाचार की गंदगी का सफाया कर दिया और उस सारे मुल्क को बहु ईश्वरवाद के कांटे व मूर्ति-पूजा की जलालत से छुटकारा दिलाया और अपने शाही जलवे तथा बेखौफ बहादुरी से एक भी मंदिर खड़ा नहीं छोड़ा। (संदर्भ वही, पृ. 11)

तैमूर ने अपने संस्मरणों में बताया है कि भारत पर उसके हमलों का कारण क्या था- हिन्दुस्थान पर हमलों का मेरा उद्देश्य काफिरों के खिलाफ एक अभियान चलाना और उसके द्वारा उनकी काफिरत छुड़ा कर उन से मुहम्मद के हुक्म के अनुसार सचाई मान कबूल करवाना, उस जमीन से कुविश्वास और बहुदेववाद की गंदगी साफ कर उसे पाक बनाना तथा मंदिरों और मूर्तियों को उखाड़ फेंकना है, जिससे हम खुदा के सामने ईमान का साथ देने और उसके लिए लड़ने वाले गाजी और मुजाहिद बन जाएंगे। (लेन पूल की पुस्तक मेडिवल इंडिया के पृ. 155 पर उद्धृत)

महमूद गजनवी ने प्रारंभ से ही ऐसे तरीके अपनाए जो हिन्दुओं के हृदयों में आतंक पैदा करें। सन् 1001 में राजा जयपाल की पराजय के बाद महमूद ने आदेश दिया कि राजा जयपाल को गलियों में घुमाया जाए ताकि उसके पुत्र और अन्य सरदार उसे लज्जा, दासत्व के बंधन और अपमान की अवस्था में देखें तथा इस्लाम का खौफ काफिरों के देश से होता हुआ चारों ओर फैल जाए।

लगता है, काफिरों के कत्लेआम से महमूद गजनवी को विशेष खुशी मिलती थी। सन् 1019 में चांद राय पर एक आक्रमण में अनेक काफिरों और सूर्य एवं अग्नि के उपासकों की हत्याएं करते-करते वे तृप्त नहीं हो गए। इतिहासकार इसके आगे नादानी में लिखता है कि हिन्दू सेनाओं के हाथ खुद-बखुद मूर्तियों को त्याग कर इस्लाम की खिदमत को श्रेष्ठ मानते हुए महमूद के पास आ गए। (इंडियन इस्लाम, पृ. 22)

डॉ. बाबसाहेब ने इस प्रकार इस्लामी आक्रांताओं की क्रूरता का वर्णन करते हुए लिखा- कुतबुद्दीन ऐबक ने भी कहा जाता है लगभग एक हजार मंदिर गिराए और उनके स्थान पर मस्जिदें बनवाई। उसने दिल्ली की जामा मस्जिद बनवाई और उस पर हाथियों द्वारा गिरवाए गए मंदिरों से प्राप्त पत्थर और सोना जड़वाया तथा उन पर (कुरान के) खुदाई फरमान खुदवाए। इस आततायी तरीके का योजनाबद्ध ढंग से प्रयोग किए जाने का सबूत दिल्ली की इसी मस्जिद के पूर्वी प्रवेश द्वार पर विद्यमान उत्कीर्णन से मिलता है, जिसमें लिखा है कि सत्ताईस मंदिरों के मलबे से इस मस्जिद को बनाया गया। (इण्डियन इस्लाम)

अमीर खुसरो बताते हैं कि अलाउद्दीन ने, कुतुबुद्दीन द्वारा बनवाई गई मीनार के समकक्ष एक दूसरी मीनार बनाने के उत्साह में, न केवल पहाड़ों से पत्थर खुदवाए, बल्कि काफिरों के मंदिर तोड़कर भी सामग्री प्राप्त की। अपनी दक्षिण विजय के दौरान, अलाउद्दीन ने मंदिर विध्वंस का अभियान उसी प्रकार चालू रखा जैसे अनेक पूर्ववर्ती हमलावरों ने उत्तर भारत में किया था।

सुल्तान फिरोजशाह ने अपनी फतुहात में बहुत सजीव चित्रण कर के बताया है कि उन हिन्दुओं का उसने क्या किया जिन्होंने अपने लिए नए मंदिर बना लेने का दुस्साहस किया था। जब हिन्दुओं ने नगर (दिल्ली) में और आसपास ऐसा किया (दुबारा मंदिर बनाये), जो कि पैगम्बर के कानून के खिलाफ था, जिसमें ऐसा सहन न करने को कहा गया है, मैंने खुदाई मार्गदर्शन में इन भवनों को तोड़ डाला और उन काफिरों के नेताओं को कत्ल कर दिया और बाकी को कोड़ों की सजा दी, जब तक कि वह बुराई पूरी तरह समाप्त नहीं हो गई और जहां पर काफिर मूर्ति पूजक मूर्तियों की पूजा करते थे, वहां अब खुदा की मेहरबानी से मुसलमान सच्चे खुदा की इबादत करते हैं।

यहां तक कि शाहजहां के शासन काल में भी उन मंदिरों के विध्वंस का वर्णन हम पढ़ते हैं, जिन्हें हिन्दुओं ने दुबारा बनाना प्रारंभ किया। हिन्दुओं के पवित्र स्थलों पर सीधे आक्रमणों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि बादशाह (अकबर) के शासनकाल में काफिरों के गढ़ बनारस में कई मंदिर बनाने प्रारंभ किए गए थे, पर पूरे नहीं हो सके थे। उन मंदिरों को काफिर अब पूरा करना चाहते हैं। बादशाह ने हुक्म दिया कि बनारस में और उनकी सल्तनत में आने वाले सारे क्षेत्र में किसी भी स्थान पर जो भी मंदिर बनाने प्रारंभ किए गए थे, वे सब गिरा दिये जाएं। इलाहाबाद सूबे से सूचना मिली कि बनारस जिले में 76 मंदिर ध्वस्त कर दिये गए। (इण्डियन इस्लाम)

मूर्ति पूजा को उखाड़ फेंकने का अंतिम दुष्प्रयास औरंगजेब को करना था। मा अतहिर-ए-आलमगीरी के लेखक ने हिन्दुओं के धार्मिक कथा-उपदेश समाप्त करने और मंदिरों को नष्ट करने के औरंगजेब के प्रयत्नों का वर्णन दर्प से फूलते इन शब्दों में किया है।

'अप्रैल 1669 में औरंगजेब को पता लगा कि थट्टा, मुल्तान और बनारस सूबों में, विशेषकर बनारस में, मूर्ख ब्राह्मण अपने विद्यालयों में फिजूल की किताबें पढ़ाया करते हैं और वहां मुसलमान व हिन्दू दोनों ही दूर-दूर से अध्ययन के लिए आया करते हैं। ईमान के संचालक ने सूबों के गवर्नरों को हुक्म जारी किया कि काफिरों के सभी विद्यालयों और मंदिरों को पक्के इरादे से गिरा दिया जाए, उन्हें हुक्म हुआ कि मूर्ति पूजा की शिक्षा और प्रथा को पूर्णतया रोका जाए। बाद में बादशाह को बताया गया कि शाही अधिकारियों ने बनारस का विश्वनाथ मंदिर गिरा दिया है।'

जैसा कि डॉ. टाइटस ने लिखा है, महमूद गजनवी और तैमूर जैसे आक्रमणकारियों की रुचि बलात् मतान्तरण से भी अधिक मूर्तिभंजन, लूटपाट, हिन्दुओं को गुलाम बनाने या इस्लामी तलवार से उन्हें दोजख (नरक) में झोंकने में थी। परंतु, जब मुस्लिम राजसत्ता स्थायी रूप से स्थापित हो गई, तब अधिक से अधिक हिन्दुओं को मुसलमान बनाना पहली आवश्यकता बन गई। इस्लाम को पूरे भारत का मजहब बनाना

उद्गार/अंश

...इस झूठी धारणा को न पालें कि पाकिस्तान अपने मुस्लिम साम्राज्य को भारत पर फैलाने में समर्थ होगा। हिन्दू उन्हें धूल चटा देंगे। मैं मानता हूं कि कुछ बातों पर हिन्दुओं का आपसी झगड़ा है लेकिन मैं आपके समक्ष शपथ लेता हूं कि मैं अपनी मातृभूमि के लिए अपना जीवन न्यौछावर कर दूंगा।...

– **मुंबई वसंत व्याख्यानमाला**, फरवरी, 1942

Achievements

Social Responsibility

Ayur Aanchal Flagship Corporate Social Responsibility Program for Female **"Birth to Career"** is an integral part of our global benevolence program - **Live, Learn & Earn.**

On the reserves of **Ayur Group, 2% share** will be spent towards any under privilege girl. With this insight that enable consumers to contribute towards the cause through simple brand choices.

Birth to Career's vision is to make India's women 100% literate, as an NGO the focus is on critical approach towards education specializing in building educational infrastructure and supporting schools and building tangible assets for schools across India.

Let us all join hands and give **THE GIRL CHILD A BETTER OPPORTUNITY AND A DREAM TO LIVE BETTER LIFE.**

We are there to help the poor women whenever and wherever they require !

Range of: Skin Care • Hair Care • Fa

Help Line: 1800 11 2986 | ayurcare@ayurherb

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:44 PM Page 51

Ayur

Regd. TM of Herbals
Three-N-Products Pvt. Ltd.

Seminars / New Openings

Events / Exhibitions

re • Face Care • Sun Production

yurherbals.com | www.ayurherbals.com

Ayur is a name of trust.

Based on our tradition and culture of natural and herbal things. The rapid awareness of the bad effects of modern cosmetics prompted a gradual switch over to herbal cosmetics. Herbal products are better than any other cosmetics.

Herbal products, encompasses the majestic features of Mother Nature and boasts of some striking features and advantages. AYUR, a range of herbal products is ensuring the beauty with quality; we manufacture our herbal products at global standards.

We believe to establish long-term trust and relationship with clients and consumers by providing quality products and services in the fields of Cosmetology, Dermatology, Hair Care, Ethnic Care, and Herbal Care at reasonable price with full integrity and thus by creating win-win situation.

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:15 PM Page 52

सरदार पटेल द्वारा दिए गए भोज में मौलाना हसरत मोहानी के साथ बाबासाहेब।

राज्यनीति का अंग बन गया।

कुतुबुद्दीन ने, जिसकी मंदिरों के विध्वंस के लिए लगभग गजनी के महमूद जैसी ही बहुत बड़ी प्रसिद्धि थी, बारहवीं शती के अंतिम भाग और तेरहवीं शती के प्रारंभ में मतान्तरण कराने के लिए बारम्बार बल प्रयोग अवश्य किया होगा। एक उदाहरण लिया जा सकता है। सन् 1194 में वह कोइल (अलीगढ़) के निकट पहुंचा तो किले में जो बुद्धिमान एवं प्रखर लोग थे, उन्हें मुसलमान बना लिया गया और शेष सभी तलवार से काट डाले गए।'

बाबासाहेब लिखते हैं, 'महमूद ने न केवल मंदिर तोड़े बल्कि उसने जीते गए हिन्दुओं को गुलाम बनाने की नीति ही बना रखी थी।' डॉ. टाइटस के शब्दों में-

'भारत में इस्लाम के प्रवेश के प्रारंभिक काल में, न केवल काफिरों के कत्लेआम और मंदिर तोड़ने का काम किया गया बल्कि जैसा कि हम देख चुके हैं, बहुत से पराजित हिन्दुओं को गुलामी में धकेला गया। इन अभियानों में हमलावर सरदारों और सामान्य सैनिकों के लिए एक विशेष आकर्षण लूट के माल को बांट लेना होता था। ऐसा प्रतीत होता है कि महमूद ने काफिरों का नरसंहार उनके मंदिरों का विध्वंस, उन्हें पकड़ कर गुलाम बनाना, लोगों की और विशेषकर मंदिरों एवं पुजारियों की संपति लूटना अपने अभियानों का मुख्य उद्देश्य बना रखा था। कहा जाता है कि अपने प्रथम आक्रमण के समय लूट का बहुत माल उसके हाथ लगा और पांच लाख सुन्दर हिन्दू पुरुषों व महिलाओं को गुलाम बनाकर गजनी ले जाया गया।

महमूद ने जब सन् 1017 में कन्नौज को लूटा तो वह इतनी संपदा और इतने लोगों को बंदी बनाकर ले गया कि गिनने वालों की अंगुलियां थक गई होंगी।

कोई भी हिन्दू सिर उठाकर नहीं चल सकता था। लगान वसूलने के लिए पिटाई, कैद और बेड़ियां, ये सब तरीके काम में लाए जाते थे।'

तो ऐसी है महमूद गजनवी के आने से लेकर अहमद शाह अब्दाली की वापसी (1763) तक के 762 वर्षों की कहानी। (पाकिस्तान एंड पार्टिशन ऑफ इण्डिया, पृ. 36-46)

इस्लाम की मूलभूत राजनीतिक प्रेरणाओं के बारे में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर लिखते हैं, 'मुस्लिम कानून के अनुसार दुनिया दो पक्षों में बंटी है- दारुल इस्लाम और दारुल हरब। वह देश दारुल इस्लाम कहलाता है, जहां मुसलमानों का राज हो। दारुल हरब वे देश हैं जहां मुसलमान रहते तो हैं, पर वे वहां के शासक नहीं हैं। इस्लामी कानून के अनुसार भारत देश हिन्दुओं और मुसलमानों की साझी मातृभूमि नहीं हो सकता है। वह मुसलमानों की जमीन तो हो सकती है, पर बराबरी से रहते हिन्दुओं और मुसलमानों की भूमि नहीं हो सकती। यह मुसलमानों की जमीन भी केवल तब हो सकती है, जब इस पर मुसलमानों का राज हो। जिस क्षण इस भूमि पर किसी गैर-मुस्लिम का अधिकार हो जाता है, यह मुसलमानों की जमीन नहीं रहती। दारुल इस्लाम के स्थान पर यह दारुल हरब हो जाती है।'

यह न समझा जाए कि ऐसा विचार कोरी किताबी अभिरुचि की बात है क्योंकि इसमें मुसलमानों के व्यवहार को प्रभावित करने वाली कारगर शक्ति बनने की क्षमता है। इस विचार ने मुसलमानों के व्यवहार पर उस समय भी बड़ा प्रभाव डाला था जब अंग्रेजों ने भारत पर कब्जा किया। ब्रिटिश कब्जे से हिन्दुओं के मनों में तो कोई पाप-आशंका नहीं उत्पन्न हुई, किन्तु मुसलमानों के सामने तुरंत यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि क्या अब हिन्दुस्तान मुसलमानों के निवास करने योग्य देश रह गया है? मुस्लिम समुदाय के भीतर यह चर्चा प्रारंभ की गई, जो डॉ. टाइटस कहते हैं, लगभग चार वर्ष तक चली कि भारत दारुल हरब है या दारुल इस्लाम? कुछ अधिक उत्साही तत्वों ने सैयद अहम दशाहिद के नेतृत्व में सचमुच ही जिहाद की घोषणा कर दी, उन्होंने मुसलमानों को सिखाया कि हिजरत करके मुस्लिम राज वाले देशों को चले जाओ, और हिन्दुस्थान भर में अपना आन्दोलन चलाया।

बाबासाहेब ने एएमयू के संस्थापक सर सैयद अहमद का सांप्रदायिक चेहरा भी बेनकाब किया है। बाबासाहेब लिखते हैं, 'सर सैयद अहमद ने अपनी सारी प्रतिभा लगाकर मुसलमानों को यह समझाया कि वे हिन्दुस्थान को दारुल-हरब केवल इस कारण न मान लें कि यहां अब मुस्लिम राज नहीं रहा। उन्होंने मुसलमानों से आग्रह किया कि हिन्दुस्थान को दारुल-इस्लाम ही मानें, क्योंकि उन्हें अपने मजहब के अनुसार सभी रस्मो-रिवाज पूरे करने की आजादी है। हिजरत करने का आन्दोलन कुछ समय के लिए दब गया। परन्तु हिन्दुस्थान दारुल हरब है, यह सिद्धांत छोड़ नहीं दिया गया... यह भी उल्लेखनीय है कि दारुल हरब से अपने आपको मुक्त करने के लिए मुसलमानों के पास केवल हिजरत ही एकमात्र मार्ग नहीं है। मुस्लिम कानून का एक और आदेश है- जिहाद छेड़ने का, जिसके द्वारा मुस्लिम शासक कर्तव्यबद्ध है कि वह इस्लाम के राज को तब तक फैलाएं, जब तक कि पूरी दुनिया इस की हुकूमत में नहीं आ जाती। सारे संसार को जब दो पक्षों में बांट दिया है- एक दारुल इस्लाम और दूसरा हरब तो सभी देश दो में से किसी एक श्रेणी में आएंगे ही। दारुल हरब को दारुल इस्लाम में बदलना हर उस मुस्लिम शासक का कर्तव्य है, जिसमें ऐसा करने का सामर्थ्य हो।

1857 में मुसलमानों ने तो विद्रोह कर के भारत को फिर से दारुल इस्लाम में परिणित करने का प्रयास किया था (हिन्दुओं के लिए भले ही वह देश की स्वाधीनता का संग्राम रहा हो)।

डॉ. आंबेडकर कहते हैं, 'वे जिहाद केवल छेड़ ही नहीं सकते, बल्कि जिहाद की सफलता के लिए विदेशी मुस्लिम शक्ति को सहायता के लिए बुला भी सकते हैं। और, इसी प्रकार यदि भारत के विरुद्ध कोई विदेशी मुस्लिम शक्ति ही जिहाद छेड़ना चाहती है, तो मुसलमान उसके प्रयास की सफलता के लिए सहायता भी कर सकते हैं।'

एक तीसरा सिद्धांत, जिसकी चर्चा करना प्रासंगिक होगा यह है कि

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:45 PM Page 53

इस्लाम भूक्षेत्रीय नातों को नहीं मानता। इसके रिश्ते-नाते सामाजिक और मजहबी होते हैं, अतः दैशिक सीमाओं को नहीं मानते। अन्तरराष्ट्रीय इस्लाम का यही आधार है। इसी से प्रेरित हिन्दुस्तान का हर मुसलमान कहता है कि वह मुसलमान पहले है और हिन्दुस्थानी बाद में। यही है वह भावना जो स्पष्ट कर देती है कि क्यों भारतीय मुसलमानों ने भारत की प्रगति के कामों में इतना कम भाग लिया है, जब कि वे मुस्लिम देशों के पक्ष का समर्थन करने में अपनी सारी शक्ति लगा देते हैं और क्यों उनके ख्यालों में मुस्लिम देशों का स्थान पहला और भारत का दूसरा है।... यदि अन्तरराष्ट्रीय इस्लामवाद का यह मजहबपरस्त रूप एक अन्तरराष्ट्रीय इस्लामी राजनीतिक स्वरूप अपनाने की ओर बढ़ता है, तो इसे अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। (पाकिस्तान एंड पार्टिशन ऑफ इंडिया, पृ. 287-91)

इस प्रकार की अपनी वैचारिक प्रेरणाओं के प्रभाव में रहते हुए मुसलमान किस सीमा तक ऐसी सरकार की सत्ता को स्वीकारेंगे जिसको बनाने और चलाने वाले हिन्दू होंगे? यह प्रश्न भी डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने उठाया। इस संदर्भ में उन्होंने इस बात का वर्णन किया कि मुसलमान हिन्दुओं को किस दृष्टि से देखते हैं।

...मुसलमान की दृष्टि में हिन्दू काफिर है और काफिर सम्मान के योग्य नहीं होता। वह निष्ट जन्मा और प्रतिष्ठाहीन होता है। इसीलिए काफिर द्वारा शासित देश मुसलमान के लिए दारुल हरब होता है। (संदर्भ वही, पृ. 294)

डॉ. आंबेडकर कुछ उदाहरण भी देते हैं- खिलाफत आन्दोलन के दिनों में भी, जब हिन्दू लोग मुसलमानों की इतनी अधिक सहायता कर रहे थे, मुसलमान यह मानना नहीं भूले कि उनकी तुलना में हिंदू नीची और घटिया जाति के हैं। 1924 में श्री गांधी के कारागार से मुक्त होने पर हर्ष मनाने के लिए आयोजित एक समारोह में घटी एक अनोखी घटना का विवरण समाचार पत्रों में छपा। समारोह हकीम अजमल खां द्वारा दिल्ली में संचालित यूनानी तिब्बिया कॉलेज में हुआ। समाचार के अनुसार एक हिंदू छात्र ने गांधी जी की तुलना हजरत ईसा मसीह से कर दी। मुस्लिम भावनाओं को ठेस पहुंचाने वाली इस बात से सारे मुस्लिम छात्र भड़क उठे और उस हिंदू छात्र को हिंसक परिणामों की धमकी दी। कहा जाता है कि मुस्लिम प्राध्यापक तक भी अपने फिरके के छात्रों के साथ अपनी आहत भावनाओं के इस प्रदर्शन में सम्मिलित हो गए। (पृ. 294-5)

खिलाफती नेता और गांधी जी के निकट सहयोगी मुहम्मद अली ने 1923 में कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए गांधीजी के लिए महात्मा जैसे श्रद्धापूर्ण शब्दों का प्रयोग किया और उनकी तुलना ईसा मसीह से की। उसके एक वर्ष बाद अलीगढ़ और अजमेर में दी गई तकरीर में बोलते हुए मुहम्मद अली ने कहा-

'गांधी जी का चरित्र कितना ही निर्मल क्यों न हो, मजहबी दृष्टि से वे मुझे किसी भी मुसलमान से, चाहे वह चरित्रहीन ही क्यों न हो, निष्ट ही दिखेंगे।'

मुहम्मद अली एक बार लखनऊ के अमीनाबाद पार्क की एक बैठक में बोल रहे थे तो उनसे पूछा गया कि जो कहा जा रहा है कि उन्होंने श्रीगांधी के विरुद्ध भावनाएं व्यक्त कीं, क्या यह सत्य है? मुहम्मद अली ने बिना किसी झिझक या खेद के उत्तर दिया, 'हां, मेरे मजहब और मत के अनुसार मैं किसी भी व्यभिचारी और चरित्रहीन मुसलमान को गांधी से बेहतर मानता हूं।'(पृ. 146) डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने गांधीजी को इस बात के लिए दोषी बताया कि उन्होंने इन हत्याओं की निन्दा नहीं की और वह भी इसलिए कि कहीं ऐसी निन्दा से हिंदू-मुस्लिम एकता के प्रयासों को धक्का न पहुंचे। मुसलमानों की किसी भी गलती को माफ कर देने की इस प्रवृत्ति के भी डॉ. आंबेडकर आलोचक थे।

बाबासाहेब मानते थे कि हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रयास भ्रामक है और दंगों में मुस्लिम कट्टरपंथियों के शामिल होने के स्पष्ट प्रमाण के बावजूद कांग्रेस और गांधीजी ने उनको दोषी नहीं माना। बाबासाहेब ने कहा, गांधीजी ने मुस्लिमों द्वारा हिन्दुओं के विरुद्ध घोर अपराध किए जाने पर भी मुसलमानों से उनके कारण नहीं पूछे।

गांधीजी के हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने के इन प्रयासों का फल क्या निकला? डॉ. आंबेडकर के विचार में इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए यह आवश्यक होगा कि सन् 1920 से 1940 तक के वर्षों में, जो कि श्री गांधी द्वारा हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए किए गए कठिन परिश्रम के वर्ष थे, दोनों समुदायों के बीच रहे संबंधों की परख की जाए। इन संबंधों का विस्तृत वर्णन भारत सरकार द्वारा संसद में भारत की वस्तु स्थिति के बारे में प्रस्तुत वार्षिक प्रतिवेदनों में उपलब्ध है। (पृ. 153) इन प्रतिवेदनों में दोनों समुदायों के बीच हुए खूनी दंगों के विवरण मिलते हैं। इन्हीं दंगों में से एक है 1920 की मोपला हिंसा, जो (केरल के) मालाबार क्षेत्र में मोपलों (मुसलमानों) द्वारा हिन्दुओं के ऊपर खून जमा देने वाले अत्याचारों की हृदयविदारक कथा है। (पृ. 147) सामूहिक हत्याएं, बलात् मतान्तरण, मंदिरों को अपवित्र करना, महिलाओं का कुत्सित अपमान, लूटपाट, आगजनी, विनाश किया गया। संक्षेप में, मोपलों ने हिन्दुओं के विरुद्ध पाशविक और बेलगाम बर्बरता से जुड़े सभी घिनौने कार्य बेरोक-टोक किए। (पृ. 153)

हिंसा के इन विवरणों को यदि श्रीगांधी द्वारा हिन्दू-मुस्लिम एकता के व्यग्र प्रयासों के साथ-साथ देखा जाए तो यह बहुत ही कष्टदायी और हृदयविदारक अध्याय होगा। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि यह विवरण हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच गृहयुद्ध के बीस वर्ष का अभिलेख है जिसके बीच-बीच में हथियारबंद शांति भी हो जाती थी। (पृ. 175)

उर्दू को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने, गोवध का आग्रह और मस्जिदों के आगे बाजे-गाजे की मनाही जैसे विषयों पर मुसलमानों की जिद पर डॉ. बाबासाहेब ने कहा, उर्दू को भारत की राष्ट्र भाषा बनाने की उनकी मांग विवेकहीन है। 6.8 करोड़ मुसलमानों में से मात्र 2.8 करोड़ ही उर्दू बोलते हैं। (पृ. 268)

ध्यान देने वाली दूसरी बात हिन्दुओं की कमजोरियों से लाभ उठाने की मुसलमानों की भावना है। अनुचित लाभ उठाने की इस प्रवृत्ति का एक और प्रमाण मुसलमानों द्वारा गोहत्या के अधिकार और मस्जिदों के पास

बाबासाहेब ने इस प्रकार इस्लामी आक्रांताओं की क्रूरता का वर्णन करते हुए लिखा- कुतबुद्दीन ऐबक ने भी कहा जाता है लगभग एक हजार मंदिर गिराए और उनके स्थान पर मस्जिदें बनवाईं। उसने दिल्ली की जामा मस्जिद बनवाई और उस पर हाथियों द्वारा गिरवाए गए मंदिरों से प्राप्त पत्थर और सोना जड़वाया तथा उन पर (कुरान के) खुदाई फरमान खुदवाए।

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:16 PM Page 54

बाजे-गाजे की मनाही की मांग से मिलता है। धार्मिक उद्देश्य से गोबलि के लिए मुस्लिम कानूनों में कोई बल नहीं दिया गया है और जब वह मक्का और मदीना हज पर जाता है, गोबलि नहीं करता है। परंतु भारत में दूसरे किसी पशु की बलि देकर वे संतुष्ट नहीं होते हैं। तीसरी बात, मुसलमानों द्वारा राजनीति में अपराधियों के तौर-तरीके अपनाए जाते हैं। (पृ.269)

एकता के इन प्रयासों की विफलता के कारण क्या हैं? डॉ. बाबासाहेब कहते हैं- 'हिंदू-मुस्लिम एकता की विफलता की वास्तविक व्याख्या यह है कि इस बात को समझा ही नहीं गया है कि दोनों समुदायों के बीच की समस्या केवल मतभेद की दीवार खड़ी होना नहीं है और दोनों की शत्रुता के पीछे भौतिक कारण नहीं है। यह शत्रुता आध्यात्मिक स्वरूप की है। यह ऐसे कारणों से उत्पन्न हुई है, जिनकी जड़ें ऐतिहासिक, सांप्रदायिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विद्वेष में है तथा राजनीतिक विद्वेष जिनकी एक परछाई मात्र है। इन कारणों ने असंतोष की गहरी नदी का निर्माण किया है जो अपने उक्त स्रोतों से और भी जल प्राप्त करती हुई सदा उफनती रहती है और सामान्य प्रवाह से बाहर उमड़ती रहती है।

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने अपनी पुस्तक 'थॉट्स ऑन पाकिस्तान' में मुस्लिम राजनीति के सांप्रदायिक आधार का विस्तृत वर्णन किया है। इस वर्णन से मुस्लिम राजनीति के दो आयाम दृष्टि-गोचर होते हैं- आक्रामकता और अलगाववाद। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने कहा- 'सरसरी दृष्टि से देखने पर भी यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि मुसलमानों के प्रति हिन्दू मनोवृत्ति और हिन्दुओं के प्रति मुस्लिम मनोवृत्ति में एक मूलभूत आक्रामक भाव विद्यमान रहता है। हिन्दुओं का आक्रामक भाव एक नई प्रवृत्ति है जिसे उन्होंने हाल ही में विकसित करना प्रारंभ किया है। मुसलमानों की आक्रामक भावना उनकी जन्मजात पूंजी है और हिन्दुओं की तुलना में बहुत प्राचीन काल से उनके पास है। ऐसा नहीं है कि हिन्दू समय के साथ-साथ अधिक गति अपनाकर मुसलमान को इस योग्यता में पीछे नहीं छोड़ सकता, परंतु आज जैसी स्थिति है, मुसलमान इस आक्रामक भाव के प्रदर्शन में हिन्दू को बहुत पीछे छोड़े हुए हैं।'

> 1923 में कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए मुहम्मद अली ने गांधीजी के लिए महात्मा जैसे श्रद्धापूर्ण शब्दों का प्रयोग किया और उनकी तुलना ईसा मसीह से की। उसके एक वर्ष बाद अलीगढ़ और अजमेर में दी गई तकरीर में मुहम्मद अली ने कहा- 'गांधी जी का चरित्र कितना ही निर्मल क्यों न हो, मजहबी दृष्टि से वे मुझे किसी भी मुसलमान से, चाहे वह चरित्रहीन ही क्यों न हो, निम्न ही दिखेंगे।'

अधिक से अधिक राजनीतिक सुविधाएं प्राप्त करने की मुस्लिम इच्छा को तृप्त करना कितना कठिन है, इसका वर्णन डॉ. आंबेडकर ने इस प्रकार किया है- 'गोलमेज सम्मेलन में मुसलमानों ने जितनी मांगें रखीं और जो उनको दे दिया गया, उसे देखते हुए कोई भी यही सोचता कि मुस्लिम मांगें अपनी अंतिम सीमा प्राप्त कर चुकी हैं और 1932 का यह समझौता निर्णायक ही होगा। परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि मुसलमान इससे भी संतुष्ट नहीं हुए हैं। मुस्लिम हितों को सुरक्षित करने के लिए एक और नई सूची भी तैयार लगती है।

दूसरी समझने योग्य बात है, मुसलमानों में हिन्दुओं की दुर्बलताओं का अनुचित लाभ उठाने की भावना। यदि हिन्दू किसी बात पर आपत्ति करते हैं तो मुसलमान उसी बात पर आग्रह करने की नीति बनाने लगते हैं और यह आग्रह तभी छोड़ने को तैयार होते हैं जब हिन्दू उसके बदले किसी अन्य सुविधा के रूप में उसका मूल्य चुकाने को तैयार हो जाते हैं। (पृ.256)

तीसरी समझने योग्य बात है, मुसलमानों द्वारा राजनीति में हिंसक कार्य पद्धति अपनाना। हिंसक उपद्रव इस बात का पर्याप्त संकेत है कि गुंडागर्दी राजनीति में उनकी रणनीति का स्थायी भाग बन चुकी है। ऐसा लगता है कि वे सोचे-समझे ढंग से उन्हीं रीति-नीतियों का अनुकरण कर रहे हैं जो सुडेटन जर्मन लोगों ने चेक लोगों के विरुद्ध अपनाए थे। (पृ.256-60)

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर कहते हैं कि कांग्रेस ने मुसलमानों को राजनीतिक और अन्य रियायतें देकर उन्हें सहन करने और खुश रखने की नीति अपनाई है क्योंकि वे समझते हैं कि मुसलमानों के समर्थन के बिना वे अपने मनोवांछित लक्ष्य स्वतंत्रता को पा नहीं सकते। मुझे लगता है कि कांग्रेस ने दो बातें समझी नहीं हैं। पहली तो यह कि तुष्टीकरण और समझौते में अंतर होता है और यह एक महत्वपूर्ण अंतर है। तुष्टीकरण का अर्थ है एक आक्रामक व्यक्ति या समुदाय को मूल्य देकर अपनी ओर करना और यह मूल्य होता है उस आक्रमणकारी द्वारा निर्दोष लोगों की हत्या, बलात्कार, लूटपाट और आगजनी जैसे अत्याचारों को अनदेखा करना।

दूसरी बात, जो कांग्रेस समझ नहीं पाई है, यह है कि छूट देने की नीति ने मुस्लिम आक्रामकता को बढ़ावा दिया है और अधिक शोचनीय बात यह है कि मुसलमान इन रियायतों का अर्थ लगाते हैं हिन्दुओं की पराजित मानसिकता और सामना करने की इच्छाशक्ति का अभाव। तुष्टीकरण की यह नीति हिन्दुओं को उसी भयावह स्थिति में फंसा देगी जिसमें मित्र देश (द्वितीय विश्व युद्ध में ब्रिटेन, फ्रांस आदि) हिटलर के प्रति तुष्टीकरण की नीति अपना कर स्वयं को पाते थे। (पृ.260-1)

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर के एक साक्षात्कार का उल्लेख कर अपनी पुस्तक में लिखा है- 1924 में एक बांगला समाचार पत्र के संपादक ने कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर से एक साक्षात्कार किया। इस साक्षात्कार के वृत्त में लिखा है-

'कवि के विचार में एक अन्य बहुत महत्वपूर्ण कारण जो हिन्दू-मुस्लिम एकता को एक यथार्थ बनना असंभव किए हुए है, यह है कि मुसलमान अपनी राष्ट्रभक्ति किसी एक देश तक सीमित नहीं रख सकते। रवींद्रनाथ ने कहा कि उन्होंने कई मुसलमानों से स्पष्ट शब्दों में पूछा कि क्या किसी मुस्लिम देश द्वारा भारत पर आक्रमण होने पर वे हिन्दुओं के साथ मिलकर अपने साझे स्वदेश की रक्षा के लिए आगे आएंगे? वे उनके उत्तर से संतुष्ट नहीं हो पाए।' (पृ.266-6)

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर हिन्दुओं व मुसलमानों के बीच विद्यमान गहरे वैमनस्य से बहुत चिंतित रहते थे क्योंकि इसके कारण आए दिन सांप्रदायिक दंगे होते रहते थे। वे इस सांप्रदायिक वैमनस्य को दूर करना बहुत आवश्यक समझते थे ताकि लोग अपने बहुआयामी विकास के लिए परिश्रम करने के अवसर पा सकें। मगर उनका मन आशंकित था। उनकी मान्यता थी कि पाकिस्तान निर्माण से भी मुस्लिम मन संतुष्ट नहीं होगा।

डॉ. बाबासाहेब का स्पष्ट मत था कि पाकिस्तान निर्माण से भारत में सांप्रदायिक समस्या का हल नहीं होगा- जो भी हो, हिन्दुओं का संबंध इस प्रश्न से नहीं है। जिस प्रश्न से उनका संबंध है वह यह है कि किस सीमा तक भारत में सांप्रदायिक समस्या पाकिस्तान के बन जाने से दूर हो

पाएगी? यह बहुत उचित प्रश्न है और इस पर विचार होना ही चाहिए। यह मानना पड़ेगा कि पाकिस्तान बनने से भारत की सांप्रदायिक समस्या दूर नहीं हो पाएगी। जब कि सीमाओं के पुनर्निर्धारण से पाकिस्तान को जनता के स्वरूप की दृष्टि से एकरूप बनाया जा सकता है, हिन्दुस्थान तो मिश्रित देश ही रहेगा। हिन्दुस्थान में मुसलमान देश भर में फैले हुए हैं और यद्यपि उनका अधिकांश भाग नगरों-कस्बों में है, किसी भी प्रकार का सीमा पुनर्निर्धारण हिन्दुस्थान को एकरूप नहीं बना सकता। हिन्दुस्थान को एकरूप बनाने का एकमात्र उपाय है जनसंख्या का आदान-प्रदान। जब तक ऐसा नहीं होता, मानना पड़ेगा कि पाकिस्तान बनाकर भी हिन्दुस्थान में बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक की समस्या पहले जैसी ही बनी रहेगी और हिन्दुस्थान की राजनीति में टकराव पैदा करती रहेगी। (पृ. 102-4)

जो लोग जनसंख्या की अदला-बदली के विचार पर नाक-भौं चढ़ाते हैं, अच्छा होगा, वे तुर्की, ग्रीस और बल्गारिया के बीच उठी अल्पसंख्यकों की समस्या के इतिहास का अध्ययन करें। वे पाएंगे कि इन देशों ने समझ लिया था कि अल्पसंख्यकों की समस्या का प्रभावी समाधान जनसंख्या की अदला-बदली में ही है। इन तीन देशों ने जो बीड़ा उठाया वह कोई साधारण कार्य नहीं था। इस कार्य में उन्हें दो करोड़ लोगों को एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर बसाना था। परंतु बिना धैर्य खोये।

डॉ. बाबासाहेब की दृष्टि में सांप्रदायिक समस्या का समाधान तभी होगा जब भारत के सभी मुसलमान पाकिस्तान चले जाएं। बाबा साहेब ने कहा, मैं भारत का मुस्लिम, ऐसे दो भागों में बंटवारा पसंद करूंगा क्योंकि दोनों की सुरक्षा का सबसे निश्चित और निष्कंटक उपाय यही है। (पृ. 368)

पाकिस्तान बनाने की मुस्लिम मांग का हिन्दुओं ने व्यापक विरोध किया था। डॉ. आंबेडकर ने इस विषय के विभिन पार्श्वों और पक्षों का विस्तृत विश्लेषण किया और अपना निश्चित मत प्रस्तुत किया कि हिन्दुस्थान के करोड़ों हिन्दुओं के हित में यही होगा कि भारत का दो भागों में बंटवारा करके एक भाग मुस्लिम पाकिस्तान और दूसरा गैर मुस्लिम हिन्दुस्थान बना दिया जाए। उनके अनुसार पाकिस्तान बनाने की योजना लागू न होने की स्थिति में हिन्दुओं को दो गंभीर दुष्परिणाम भुगतने पड़ेंगे।

1. भारत की सुरक्षा संकट में रहेगी।
2. देश में सांप्रदायिक वैमनस्य की समस्या गंभीर बनी रहेगी।

डॉ. आंबेडकर ने प्रथम विश्व युद्ध के बाद भारतीय सेना की सांप्रदायिक मिश्रण युक्त संरचना के आंकड़ों का अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भारतीय सेना में मुसलमानों का अंश सर्वाधिक था और यह अनुपात स्वतंत्र अविभाजित भारत में भी बदल नहीं पाता। उन्होंने यह प्रश्न उठाया कि क्या भारतीय सेना के इस मुस्लिम भाग पर उस स्थिति में भारत की रक्षा करने का भरोसा किया जा सकता है, यदि इस पर कोई मुस्लिम देश- जैसे अफगानिस्तान आक्रमण कर दे?

डॉ. आंबेडकर ने लिखा, 'किसी देश की स्वतंत्रता की निर्णायक उसकी निष्कंटक सेना होती है- एक ऐसी सेना, जिस पर हर समय और हर संकट में देश की रक्षा हेतु लड़ने का भरोसा किया जा सकता है। यदि भारत पर विदेशी आक्रमण होता है तो क्या सेना के मुस्लिम भाग पर देश की रक्षा करने का विश्वास किया जा सकता है? मान लीजिए, आक्रमणकारी भी मुसलमान ही हैं, तो क्या मुसलमान आक्रमणकारियों का साथ देंगे या उनके विरुद्ध खड़े हो कर भारत की रक्षा करेंगे?'

'प्रश्न यह है कि क्या भारतवासी स्वतंत्र भारत की रक्षा कर पाएंगे? इसका उत्तर मैं फिर से कहता हूं, केवल एक ही है कि भारतवासी (अविभाजित) स्वतंत्र भारत की रक्षा केवल एक ही शर्त पर कर पाएंगे कि भारतीय सेना अराजनीतिक और पाकिस्तान के विषय में अछूती रहे। क्या सरकार सेना में सम्मिलित मुसलमानों पर विश्वास कर सकती है कि वे मुस्लिम विद्रोहियों पर गोली चला देंगे? यह भी इसी बात पर निर्भर है कि सेना में सम्मिलित मुसलमानों पर राष्ट्रवाद का कितना प्रभाव है। यदि उनमें इसका प्रभाव है तो भारत में निरापद और सुरक्षित सरकार बन नहीं पाएगी।' (पृ. 360-61)

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर दोनों विश्व युद्धों के बीच के काल में भारतीय सेना की मिश्रित सांप्रदायिक रचना के आंकड़ों का ब्यौरा ने प्रस्तुत किया। इस मिश्रण के भारत की सुरक्षा तैयारियों पर पड़ने वाले संभावित प्रभाव के बारे में उन्होंने निम्नलिखित विचार प्रस्तुत किए:

'इस सर्वेक्षण से दो सुस्पष्ट तथ्य सामने आते हैं। एक तो यह कि आज भी भारतीय सेना अपनी संरचना में मुस्लिम प्रधान है। दूसरा यह कि इन मुसलमान सैनिकों में भी सबसे अधिक पंजाब और उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रदेश के मुसलमान हैं। भारतीय सेना की इस संरचना का अर्थ यह है कि पंजाब और सीमांत प्रदेश के मुसलमान ही विदेशी आक्रमणों से भारत के मुख्य रक्षक बन गए हैं। यह तथ्य इतना स्पष्ट हो गया है कि इन क्षेत्रों के मुसलमानों को अंग्रेजों द्वारा किन्हीं भी कारणों से उन्हें प्रदान की गई इस गौरवपूर्ण स्थिति का पूरा आभास है क्योंकि वे प्रायः स्वयं को भारत के द्वारपाल कहते सुने जाते हैं। इसी महत्वपूर्ण तथ्य के प्रकाश में भारत की सुरक्षा की समस्या पर हिन्दुओं को विचार करना चाहिए।

यह भारत की स्वतंत्रता और स्वाधीनता पर निर्भर होगा कि हिन्दू किस सीमा तक इन द्वारपालों पर निर्भर रह सकते हैं? इसका उत्तर इस बात पर निर्भर होगा कि भारतीय सीमा-द्वारों को बल पूर्वक खोल कर घुसने का प्रयत्न करने वाला होगा कौन? स्पष्टतः भारत की उत्तर पश्चिमी सीमा से आक्रमण होने की संभावना दो ही देशों से हो सकती है, वे हैं- अफगानिस्तान और रूस, जिसकी सीमाएं वहां भारतीय सीमा का स्पर्श करती हैं। इनमें से भारत पर आक्रमण कौन करेगा और कब? निश्चय पूर्वक कहा नहीं जा सकता। किन्तु यदि आक्रमण रूस का हुआ तो आशा और निष्ठावान बने रहेंगे और आक्रमणकारी को बाहर ही रोकेंगे। परन्तु मान लीजिए, अफगानिस्तान अकेले या अन्य मुस्लिम देशों के साथ मिलकर भारत पर चढ़ाई कर देता है तो क्या ये द्वारपाल आक्रमणकारियों को बाहर रोकेंगे या सीमा द्वार खोलकर उन्हें भीतर आने देंगे? यह ऐसा प्रश्न है जिसकी उपेक्षा कोई भी हिन्दू नहीं कर सकता। इस प्रश्न के बारे में हिन्दू का आश्वस्त होना आवश्यक है क्योंकि यह बहुत ही निर्णायक प्रश्न है।

इन सब बातों को ध्यान में रखने पर इसमें संदेह नहीं रहेगा कि वह कोई बहुत साहसी हिन्दू होगा जो यह कहेगा कि भारत पर मुस्लिम देशों के किसी आक्रमण के समय सेना में सम्मिलित मुसलमान निष्ठावान बने रहेंगे और आक्रमणकारी के पक्ष में उनके चले जाने की कोई आशंका नहीं है।

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर का राष्ट्रवादी हृदय चाहता था कि हिन्दू समाज में सुधार हो, हिन्दू समाज एकात्म बने। वे हमेशा एक बात से दुखी रहे कि हिन्दू समाज जातपात के कारण असंगठित है। इसी कारण यह देश विदेशी आक्रांताओं का शिकार बना।

आज पूरा विश्व धार्मिक कट्टरवाद से परेशान है। भारत एक हजार वर्ष से इस कट्टरवाद को झेलता आया है। बाबासाहेब का एक-एक शब्द आज भी शत प्रतिशत उतना ही सच है। डॉ. बाबासाहेब ने हिन्दू-मुस्लिम समस्या की जड़ में जाकर ऐसा निष्कर्ष निकाला जो आज भी उपयोगी है। सेकुलरवाद की नकाब को बाबासाहेब ने बड़ी स्पष्टता से नकार दिया है। आंबेडकर का राष्ट्रवादी अंतःकरण कितना भारत भक्त होगा कि निर्भयता से ऐसे विचार व्यक्त कर सके। जिहादी मानसिकता और धार्मिक कट्टरवाद पूरी मानवजाति और विश्व के लिए जोखिम है। बाबासाहेब द्वारा लगभग 75 वर्ष पूर्व व्यक्त किए ये विचार पूरी मानव जाति के लिए उपयोगी हैं। ■

(लेखक *सामाजिक समरसता* के संपादक हैं)

वे जानते थे पसीने का मोल

» अनुपम

बाबासाहेब श्रमिक वर्ग के अधिकारों के लिए सतत संघर्षरत रहे। अगस्त 1936 में उन्होंने स्वतंत्र मजदूर दल नामक एक नया राजनीतिक दल स्थापित किया। बाबासाहेब ने कहा– मजदूरों की समस्या के बारे में मुझे सूक्ष्म जानकारी है।

किसी भी महापुरुष के प्रारंभिक जीवन की चुनौतियों, परिस्थितियों, समय एवं स्थान का प्रभाव उसके विचारों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। ऐसे कालखंड में जब भारत में मजदूर आंदोलन कुछ महत्वपूर्ण दौर में था उस समय बाबासाहेब ने श्रमिक वर्ग के अधिकारों तथा उनकी परिस्थितियों के प्रति उन्हें जागरूक किया एवं इसके लिए वे सतत संघर्षरत रहे।

1920 के दशक में भारत में कम्युनिस्ट मजदूर संगठनों का प्रभाव था। इन संगठनों ने बंबई के कपड़ा मिल मजदूरों का 1924, 1925, 1928 एवं 1929 में मिलों में हड़ताल के लिए आह्वान किया। 43 कपड़ा मिलों के लगभग 75,000 कर्मचारियों ने हड़ताल में हिस्सा लिया। इसके बाद दूसरे बड़े आंदोलन के तहत श्रमिकों ने अप्रैल 1934 में कपड़ा मिलों में हड़ताल की।

डॉ. आंबेडकर ने अपने 'बहिष्कृत भारत' तथा 'जनता' पत्रों के माध्यम से श्रमिकों को इन हड़तालों से दूरी बनाये रखने को कहा। क्योंकि यह राजनीति प्रेरित थी एवं श्रमिकों की आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति ऐसी नहीं है कि वे इन हड़तालों पर जाएं क्योंकि इससे उन्हें तुरंत भुखमरी का सामना करना पड़ता है। सो, कम्युनिस्टों ने डॉ. आंबेडकर को मजूदरों का शत्रु घोषित कर दिया था।

स्वतंत्र मजदूर दल : 1937 के प्रारंभ में भारत सरकार के 1935 के कानून के अनुसार प्रांतों को स्वायत्तता मिलने और नया राज्य शासन शुरू होने की संभावना से हर दल चुनाव लड़ने की तैयारी में था। डॉ. आंबेडकर ने भी सहयोगियों से विचार कर अगस्त 1936 में स्वतंत्र मजदूर दल स्थापित किया। उन्होंने उसका घोषणा पत्र भी जारी किया जिसमें आश्वासन दिया गया कि - श्रमिकों के लिए कानून बनाना, नौकरियां देना, पदच्युत करना, कारखानों में बढ़ती देना, काम के अधिकतम घंटे व वेतन श्रेणी अर्जित छुट्टी देना, सस्ते और आरोग्यदायी आवासों की व्यवस्था इत्यादि के बारे में कानून बनाए जाएंगे।

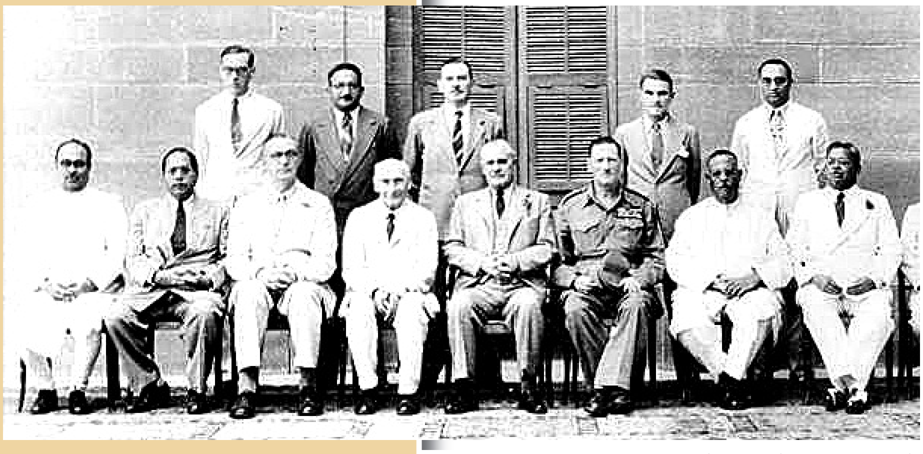

जुलाई, 1942, वायसराय लॉर्ड वावेल्स की कार्यकारी परिषद में श्रम मंत्री के रूप में अपने साथियों के साथ बाबासाहेब। (अग्रिम पंक्ति में बाएं से दूसरे)

रेलवे मजदूरों का संगठन : 12 फरवरी, 1938 को मनमाड में अस्पृश्य रेलवे मजदूरों की एक परिषद में 20,000 मजदूरों की उपस्थिति में बाबासाहेब ने कहा- किशोरावस्था में मैंने अपने रिश्तेदारों को खाने के डिब्बे पहुंचाने का काम किया था मजदूरों की समस्या के बारे में मुझे सूक्ष्म जानकारी है। उन्होंने कहा, 'आजतक हम अस्पृश्य या दलित के रूप में इकट्ठे होते थे। लेकिन आज हम मजदूर के रूप में इकट्ठा हुए हैं। कहा जाता है कि मैं मजदूरों का दुश्मन हूं। वास्तव में ब्राह्मणशाही और पूंजीवाद ही मजदूरों का दुश्मन हैं। स्वतंत्रता, समता और बंधुभाव का अभाव यानी ब्राह्मणशाही।'

अस्पृश्य मजदूरों की समस्या : डॉ. साहेब कहते हैं कि ऐसी अनेक नौकरियां होती हैं जहां अस्पृश्यता के कारण अस्पृश्य मजदूरों को उनसे अलग किया जाता है। कपड़ा मिलों में कुछ विभागों में अस्पृश्य मजदूर नहीं लिए जाते। रेलवे में तो गैंग-मैन की नौकरी में ही सड़ते रहना उनकी तकदीर है। इतना ही नहीं उन्हें कुली भी नियुक्त नहीं किया जाता। अस्पृश्य मजदूरों को सबसे कम मजदुरी पर रखा जाता है, कोई उन्नति नहीं होती। किन्तु जैसे ही मंदी आती है, उनको सबसे पहले निकाला जाता है और जब मांग बढ़ती है तब सबसे अंत में रोजगार मिलता है। (डॉ. आंबेडकर और सामाजिक क्रांति की यात्रा, पृष्ठ 253)

कार्लमार्क्स का सिद्धांत भारत में अनुपयुक्त : बाबासाहेब बताते हैं जिस प्रकार कार्लमार्क्स ने समाज को मालिक तथा मजदूर के नाम से दो वर्गों में बांटा था, भारतीय परिस्थितियों में यह नितांत गलत है। इस तरह का विभाजन भारत में नहीं हो सकता। सभी मजदूरों को मिला कर एक वर्ग समूह बन जाता है, वह यहां संभव नहीं है। हम सभी मजदूरों का मिलाकर एक संगठित समूह यहां कैसे बना सकते हैं? मजदूरों के अंदर एक सामूहिक एकता लाने के लिए उनको यह समझाना होगा कि उनके आपस की जो सामाजिक दूरियां और अशुद्ध भेदभाव हैं, वे दूर होने चाहिए। मैंने किसी भी श्रमिक नेता को इस सामाजिक भेदभाव के विरोध में बोलते हुए नहीं देखा। कम्युनिस्टों द्वारा चलाए गए मजदूर आंदोलन के बारे में उन्होंने कहा, 'मेरा कम्युनिस्टों से संबंध रखना बिल्कुल संभव नहीं है। मैं कम्युनिस्टों का कट्टर दुश्मन हूं।' उनका ठोस मत था कि कम्युनिस्ट राजनीतिक ध्येय सिद्धि के लिए

मजदूरों का शोषण करते हैं।

(बाबासाहेब आंबेडकर : जीवन चरित, पेज संख्या 282)

कांग्रेस के साथ मत भिन्नता : 16 मई, 1938 को चिपलूण की सभा में उन्होंने कहा कि गांधी की मोहिनी विद्या मुझ पर प्रभाव नहीं डाल सकी। जवाहर लाल नेहरू और सुभाषचंद्र बोस गांधी की शरण में गये लेकिन मैं गांधी की शरण में कभी नहीं जाऊंगा। अगर किसी समय कांग्रेस में गया तो खुद की गुणवत्ता से वहां भी प्रभाव डालूंगा।

पिछले दस मास से मेरा खोती उन्मूलन विधेयक कांग्रेस ने जान-बूझकर पीछे छोड़ रखा है। इसी दरम्यान मध्य प्रांत के कांग्रेस के बड़े नेताओं में डॉ. ना.भा. खरे को जबरदस्ती उपद्रवी ठहराकर खारिज कर दिया गया। डॉ. खरे को एक हरिजन मंत्री के बतौर लेने के संदर्भ में गांधीजी का विरोध था। जबकि गांधीजी ने डॉ. खरे के साथ मध्य प्रांत में हरिजन कार्य के लिए दौरा किया फिर भी गांधीजी ने डॉ. खरे को हरिजन मंत्री के रूप में लेने का कड़ा विरोध किया। सर्वेंट ऑफ इंडिया सोसायटी में आयोजित सभा की अध्यक्षता करते हुए डॉ. खरे ने कहा- 'बहुमत के कारण राज्य शासन चलाने वाला दल भ्रष्ट बनता है। अपरिमित बहुमत से यह पूरी तरह समाप्त हो जाता है।' इस राजनीतिक सूक्ति की उन्होंने सभी को याद दिलाई।

औद्योगिक कलह विधेयक 1938 : 15 सितंबर, 1938 को बंबई विधानसभा में यह विधेयक प्रस्तुत किया गया जिसका विरोध करते हुए डॉ. आंबेडकर ने कहा कि यह नया कानून मजदूरों द्वारा की जाने वाली हड़तालों को गैर कानूनी बताकर प्रतिबंध लगा देगा, यह उचित तरीका नहीं होगा।

यह विधेयक श्रमिकों के मौलिक अधिकारों का हनन करेगा और यह असंवैधानिक है। डॉ. आंबेडकर जी ने उस समय की अन्य मजदूर यूनियनों के साथ मिलकर संघर्ष कर हड़ताल की और सफलता प्राप्त की।

इस कार्य के लिए उन्होंने कम्युनिस्टों की शक्ति को भी साथ लेकर मजदूरों का हड़ताल के लिए आह्वान किया। लेकिन कांग्रेस मंत्रिमंडल ने ठान लिया था कि यह विधेयक किसी भी हालत में मंजूर करा लेना है, और उन्होंने विधानसभा से उसे मंजूर करा ही लिया। कांग्रेस की इस दुराग्रही वृति का मजदूर संघों ने 'काला कानून' कहकर विरोध किया।

7 नवंबर, 1938 को स्वतंत्र मजदूर दल और मिल मजदूर यूनियन एवं अन्य 60 विभिन्न मजदूर संघों ने मिलकर हड़ताल का शंखनाद किया।

हड़ताल के एक दिन पहले सायंकाल लगभग 80,000 मजदूरों की एक प्रचंड सभा मजदूर मैदान, बंबई में हुई। उसकी नियंत्रण समिति में जमनादास अध्यक्ष व डॉ. आंबेडकर, डांगे, निमकर मिरजकर और प्रधान इस समिति के सदस्य चुने गए। 90 प्रतिशत स्वयंसेवक आंबेडकर के स्वतंत्र मजदूर दल के ही थे। 7 नवंबर की हड़ताल का महत्व इतना बढ़ गया कि संयुक्त प्रांत (अब उत्तर प्रदेश) के विख्यात किसान नेता स्वामी सहजानंद डॉ. आंबेडकर से बंबई में उनके निवास स्थान पर मिलने आए। उन्होंने उनसे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ एकता के लिए कांग्रेस के साथ मिलने का आग्रह किया।

डॉ. आंबेडकर ने कहा- कांग्रेस ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ युद्ध पुकारा होता, तो मैं उस दल से मिल जाता, लेकिन यथार्थ में ऐसा नहीं है। कांग्रेस दल अपने हाथ में आए संविधानात्मक शासनतंत्र को पूंजीवादी और निरंतर स्वार्थ में लिप्त लोगों के कल्याण के लिए ही कार्यान्वित कर रहा है। उसने किसान और मजदूर के कल्याण की बलि दे दी है। इस तरह की संगठनों में मैं शामिल नहीं हो सकता।

संविधान निर्माता के पूर्व श्रम मंत्री : बाबासाहेब आंबेडकर 1942-1946 के काल में वायसराय की काउंसिल में श्रम मंत्री के रूप में कार्य करते रहे।

इस सीमित कालखंड में बाबासाहेब ने दलित श्रमिक वर्ग के कल्याण हेतु अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया।

श्रम मंत्री के रूप में उन्होंने मजदूर तथा मालिकों को मिलाकर औद्योगिक क्षेत्र के लिए नई-नई नीतियां स्थापित कीं। इनमें से प्रमुख हैं-

उद्गार/अंश

...मुझे इसमें कोई संदेह नहीं कि संसदीय लोकतंत्र को बर्बाद करने के पीछे अनुबंध या ठेके की स्वतंत्रता की अवधारणा है। स्वतंत्रता के नाम पर इसे स्वीकार किया गया। संसदीय लोकतंत्र ने आर्थिक असमानताओं पर गौर नहीं किया और न ही यह विचार कि अनुबंध की आजादी से ताकतवर को कमजोरों के साथ छल करने का मौका मिल जाएगा।...

— **अ.भा. मजदूर संगठन शिविर में दिया भाषण,** दिल्ली, सितंबर, 1943

1. मजदूरों की सामाजिक सुरक्षा हेतु नीतियां
2. श्रम नीति के नियमों को लेकर श्रमिकों एवं उद्योग मालिकों के मध्य विचार विनिमय की योजनाएं।
3. श्रम कानूनों को ठीक प्रकार से तैयार करके उनको उचित ढंग से लागू करना। मजदूर तथा मालिक के झगड़ों को ठीक प्रकार से निपटाने का प्रयास।

बाबासाहेब चाहते थे कि सरकार की श्रम नीति निश्चित करने में मजदूरों का सहभाग होना चाहिए। श्रम मंत्री के रूप में उनके कार्यकाल (1942-46) में चार त्रिपक्षीय सम्मेलन हुए।

इन सम्मेलनों में मजदूरों के जीवनस्तर को उठाने के लिए इन सुविधाओं पर विचार-विमर्श किया गया:-

1. मजदूरों का न्यूनतम वेतन
2. काम के घंटे फैक्ट्री एक्ट के अनुसार
3. मजदूरों की भविष्य निधि
4. अधिक समय तक कार्य के बदले अतिरिक्त समय की व्यवस्था
5. सस्ते मूल्य के अनाज की व्यवस्था
6. कारखानों में जलपान गृह
7. विश्राम आदि की सुविधाएं

अपने इन न्यूनतम पांच वर्षों के कार्यकाल में उन्होंने मजदूरों के हित में 25 कानूनों का क्रियान्वयन करवाया। उन्हीं के प्रयासों से मुख्य श्रम आयुक्त, प्रदेश श्रमायुक्त, श्रम निरीक्षक की नियुक्तियां प्रारंभ हुई।

श्रम मंत्री के नाते बाबासाहेब ने जो कार्य किया, दुर्भाग्य से उसका योग्य मूल्यांकन नहीं हो सका। महिलाओं के लिए भी उन्होंने अनेक सुविधाएं यथा मातृत्व अवकाश के रूप में अवकाश देने का प्रावधान रखा। बाबासाहेब ने 1928 के मेटरनिटी वेनिफिट बिल के पक्ष में विचार रखे।

आज भी बाबासाहेब के विचार व कार्य मजदूरों के बीच में तथा पूरे संगठित क्षेत्र एवं असंगठित क्षेत्र में सभी के लिए प्रासंगिक हैं। उस परिप्रेक्ष्य में हम आज की परिस्थितियों से कैसा तादात्म्य बैठा सकते हैं, यह विचार का विषय है। ■

(लेखक भारतीय मजदूर संघ के उ.प्र. संगठन मंत्री हैं)

डॉ. आंबेडकर कश्मीर पर नेहरू की नीति से बहुत विचलित थे। वे कहते थे कि कश्मीर पर शूद्र वंश का राज्य था, इसलिए कश्मीर शूद्रों के लिए महत्वपूर्ण है। लेकिन दुर्भाग्य से उसी कश्मीर पर नेहरू की नीति शेख अब्दुल्ला के तुष्टीकरण पर टिकी थी।

सीमा प्रहरी बाबासाहेब

डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री

जम्मू-कश्मीर आज फिर देश की राजनीति के केन्द्र बिन्दु में है और इसी कारण जम्मू-कश्मीर को लेकर भीमराव आंबेडकर के विचारों पर आज फिर चर्चा आरम्भ हो गई है। इस विषय पर पं. नेहरू, डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी, सरदार पटेल, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के विचार महत्वपूर्ण हैं। इसके साथ महाराजा हरि सिंह और शेख अब्दुल्ला के विचार भी महत्वपूर्ण हैं। जिन्ना के भी इस विषय पर निश्चित विचार थे। जम्मू-कश्मीर की सारी चर्चा मुख्य तौर पर इन लोगों के इर्द-गिर्द ही होती है। इस सबके बीच डॉ. आंबेडकर के जम्मू-कश्मीर को लेकर विचार अति महत्वपूर्ण हैं। सबसे पहले विवाद की पृष्ठभूमि।

जम्मू-कश्मीर विवाद शुरू होने का मुख्य कारण यह था कि पंडित नेहरू इस रियासत को दूसरी रियासतों से अलग मानते थे। अलग मानने का उनका कारण यह था कि इस रियासत में मुसलमानों की संख्या हिन्दू-सिक्खों, गुज्जरों, शियाओं और जनजातियों से ज्यादा थी। नेहरू इसे हिन्दू और मुसलमान के अनुपात के हिसाब से देखते थे। जबकि डॉ. भीमराव आंबेडकर मानते थे कि कांग्रेस की यह दृष्टि दूषित है और इसी के चलते कांग्रेस मुसलमानों का तुष्टीकरण करते-करते देश विभाजन तक पहुंच गई। कांग्रेस और नेहरू की

शुरू से ही यह राय थी कि भारतीय रियासतों के लोगों की राय जान लेनी चाहिए कि वे वहां लोकतांत्रिक सरकार चाहते हैं या फिर परम्परागत राजशाही? नेहरू ने बाद में जम्मू-कश्मीर के महाराजा को एक पत्र भी लिखा जिसमें लोकमत की यह नीति स्पष्ट की गई थी लेकिन साथ ही यह भी लिखा कि अन्य रियासतों का अधिमिलन का प्रस्ताव इसलिए बिना किसी विवाद के स्वीकार कर लिया गया है क्योंकि वहां के लोगों की राय कमोबेश ज्ञात ही थी। लेकिन जम्मू-कश्मीर के मामले में ऐसा नहीं था। इसलिए भारत सरकार ने जम्मू-कश्मीर के लोगों से वायदा किया है कि अधिमिलन को लेकर उनकी राय जानी जाएगी और इसी के आधार पर कोई अन्तिम निर्णय लिया जाएगा।

नेहरू का यह पत्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इससे उनकी भीतरी सोच स्पष्ट होती है। बाकी जो रियासतें देश की नई संघीय सांविधानिक व्यवस्था में शामिल हुई थीं, उनमें से किसी में भी जनता की राय नहीं ली गई थी। फिर नेहरू ने कैसे कहा कि उन सभी रियासतों के लोगों की राय का पता ही था? आखिर बिना मतदान करवाए नेहरू को लोगों की राय का पता कैसे चल गया? उसका यही उत्तर है कि चूंकि इन सभी रियासतों में रहने वाले लोग हिन्दू थे, इसलिए नेहरू ने स्वाभाविक ही मान लिया कि हिन्दू तो भारत की संघीय सांविधानिक व्यवस्था में ही शामिल होगा। फिर जम्मू-कश्मीर के मामले में नेहरू ऐसा क्यों नहीं मानते थे ? क्योंकि जम्मू-कश्मीर में मुसलमानों का बहुमत था। इसका मतलब नेहरू मान कर चल रहे थे कि मुसलमान सामान्यतः हिन्दुस्थान में शामिल होने के लिए तैयार नहीं हैं।

हूबहू यही सोच मुहम्मद अली जिन्ना की थी। वे भी मान कर चलते थे कि मुसलमान हिन्दुस्थान में नहीं रह सकते। इसीलिए उन्हें पाकिस्तान नाम से अलग देश चाहिए था। मोटे तौर पर नेहरू और जिन्ना दोनों ही हिन्दू- मुसलमान के प्रश्न पर एक ही तरीके से सोच रहे थे। पर अपनी सोच में दोनों ही गलत थे। जिन इलाकों में मुसलमान बहुमत में थे, वे तो हिन्दुस्थान से बिल्कुल ही अलग नहीं होना चाहते थे। यही कारण था कि जब मुस्लिम लीग पाकिस्तान बनाने की मांग को लेकर चुनाव लड़ रही थी तो वह मुस्लिम बहुल क्षेत्रों खैबर पख्तूनख्वा और पंजाब दोनों ही जगह पराजित हुई और वहां कांग्रेस जीती थी, जो पाकिस्तान बनाने का विरोध कर रही थी। यदि ये दोनों मुस्लिम बहुल इलाके पाकिस्तान विरोधी थे तो जम्मू-कश्मीर के मुसलमान

सौजन्य : नव वर्ष मंगलमय हो – टी.एन. गोयल, चंडीगढ़

पाकिस्तान में जाने के समर्थक कैसे हो सकते थे? नेहरू को जैसे अन्य रियासतों के लोकमत का स्वाभाविक ही पता चल गया तो वह सूत्र तो जम्मू-कश्मीर पर और आसानी से लागू होता था। नेहरू ऊपर से अपनी छवि चाहे जैसी बनाकर रखते हों, भीतर वे यही मान कर चलते थे कि आम मुसलमान पाकिस्तान के साथ है। लेकिन उनकी यह इच्छा थी कि जम्मू-कश्मीर हिन्दुस्थान का हिस्सा बने। इसमें कोई दिक्कत नहीं थी। महाराजा हरि सिंह कश्मीर के शासक थे और वैधानिक दृष्टि से निर्णय लेने के अधिकारी थे, वे भी भारत में ही रहने के इच्छुक थे और कश्मीर घाटी के लोग भी पाकिस्तान में जाने के बिल्कुल पक्ष में नहीं थे। लेकिन नेहरू अपनी उसी साम्प्रदायिक सोच के कारण यह मान कर चल रहे थे कि वे मुसलमान होने के कारण पाकिस्तान जाने के इच्छुक हैं। ऐसी मानसिक अवस्था में उन्हें कोई ऐसा मुसलमान चाहिए था जो उन्हें विश्वास दिला दे कि कश्मीर घाटी के लोग हिन्दुस्थान में रहने के इच्छुक हैं। यदि कोई ऐसा मुसलमान उन्हें मिल जाता तो उसे वे मुंहमांगा इनाम देने के लिए तैयार थे।

इस हालत में उन्हें शेख अब्दुल्ला मिल गए। शेख अब्दुल्ला ने उन्हें विश्वास दिलाया कि वे कश्मीर घाटी के मुसलमानों को हिन्दुस्थान में ही रहने के लिए तैयार कर सकते हैं। नेहरू ने शेख अब्दुल्ला को आगे करके नीति और निर्णय दोनों क्षेत्रों में काम शुरू कर दिया और शेख अब्दुल्ला ने इसकी मुंहमांगी कीमत मांगनी और लेनी शुरू कर दी।

नेहरू यह भूल गए कि कश्मीर घाटी के लोग भारत में रहने के लिए तैयार थे, इसका कारण शेख अब्दुल्ला नहीं थे बल्कि इसका कारण कश्मीर घाटी का इतिहास और वहां के लोगों का मनोविज्ञान था। जम्मू-कश्मीर रियासत के भारतीय सांविधानिक व्यवस्था में अधिमिलन के लिए प्रयास तो सितम्बर से महाराजा हरि सिंह भी कर रहे थे। लेकिन नेहरू उनके हाथों यह अधिमिलन स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। क्योंकि उनको तो शेख अब्दुल्ला के हाथों अधिमिलन का प्रस्ताव चाहिए था ताकि वे यह सिद्ध कर सकें कि एक मुसलमान नेता, मुस्लिम बहुल रियासत को, मुस्लिम राज्य पाकिस्तान को छोड़ कर हिन्दुस्थान में अधिमिलन के लिए प्रस्ताव कर रहा है। नेहरू इसे अपने व्यक्तित्व का मुसलमानों पर प्रभाव समझ रहे थे और इस चमत्कार को इस प्रभाव का परिणाम मान रहे थे। यदि महाराजा हरि सिंह के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया जाता तो यह चमत्कार नहीं कहला सकता था। फिर यही कहा जाता कि एक हिन्दू राजा भारत छोड़ कर कहां जाता? नेहरू राजनीति के मैदान में जिन्ना से बुरी तरह पराजित हो गए थे लेकिन अब शेख अब्दुल्ला के माध्यम से कश्मीर के अधिमिलन का प्रस्ताव स्वीकार करके सिद्धान्त के स्तर पर उसे पराजित करना चाह रहे थे। शेख अपनी इस भूमिका के लिए कीमत वसूलते जा रहे थे। नेहरू के इस प्रयोग के कारण पूरा जम्मू-कश्मीर ही खतरे में पड़ गया था। लेकिन नेहरू जम्मू-कश्मीर में भी मुसलमानों के तुष्टीकरण की पुरानी नीति पर चल पड़े थे।

आंबेडकर जम्मू-कश्मीर के लिए संघीय संविधान में अनुच्छेद 370 के प्रावधान के पक्ष में नहीं थे। जब नेहरू के सुझाव पर शेख अब्दुल्ला आंबेडकर के पास गए ताकि उन्हें अनुच्छेद के लिए सहमत कर सकें तो उन्होंने शेख को उलटे पांव लौटा दिया। आंबेडकर ने कहा कि मैं विधि मंत्री भारत का हूं। मैं उसके राष्ट्रीय हितों से विश्वासघात नहीं करूंगा। संविधान सभा में यह प्रस्ताव गोपालस्वामी आयंगर को रखना पड़ा था।

केन्द्रीय मंत्रिमंडल से त्यागपत्र देने के बाद अक्तूबर में आंबेडकर ने त्यागपत्र के कारणों को लेकर जो वक्तव्य दिया, उसमें नेहरू की इस कश्मीर नीति पर ही सवाल उठाए गए हैं। आंबेडकर ने अपने लम्बे वक्तव्य में लिखा कि प्रधानमंत्री का सारा समय और ध्यान केवल मुसलमानों की सुरक्षा पर जाता है। मैं इसके विरुद्ध नहीं हूं। परन्तु क्या हिन्दुस्थान में केवल मुसलमान ही बचे हैं जिन्हें सुरक्षा की जरूरत है? अनुसूचित जाति-जनजाति के लोगों का क्या होगा? इनको मुसलमानों से भी ज्यादा सुरक्षा चाहिए। आंबेडकर की भाषा चाहे नर्म है लेकिन वेदना पुरानी है, जब उन्होंने महात्मा गांधी से कहा था कि आप मुसलमानों को तो कोरे चैक पर हस्ताक्षर करके सब कुछ देने के लिए तैयार हो, लेकिन दलित समाज के लिए हाथ क्यों खींच लेते हैं? लेकिन इस बार आंबेडकर यह प्रश्न इसलिए उठा रहे थे क्योंकि उनको लगता था कि नेहरू जम्मू-कश्मीर में तुष्टीकरण की नीति का खेल- खेल रहे थे।

नेहरू अपने आदर्शवाद में जम्मू-कश्मीर के प्रश्न को संयुक्त राष्ट्र संघ ले गए थे। आंबेडकर इसके भी पक्ष में नहीं थे। भारत का पक्ष न्यायपूर्ण होते हुए भी एक भी देश संयुक्त राष्ट्र में भारत के पक्ष में खड़ा नहीं हुआ। भारत की विदेश नीति, जिसके जनक स्वयं नेहरू थे, संयुक्त राष्ट्र में अपनी असफलता पर रो रही थी। आंबेडकर अपने वक्तव्य में कहते हैं,'जिसने मुझे केवल असन्तोष ही नहीं बल्कि सचमुच चिन्ता में डाल दिया है, वह देश की विदेश नीति है। ... सभी देशों की नीति में भारत को लेकर अचानक परिवर्तन हुआ है। 15 अगस्त, 1947 को जब हमने आजाद देश के तौर पर अपनी यात्रा प्रारम्भ की थी तो सभी देशों की सद्भावना हमारे साथ थी। दुनिया का हर देश हमारा मित्र था। आज केवल चार साल के बाद ही हमारे सभी मित्र हमें छोड़ गए हैं। ... संयुक्त राष्ट्र संघ में हमारे प्रस्तावों का समर्थन करने वाला एक भी देश नहीं है। ... मुझे बिस्मार्क और बर्नाड शॉ के शब्द ध्यान में आते हैं। बिस्मार्क ने कहा था कि राजनीति आदर्श स्थिति की प्राप्ति का खेल नहीं है बल्कि वह संभावनाओं की प्राप्ति का खेल है। ... बर्नाड शॉ ने कहा था कि अच्छे आदर्शों की सराहना की जानी चाहिए लेकिन यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि कभी-कभी बहुत अच्छा बनना भी बहुत खतरनाक सिद्ध होता है। हमारी विदेश नीति विश्व की इन दो महान विभूतियों की नसीहत के बिल्कुल विपरीत है।' जाहिर है कि बाबासाहेब जिस विदेश नीति की विफलता पर चिंता प्रकट कर रहे हैं, वह जम्मू-कश्मीर के प्रश्न को लेकर ही है।

आंबेडकर ने अपने वक्तव्य में लिखा, 'पाकिस्तान से हमारी लड़ाई हमारी विदेश नीति का ही हिस्सा है, जिससे मैं पूरी तरह असन्तुष्ट हूं। पाकिस्तान के साथ हमारे खराब रिश्तों के दो मुख्य कारण हैं। पहला कश्मीर और दूसरा पूर्वी बंगाल में हमारे लोगों की दयनीय स्थिति।' आंबेडकर कहते हैं कि भारत सरकार कश्मीर के मामले को वरीयता दे रही है, जबकि उसे वरीयता पूर्वी बंगाल के मसले को देनी चाहिए। समाचार

> नेहरू मानकर चलते थे कि मुस्लिम बहुल होने के कारण जम्मू-कश्मीर के लोग भारत में शामिल नहीं होना चाहेंगे। डॉ. आंबेडकर की चिंता यह थी कि अगर नेहरू की जिद के कारण जम्मू-कश्मीर में जनमत संग्रह हुआ और उसका परिणाम पाकिस्तान के पक्ष में गया, तो जम्मू और लद्दाख को भी उन्हीं अत्याचारों का सामना करना पड़ेगा, जो पूर्वी पाकिस्तान (अब बंगलादेश) में हिन्दुओं पर हो रहे थे।

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:17 PM Page 60

पत्रों में जो खबरें छप रही हैं, उनके अनुसार पूर्वी बंगाल में हमारे लोगों की स्थिति कश्मीर से भी ज्यादा असहनीय होती जा रही है। पूर्वी बंगाल में हिन्दुओं की स्थिति पर चिन्ता के बाद वे कश्मीर की ओर आते हैं। कश्मीर पर उनके बयान को निम्न खंडों में विभाजित किया जा सकता है-

'कश्मीर में विवाद का मुख्य मुद्दा, कौन गलत है और कौन ठीक है, इसी को लेकर है। लेकिन मेरे विचार में मुख्य प्रश्न यह नहीं है कि कौन ठीक है। मुख्य प्रश्न है कि क्या ठीक है? यदि यह सिद्धान्त मान लिया जाए कि क्या ठीक है, तो मेरी राय में, कश्मीर का विभाजन ही ठीक है। जैसे हमने हिन्दू और मुसलमान के आधार पर देश को ही बांट लिया है, उसी के आधार पर हिन्दू-बौद्ध हिस्से भारत में रहें और मुस्लिम हिस्से पाकिस्तान में चले जाएं। हमें कश्मीर के मुस्लिम हिस्से की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। यह कश्मीर के मुसलमानों और पाकिस्तान के बीच का मामला है। यदि आपको ठीक लगता है, तो पूरा क्षेत्र तीन हिस्सों में बांटा जा सकता है। युद्ध विराम जोन, कश्मीर घाटी और जम्मू-लद्दाख जोन। इसमें से भी जनमत संग्रह केवल कश्मीर घाटी में ही करवाया जाना चाहिए। मुझे सबसे ज्यादा डर इस बात का है कि प्रस्तावित जनमत संग्रह में तो, जो समग्र जनमत संग्रह बन जाता है, हिन्दुओं और बौद्धों को बिना उनकी इच्छा के बलपूर्वक पाकिस्तान में धकेल देना ही माना जा सकता है। इससे हमें कश्मीर में भी उन्हीं समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है जिनका हम इतने अरसे से पूर्वी बंगाल में सामना कर रहे थे।'

आंबेडकर के उपरोक्त बयान के अनुसार- जम्मू और लद्दाख को छोड़ कर केवल कश्मीर घाटी में जनमत संग्रह करवाना चाहिए। कश्मीर के विभाजन का भी सुझाव है। लेकिन इस सुझाव के पीछे कारण क्या है? आंबेडकर को डर था कि यदि सारे जम्मू-कश्मीर में जनमत संग्रह करवाया जाता है तो उसका परिणाम पाकिस्तान के पक्ष में जा सकता है, और इससे सारा जम्मू-कश्मीर ही पाकिस्तान को देना पड़ेगा। इससे राज्य के हिन्दुओं और बौद्धों की हालत पूर्वी बंगाल के हिन्दुओं से भी बदतर हो जाएगी।

नेहरू की कश्मीर नीति के चलते लगभग सभी को यही डर था। जम्मू-कश्मीर के एक राजनैतिक दल प्रजा परिषद ने इन्हीं आशंकाओं के चलते पूरे राज्य में आन्दोलन छेड़ रखा था। डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी तक इन आशंकाओं से चिन्तित थे। यह चिन्ता इसलिए भी बढ़ गई थी कि भारत के गवर्नर जनरल लार्ड माउंटबेटन खुद किसी भी कीमत पर जम्मू-कश्मीर पाकिस्तान को देने के षड्यंत्र रचते रहते थे। माउंटबेटन परिवार से नेहरू की पारिवारिक मित्रता के चलते सदा खतरा बना रहता था कि रियासत में कुछ भी हो सकता है। वैसे भी पंजाब और बंगाल पूरा का पूरा पाकिस्तान में जाए, यही ब्रिटिश नीति थी। यह तो मास्टर तारा सिंह और डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी को श्रेय जाता है कि उन्होंने पंजाब और बंगाल को पाकिस्तान में जाने से बचाने के लिए उन्हें विभाजित करवाया और आधा-आधा प्रान्त भारत में ही बना रह सका। डॉ. आंबेडकर पंजाब-बंगाल की तर्ज पर जम्मू-कश्मीर का भी विभाजन करवा कर उसके बौद्ध और हिन्दू हिस्से बचा लेना चाहते थे।

साधारण परिस्थितियों में महाराजा हरि सिंह द्वारा रियासत को वैधानिक तरीके से देश की नई सांविधानिक व्यवस्था में शामिल किए जाने के पश्चात् जम्मू-कश्मीर का प्रश्न खत्म हो जाना चाहिए था। क्योंकि कानून के अनुसार यह अधिकार महाराजा हरि सिंह के पास ही था। लेकिन दुर्भाग्य से पंडित नेहरू ने इस स्पष्ट स्थिति के बाद भी जम्मू-कश्मीर मसले को उलझा नहीं दिया था बल्कि उस पर निर्णय लेने का अधिकार भी संयुक्त राष्ट्र संघ में शीत युद्ध लड़ रही शक्तियों के हाथ में दे दिया था। जनमत संग्रह की अवधारणा तो संघीय संविधान की आधारभूत भावना के ही विपरीत थी। नेहरू देश में घूम-घूम कर घोषणा कर रहे थे कि यदि जनमत संग्रह का परिणाम विपरीत गया तो जम्मू-कश्मीर भारत में नहीं रहेगा। इस कारण डॉ. आंबेडकर ही नहीं, अनेक अन्य राष्ट्रभक्त नेताओं के मन में जम्मू-कश्मीर के भविष्य को लेकर, खास कर वहां के हिन्दू-सिक्ख, बौद्ध, गुज्जर, शिया इत्यादि के भविष्य को लेकर चिन्ता होने लगी थी। उस हालात में रियासत के विभाजन का सुझाव देकर आंबेडकर अपनी यथार्थ चिन्ताओं को ही अभिव्यक्त कर रहे थे।

उन दिनों अपने भाषणों में आंबेडकर बार-बार कहा करते थे कि यदि हम पूरे कश्मीर को नहीं बचा सकते तो कम से कम हम अपने बंधु-बांधवों को तो बचा लें। जम्मू व लद्दाख को वे बंधु-बांधव ही मानते थे। बाबासाहेब कहा करते थे कि कश्मीर पर शूद्र वंश का राज्य था, इसलिए कश्मीर शूद्रों के लिए महत्वपूर्ण है। उन दिनों देश में आम चर्चा थी कि नेहरू माउंटबेटन और शेख अब्दुल्ला के चक्कर में पड़कर सारी रियासत को खो देंगे। जिस रियासत को पाकिस्तान के चंगुल से बचाने के लिए महाराजा हरि सिंह ने वायसराय का जबरदस्त जबाव झेला, जिन्ना की धमकियों, मुस्लिम लीग और मुस्लिम कॉन्फ्रेंस की धमकियों को झेला, जिसके लिए जम्मू-कश्मीर के सेनापति राजेन्द्र सिंह ने अपने प्राण अर्पित किए, मकबूल शेरवानी कबायलियों की गोलियों के शिकार हुए, उस रियासत का, माउंटबेटन और लेडी माउंटबेटन के चक्कर में नेहरू ने युद्ध विराम सन्धि से पहले ही विभाजन कर दिया था। गिलगित, बाल्टिस्तान और पुंछ से नौशहरा तक की पंजाबी भाषी पट्टी पाकिस्तान के कब्जे में रहने दी थी और शेख अब्दुल्ला की अति महत्वाकांक्षाओं के चलते मुस्लिम तुष्टीकरण अपना रहे थे। सभी को आशंका थी कि नेहरू सारा जम्मू-कश्मीर गंवा बैठेंगे और भारत का पश्चिमोत्तर फिर असुरक्षित हो जाएगा।

> नेहरू जम्मू-कश्मीर के विलय को तब तक टालना चाहते थे, जब तक इसका प्रस्ताव शेख अब्दुल्ला न करें, दूसरी ओर वह शेख अब्दुल्ला के तुष्टीकरण के लिए कुछ भी करने को तैयार थे। डॉ. आंबेडकर ने नेहरू की कश्मीर नीति, तुष्टीकरण नीति और संयुक्त राष्ट्र में विफलता पर खुल कर प्रहार किए। अनु. 370 के लिए नेहरू-शेख का साथ देने से उन्होंने साफ इनकार कर दिया था।

उस समय आंबेडकर रियासत के विभाजन की जो बात कर रहे थे, वह इन्हीं आशंकाओं के चलते पैदा हुई थी। ये आशंकाएं केवल बाबासाहेब आंबेडकर की ही नहीं थीं, बल्कि डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, मास्टर तारा सिंह, प्रेम नाथ डोगरा सभी की थीं। नेहरू कश्मीर के लोगों से संवाद नहीं कर रहे थे बल्कि शेख अब्दुल्ला जैसे बिचौलियों के माध्यम से कश्मीर से संवाद करना चाह रहे थे। बिचौलिए इसकी कीमत वसूल रहे थे और कश्मीर के लोग स्वयं को अपमानित महसूस कर रहे थे। बाबासाहेब आंबेडकर सीधे संवाद के पक्ष में थे। वे कश्मीर के मुसलमानों की चर्चा इसी सन्दर्भ में करते प्रतीत होते हैं। बाबासाहेब मानते थे कि जम्मू-कश्मीर में मुस्लिम तुष्टीकरण से समाधान नहीं निकलेगा बल्कि इस साम्प्रदायिकता से बच कर ही समाधान निकल सकता है। ■

(लेखक जम्मू-कश्मीर मामलों के जानकार हैं)

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:47 PM Page 61

कोटा सोचा था, खोटा नहीं

प्रो. श्रीप्रकाश सिंह

भारत रत्न, बाबासाहेब डॉ. भीमराव आंबेडकर जैसे महान बहुआयामी व्यक्तित्व के अनुकरणीय एवं विचारणीय कृतित्व को 'दलित', 'आरक्षण' आदि शब्दों का पर्याय बनाकर रख दिया गया है। आरक्षण की व्यवस्था के समर्थक डॉ. आंबेडकर का जयगान करते हैं और इस प्रावधान के विरोधी आलोचना। राष्ट्रीय राजनीति में ध्रुवीकरण एवं जाति की राजनीति ने स्थिति को और भी विषम बना दिया है। आरक्षण की सकारात्मकता का लाभ समाज के दलित, शोषित, वंचित वर्ग को प्राप्त हुआ है परंतु इस विशिष्ट संवैधानिक प्रावधान को आज तक इस रूप में लागू नहीं किया जा सका है कि समाज के सर्वांगीण विकास में, सर्वाधिक जरूरतमंद को इसका लाभ मिल सके।

बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर के प्रयासों से आजादी के उपरान्त समाज की अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के उत्थान एवं विकास के लिए आरक्षण को एक संवैधानिक प्रावधान के तहत स्वीकार किया गया। आजादी के 69 वर्ष उपरान्त भी यह नीति सरकार, संविधान एवं न्यायपालिका के संरक्षण में क्रियान्वित है। कोई भी व्यक्ति या सरकारी संस्था आरक्षण के प्रावधानों का उल्लंघन नहीं कर सकती। आरक्षण-नीति का समाज के दलित, शोषित, वंचित समाज को बहुत लाभ भी हुआ है। अधिकारों के प्रति जागरूकता का भी विकास हुआ है।

विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, सरकारी कार्यालयों के साथ-साथ सामाजिक जीवन के अन्यान्य क्षेत्रों में भी अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोगों की भागीदारी बढ़ी है और उनके जीवन स्तर में उत्तरोत्तर सुधार भी हुआ है। इसका श्रेय बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर को दिया जा सकता है क्योंकि आरक्षण की नीति को संवैधानिक प्रावधानों में शामिल कराना, संविधान सभा में सहमति बनाना, और उसे अनुच्छेद 16(4) में स्थान दिलाकर मौलिक अधिकार के रूप में स्थापित कराना एवं उसे न्यायिक संरक्षण युक्त कराने का सर्वाधिक महवपूर्ण एवं दूरदर्शी कार्य डॉ. आंबेडकर द्वारा ही किया गया था। आरक्षण की अवधारणा की सफलता के साथ-साथ कुछ प्रश्न स्वाभाविक रूप से जन्म लेते हैं कि क्या बाबासाहेब आंबेडकर का स्वप्न एवं संकल्प पूरा हुआ है? क्या हमें वास्तविक रूप में समाज को परिवर्तित करने और आत्म-निर्भर बनाने में सफलता प्राप्त हुई है? शायद नहीं! आरक्षण से अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोगों का जितना सामाजिक, शैक्षिक, राजनैतिक एवं आर्थिक विकास होना चाहिए था उतना सम्भव नहीं हुआ है। यही कारण है कि आज भी आरक्षण एक विषय के रूप में राजनीति की मुख्यधारा को प्रमुखता से प्रभावित कर रहा है और लाभार्थी वर्गों द्वारा विकास का एकमात्र माध्यम मानकर आक्रामकता से इसे प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। जो वर्ग या जातियां इसके दायरे में शामिल नहीं हैं, वे इसमें शामिल होना चाहती हैं। आरक्षण का दायरा बढ़ा है। प्रारम्भ में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए आरक्षण था परन्तु अब पिछड़े वर्ग को भी संवैधानिक रूप में आरक्षण प्राप्त है।

संविधान निर्माताओं का विश्वास था कि अनुसूचित जाति व जनजाति की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विषमताओं को दूर करने के साथ आरक्षण स्वयं ही समाप्त या अप्रभावी हो जाएगा। परन्तु ऐसा संभव नहीं हुआ और तत्कालीन समय में व्याप्त विषमताएं और समस्याएं नये बदलते परिदृश्य में और जटिलता के साथ चुनौतियां पेश कर रही हैं। परिणामस्वरूप सरकारों के द्वारा तमाम अल्पकालिक प्रावधान किये गए और समस्या के वास्तविक निदान का प्रयास नहीं किया गया। इसीलिए आरक्षण विषय का उल्लेख होते ही विवाद की स्थिति सृजित होने लगती है। इस परिदृश्य में आवश्यकता है कि आरक्षण के क्रियात्मक पक्ष का मूल्यांकन किया जाए और ऐसा मार्ग खोजा जाए जिसमें इस संवैधानिक प्रावधान का लाभ

आरक्षण की राजनीति ने डॉ. आंबेडकर के समग्र चिंतन को दलित राजनीतिज्ञ, दलित मसीहा, संविधान निर्माता और आरक्षण के प्रदाता के रूप में समेट दिया है। जबकि बाबासाहेब का वैश्विक चिंतन और अर्थ चिंतन अब तक उपेक्षित ही रहा है।

अछूत होने के कारण हमें नौकरियां नहीं मिलतीं और कई बार अपार प्रतिभाशाली होने के बावजूद लोग हमारी जाति के कारण हमारे अधीन काम नहीं करते। इन भावनाओं के कारण सैन्य सेवाओं में भी हमारी संख्या में कमी आई है। यही हाल कृषि का भी है।... ऐसे दोषों के साथ कोई समाज विकास नहीं कर पाता। प्रगति के लिए स्वाभाविक क्षमता और अनुकूल वातावरण जरूरी है।

– बहिष्कृत वर्ग की पहली बैठक,
माणगांव, 21 मार्च, 1920

सौजन्य : जी.एस. गोयल, शालीमार बाग, दिल्ली–110052

वास्तविक रूप में जिन्हें आरक्षण चाहिए, उन्हें प्राप्त हो सके। मूल्यांकन के लिए आवश्यक है कि हम इसकी समग्र पृष्ठभूमि का अध्ययन और समेकित विकास का मार्ग तलाशें जिससे नीति को सर्वस्पर्शी बनाया जा सके।

सामान्य मान्यता यह है कि भारत में आरक्षण का प्रावधान आंबेडकर की देन है, पर इसमें सत्यांश नहीं है अपितु इसे भारतीय गणतंत्र के संविधान में शामिल कराने एवं सरकार के माध्यम से क्रियान्वित कराने का श्रेय अवश्य डॉ. आंबेडकर को दिया जा सकता है। आरक्षण की मांग और व्यवस्था का इतिहास डॉ. आंबेडकर के काल खण्ड से बहुत पुराना है। महात्मा ज्योतिबा फुले ने 1882 में ब्रिटिश सरकार द्वारा गठित हंटर कमीशन के समक्ष दलित वर्ग के लोगों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के साथ-साथ सरकारी नौकरियों में आनुपातिक रूप से आरक्षण एवं प्रतिनिधित्व मांगा था। त्रावणकोर राज्य में स्थानीय लोगों के लिए स्थान आरक्षित हो, इसके लिए 1891 में आंदोलन भी हुआ। 1901 में महाराष्ट्र, कोल्हापुर राज्य में साहू जी महाराज द्वारा आरक्षण का प्रावधान किया गया। भारत सरकार अधिनियम 1909, 1919 में भी आरक्षण का प्रावधान किया गया था। 1921 में मद्रास प्रेसीडेन्सी में साम्प्रदायिक आधार पर ब्राह्मणों, गैर ब्राह्मणों, मुसलमानों, ईसाइयों एवं आंग्लभारतीयों और अनुसूचित जातियों को आरक्षण प्रदान किया गया था। आरक्षण विषय पर सघन चर्चा गोलमेज सम्मेलन के बाद आरम्भ हुई और स्वीकारोक्ति पूना समझौते 1932 के बाद हुई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने इसके पक्ष में 1935 में प्रस्ताव पारित किया और संबंधित प्रावधान भारत सरकार अधिनियम 1935 में भी किये गये। अखिल भारतीय दलित शोषित परिसंघ के माध्यम से 1942 में डॉ. आंबेडकर ने सरकारी सेवाओं और शिक्षा के क्षेत्र में अनुसूचित जाति के लिए आरक्षण की मांग की क्योंकि उनका मानना था कि विशेष प्रावधानों के बगैर समाज को न तो सशक्त बनाया जा सकता है और न ही विकसित किया जा सकता है।

> सामान्य मान्यता है कि भारत में आरक्षण का प्रावधान आंबेडकर की देन है। आरक्षण की मांग और व्यवस्था का इतिहास उनके कालखण्ड से बहुत पुराना है। महात्मा ज्योतिबा फुले ने 1882 में ब्रिटिश सरकार द्वारा गठित हंटर कमीशन के समक्ष दलित वर्ग के लोगों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के साथ-साथ सरकारी नौकरियों में आनुपातिक रूप से आरक्षण एवं प्रतिनिधित्व मांगा था।

डॉ. आंबेडकर का यह विचार यथार्थ एवं सामाजिक व्यवहार पर आधरित है। उनके द्वारा संविधान में आरक्षण का समर्थन, स्वयं के साथ हुए भेदभाव, अपमान, शोषण एवं संघर्ष से प्रेरित है। अपने साथ हुए पीड़ाजनित व्यवहार का उल्लेख करते हुए डॉ. आंबेडकर ने कहा भी है कि जब मेरे जैसा उच्च शिक्षा प्राप्त, योग्य व्यक्ति को भी इस सामाजिक व्यवस्था में अछूत माना जा सकता है तो उन लाखों-करोड़ों अछूतों की दशा तो और भी गई बीती होगी जो अशिक्षित एवं असभ्य हैं। दलित समाज की स्थिति को ध्यान में रखकर उन्होंने ब्रिटिश सरकार के आयोग के समक्ष कहा था कि दलितों को अल्पसंख्यकों की अपेक्षा ज्यादा राजनीतिक संरक्षण की आवश्यकता है। ...हमारी जनसंख्या के अनुपात में हमारे लोगों को आरक्षण प्रदान किया जाए। आयोग के प्रश्न के उत्तर में पुनः डॉ. आंबेडकर ने कहा कि मैं पूरे जोर से कहना चाहता हूँ कि मेरे जैसे पढ़े-लिखे लोग भी महत्वपूर्ण नौकरियों में हों। और यह तभी सम्भव है जब हमें पर्याप्त आरक्षण प्रदान किया जाए।

आरक्षण को लेकर डॉ. आंबेडकर का उद्देश्य एकदम स्पष्ट था, 'पिछड़ों एवं दलितों को न्याय तब तक प्राप्त नहीं हो सकता जब तक कि उनकी समस्याओं की तरफ विशेष ध्यान केन्द्रित न किया जाए।'

इसी तथ्य को ध्यान में रखकर डॉ. आंबेडकर द्वारा संविधान के मौलिक अधिकारों में अनुच्छेद 14, 15 एवं 16 के माध्यम से समानता का प्रावधान किया गया और स्पष्ट तौर पर कहा गया है कि राज्य जाति, धर्म, प्रजाति, लिंग, क्षेत्र, रंग आदि किसी भी आधार पर भेदभाव नहीं करेगा। इसका अभिप्राय यह है कि राज्य किसी का भी पक्ष नहीं लेगा। अनु. 16(1) एवं (2) अवसर की समता एवं विभेद रहित व्यवस्था का प्रावधान करते हैं परन्तु अनु. 16(4) सरकारी नौकरियों में प्रतिनिधित्व के लिए आरक्षण के उपबंध का प्रावधन करता है। यहां उल्लेख करना आवश्यक है कि संविधान निर्माताओं ने यह उपधारणा की कि अनु. 16(4) के अधीन पर्याप्त आरक्षण करते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखा जाएगा कि अतिशय एवं अंधानुकरण आरक्षण नहीं किया जाएगा। यदि ऐसा होता है तो विधिसम्मत मर्यादा के बाहर किया गया आरक्षण संविधान के साथ कपट होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने 50 प्रतिशत की सीमा तय की है जिसका अनेक राज्यों ने व्यावहारिक राजनीति के चलते उल्लंघन किया है। यह भी ध्यान देने योग्य विषय है कि प्रारंभिक आरक्षण अनु. 330 तथा अनु. 332 के तहत विधयिका में 10 वर्ष के लिए किया गया था, जिसे अनेकानेक संविधान संशोधनों द्वारा बार-बार बढ़ाया गया है। सत्ता एवं वोट की राजनीति के कारण कोई भी राजनीतिक दल या सरकार आरक्षण व्यवस्था के मूल्यांकन का पक्ष नहीं लेती। सभी को सिर्फ मत तथा कुर्सी की चिंता है।

दलित शोषित समाज के लोगों में सदियों से पैठी हीन भावना का समूल नाश करने के लिए, ऐसा माहौल विकसित करने की आवश्यकता है जिससे 'सबका विकास, सबके साथ', सम्भव हो सके। डॉ. आंबेडकर का भी विचार यही था कि केवल आरक्षण से समस्याओं का समाधान सम्भव नहीं है। समाज को आर्थिक रूप से समृद्ध करने और समान अवसर प्रदान करने की आवश्यकता है, तभी वह समरूप और सशक्त हो सकेगा।

आरक्षण की राजनीति ने डॉ. आंबेडकर के समग्र चिंतन को दलित राजनीतिज्ञ, दलित मसीहा, संविधान निर्माता और आरक्षण के प्रदाता के रूप में समेट दिया है। जबकि डॉ. आंबेडकर का व्यक्तित्व और विचार बहुआयामी रहे हैं। भारतीय समाज की प्रमुख बुराइयों में से एक जातिवाद और उससे उत्पन्न हुए छुआछूत, दमन, भेदभाव पर उन्होंने विशेष ध्यान दिया और इस बुराई से प्रभावित वंचित, शोषित, अशिक्षित, दलित, समाज को उबारने का अतुलनीय प्रयास किया, लेकिन साथ ही साथ सामाजिक समरसता, सामाजिक न्याय, हिन्दू धर्म में जागरण एवं सुधार आदि अनेक ऐसे विषय हैं, जिन पर उन्होंने विशेष ध्यान दिया।

संविधान निर्माताओं का उपरोक्त विचार आज भी दिवास्वप्न है। तीन पीढ़ियों तक आरक्षण का लाभ प्राप्त कर चुके लोग आज भी पद प्रतिष्ठा के लिए आरक्षण से चिपके हुए हैं जबकि अनुसूचित जाति एवं जनजाति में करोड़ों ऐसे लोग हैं जो विकास की प्रक्रिया से बहुत दूर हैं और उन्हें आरक्षण का लाभ भी प्राप्त नहीं है। और इस तरह से बाबासाहेब भीमराव का उद्देश्य समग्र रूप में पूरा नहीं हो सका है। ■

(लेखक भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली में डॉ.आंबेडकर सामाजिक न्याय पीठ के प्रमुख हैं)

शिक्षा में जीवन का सार

श्याम अत्रे

उच्च शिक्षा के पहले चरण में इंग्लैंड से भारत वापस आने पर बाबासाहेब ने बंबई के सीडेहॅम महाविद्यालय में दो साल तक अर्थशास्त्र का अध्यापन किया। बाद में एक निजी संस्था में प्रोफेसर ऑफ मर्केन्टाईल लॉ पद पर कार्य किया। सन् 1928 में वे शासकीय विधि महाविद्यालय में प्राध्यापक बने। सन् 1935 में वे इसी महाविद्यालय में प्राचार्य बने। इस अवधि में उन्होंने एक सव्यसाची, विद्यार्थी, प्रिय प्राध्यापक और अनुशासनप्रिय प्रशासक के रूप में ख्याति प्राप्त की। गहन अध्यापन, गहन ज्ञान, चौतरफा वाचन और अत्यंत व्यापक जीवनानुभव से उनका अध्यापन प्रभावी और वजनदार था। उत्तम वक्ता होने के कारण उनकी अध्यापन शैली में संवाद कुशलता, भाषा की शान और गहरा ज्ञान था। अंग्रेजी भाषा पर उनकी अनूठी पकड़ थी। जैसे उन्हें अपने विद्यार्थियों को विषय पुस्तक पढ़ाने का एहसास था, वैसे ही उनका चरित्र-निर्माण और मार्गदर्शन करने का भी ज्ञान था। उन्होंने बंबई विश्वविद्यालय के कारोबार पर भी अमिट छाप छोड़ी थी।

अध्यापन पेशा लौकिक था। वे इसके साथ-साथ व्यावहारिक कुशलता सिखाने का, लोकशिक्षक का काम भी करते थे। समाज की स्थिति, सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं की उन्हें गहरी समझ थी। 'मूकनायक', 'बहिष्कृत भारत', 'जनता' आदि नियतकालिक पत्रिकाओं से उन्होंने इन समस्याओं की कठोर चिकित्सा की और उनके बारे में दिग्दर्शन भी किया। बहिष्कृत हितकारिणी सभा, समाज समता संघ आदि संस्थाओं का भार वहन करके उन्होंने समाज परिवर्तन को गति दी। दलित और अस्पृश्य समाज की अनेक परिषदों में उन्होंने प्रभावी भाषणों के माध्यम से समाज का मार्गदर्शन किया। सन् 1927 में महाड में हुई परिषद और चवदार तालाब सत्याग्रह के समय उनके भाषण विशेष मशहूर हुए। उन्होंने दलित मुक्ति आंदोलन की नींव डाली। बंबई, दिल्ली, बीबीसी लंदन और वॉयस ऑफ अमेरिका आदि रेडियो केन्द्रों से उन्होंने प्रभावी विचारोत्तेजक भाषण दिए। अनेक शासकीय समितियों और मंचों से उन्होंने विचार व्यक्त किए। ये सारी बातें समाज के राजनीतिक और सामाजिक प्रश्नों से संबंधित रही हैं। शासकीय यंत्रणाओं में प्रांतिक और राष्ट्रीय स्तर पर जिम्मेदारी के पद विभूषित करते हुए किया हुआ कार्य और व्यक्त विचार व्यापक अर्थ से लोकशिक्षा के ही काम हैं। देश और समाज के गठन में उनका दिया योगदान महत्वपूर्ण है। उसकी कालनिरपेक्षता और चिरनूतनता सच्चे अर्थों में समाजमन पर किए जादू जैसी है। लोक शिक्षक के रूप में बाबासाहेब का काम चिरस्मरणीय है।

उन्होंने पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी की स्थापना कर बंबई और औरंगाबाद में दलित समाज के विद्यार्थियों के लिए उच्च शिक्षा महाविद्यालयों की स्थापना की और इन संस्थाओं के माध्यम से शिक्षा के प्रति अपने चिंतन को व्यवहार में रूपांतरित किया। ये महाविद्यालय उपेक्षित समाज के विद्यार्थियों के लिए ज्ञान के मुक्तद्वार थे। संस्था संचालन करते हुए उन्होंने दूरदर्शिता, तत्वनिष्ठा और पारदर्शी व्यवहार पर बल दिया। संस्था के आर्थिक अनुशासन और सचाई पर जोर दिया गया। सार्वजनिक पैसे का हिसाब भलीभांति रखकर, समय-समय पर जनता को दिखाना और इसे पवित्र कर्तव्य समझने की धारणा संस्था व्यवहार के बारे में उनकी संकल्पना थी।

उन्होंने दलित विद्यार्थियों के लिए छात्रावास, उत्तम ग्रंथालय और प्रयोगशाला आदि सुविधाओं की व्यवस्था की। इन शिक्षा संस्थाओं में अध्यापकों की नियुक्ति करते समय उन्होंने जाति को नहीं, योग्यता को महत्व दिया। उनका आग्रह था कि मेरे विद्यार्थियों को गुणी अध्यापकों से सर्वोत्तम ज्ञान मिलना चाहिए। बाबासाहेब के समय

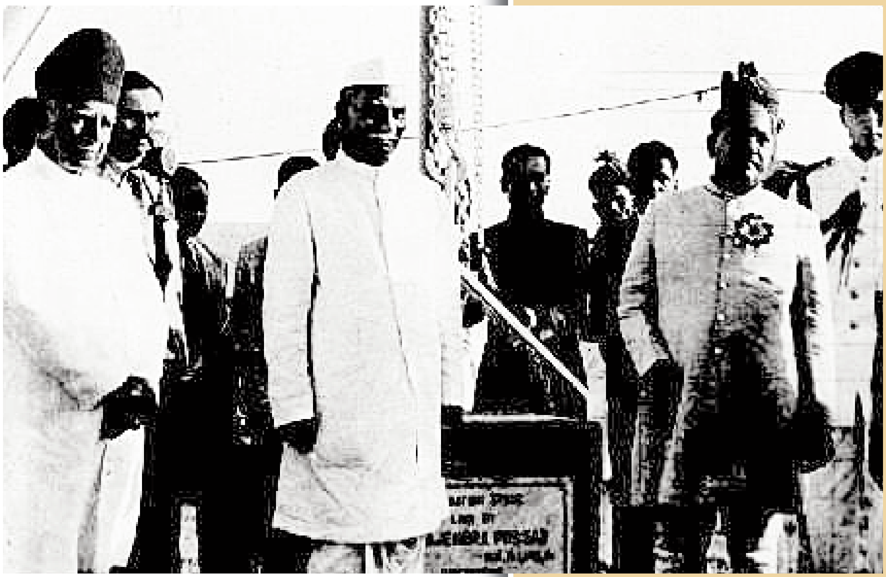

1950 में मिलिंद कॉलेज का शिलान्यास करते राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद। साथ में हैं दाएं बाबासाहेब।

> शिक्षा को लेकर बाबासाहेब ने देश के सामने ऐसा खाका रखा है जो राष्ट्रनिर्माण में बड़ी भूमिका निभा सकता है। उन्होंने चाहा कि शिक्षक उच्च योग्यता वाले हों, उनकी जाति आदि आदि न देखी जाए जबकि विद्यालयों में पिछड़े वर्ग के छात्रों को तरजीह मिले।

सौजन्य : मिथुन सिक्योरिटीज प्राइवेट लिमिटेड, झंडेवालान नई दिल्ली-110005

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:50 PM Page 64

...मैं महसूस करता हूं कि हम एक ऐसी अवस्था पर पहुंच रहे हैं जब समाज के निम्नतर तबके उच्चतर विद्यालयों, माध्यमिक विद्यालयों में पहुंच रहे हैं और इसीलिए इस विभाग की नीति ऐसी होनी चाहिए कि यह उच्च शिक्षा को निम्न वर्गों के लिए हर संभव स्तर पर वहनीय बना सके।...

— **मुंबई प्रांत विधान परिषद में भाषण,** 12 मार्च, 1927

इन शिक्षा संस्थाओं में कार्यरत रहे प्राध्यापकों की और प्राचार्यों की नामावली देखी जाए तो वे कितने उच्च स्तर के नामवर थे, इसका प्रमाण मिलता है। वे तत्वनिष्ठ व्यवहार और उत्कृष्ट विचार समाज को देकर ही नहीं रुके बल्कि आदर्श शिक्षा केन्द्र कैसा होना चाहिए, इसका एक आदर्श, शिक्षा क्षेत्र के कार्य से उन्होंने समाज के सामने रखा।

महाविद्यालयीन प्राध्यापकों को संबोधित करते वे कहते हैं, 'अध्ययन और अध्यापन काम में प्राध्यापक इतने जुट जाएं कि अपने घर की ओर देखने के लिए भी उनको वक्त न मिले। अध्ययन और अध्यापन के साथ अनुसंधान भी है। केवल विद्वान होना ही अपेक्षित नहीं, वे बहुश्रुत भी हों, विषय को रंजक बनाने की कला और उत्साह उनमें हो। इनमें से कुछ गुण आपमें होंगे, कुछ अध्ययन और अनुभवों द्वारा साध्य करने होंगे।'

संपूर्ण पीढ़ी को संस्कारित करने की जिम्मेदारी का पक्ष रखते हुए अध्यापकों को संबोधन में वे कहते हैं कि प्रत्येक पीढ़ी एक स्वतंत्र राष्ट्र है, ऐसा हम मानें। हर पीढ़ी को बहुमत से केवल स्वयं को बंधित करने का हक है। दूसरे देश पर बंधन लादने का अधिकार जैसे उन्हें नहीं, वैसे ही अपने पीछे आने वाली पीढ़ी पर बंधन डालने का भी उन्हें हक नहीं है। स्पष्ट है कि अध्यापकों से जुड़ी अपेक्षाओं से संबंधित संकल्पना का बाबासाहेब का आकलन कितना विस्तृत है।

पाठशाला और शिक्षा संस्था

पाठशाला और शिक्षा संस्था के कारोबार के बारे में डॉ. आंबेडकर कहते हैं कि पाठशाला एक पवित्र संस्था है। वहां छात्रों के मन सुसंस्कृत होते हैं। इसीलिए पाठशाला का कारोबार अनुशासन से चलना चाहिए। शिक्षा भी साफ, शुद्ध होनी चाहिए। अन्य जगहों पर अंधाधुंध कारोबार से सार्वजनिक पैसे की हानि होगी, परंतु शिक्षा के कारोबार में अगर अंधाधुंध गड़बड़ी हो जाए तो नई पीढ़ी का नुकसान होगा। 'बहिष्कृत भारत' के एक लेख में वे कहते हैं, 'पाठशाला के छात्रों के मन को समाजहित के लिए मोड़ देना चाहिए। पाठशाला उत्तम नागरिक बनाने का कारखाना है। अर्थात् इस कारखाने में फोरमैन जितना कुशल होगा, कारखाने में उतना अच्छा माल तैयार होगा।'

आदर्श और व्यावहारिक शिक्षा

बाबासाहेब ने पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी की स्थापना करके पाठशाला और महाविद्यालयों का निर्माण किया। यह शिक्षा क्षेत्र की आदर्श संस्था का श्रीगणेश था। अपनी शिक्षा संस्था के संचालन की जो नियमावली बाबासाहेब ने तैयार की, वह शिक्षा संस्था के आदर्श कारोबार और व्यवहार के बारे में उनका दृष्टिकोण स्पष्ट करती है। शिक्षा संस्थाओं में अध्यापक-प्राध्यापकों की नियुक्ति करते समय वे जाति-पांति का नहीं, बल्कि उच्च योग्यता का आग्रह रखते हैं। वे कहते हैं कि मेरी शिक्षा संस्थाओं में पिछड़े वर्ग के छात्रों के प्रवेश को सर्वाधिक प्रधानता है, परन्तु उन्हें पढ़ाने वाला अध्यापक वर्ग केवल उच्च योग्यता वाला ही हो, भले ही वह किसी भी जाति-पांति का क्यों न हो। राजनीतिक दलों को भी शिक्षा का कार्य करना चाहिए और उसके लिए शिक्षा संस्थाओं का जाल तैयार करना चाहिए, ऐसा उनका मानना था। इसी वजह से उन्होंने शे.का. फेडरेशन के घोषणा पत्र में इस विषय का स्पष्ट उल्लेख करने वाली धारा को समाविष्ट किया है।

बाबासाहेब ने शिक्षा में सहशिक्षा का पक्ष लिया है। उन्होंने कहा है कि स्त्रियों को पुरुषों की बराबरी में एक साथ शिक्षा प्राप्त हो। वे तर्क देते हैं कि स्त्रियों के साथ रहकर भी जो पुरुष अपना मन काबू में रखते है और पुरुषों के संग में रहकर भी जो स्त्रियां अपना पांव न फिसले, इस बारे में सजग रहती है, उन्हें नीतिमान कहना चाहिए। बाबासाहेब का स्पष्ट मत था कि संस्था चालकों को सहशिक्षा को प्रोत्साहन देना चाहिए।

छात्रों का दायित्व

बाबासाहेब स्वयं अनेक वर्ष तक प्राध्यापक रहे थे, अतः छात्रों से उनका गाढ़ा परिचय था। शिक्षा से छात्रों का आत्मविश्वास जागना चाहिए इस विचार को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं, 'आत्मविश्वास जैसी दूसरी दैवी शक्ति नहीं, हमें अपना आत्मविश्वास कभी गंवाना नहीं चाहिए।' वे मूल्य शिक्षा पर बल देते हुए कहते थे कि विद्या, विनय, शील और कड़ा अनुशासन सब कुछ छात्रों को आत्मसात करना चाहिए। विद्या के साथ शील चाहिए क्योंकि शील के बिना विद्या व्यर्थ है। वे कहते थे कि शिक्षा से छात्रों की सामाजिक संवेदनाएं भी सजग होनी चाहिए। विद्यार्थी काल में छात्रों को राजनीति में दखलअंदाजी नहीं करनी चाहिए। अगर वे अध्ययन छोड़कर राजनीति को अपनाने लगेंगे तो जीवनभर उनकी हानि होगी।

उपाधि की सीमाएं स्पष्ट करते हुए बाबासाहेब कहते हैं कि केवल उपाधि धारण करके कुछ भी साध्य नहीं होगा, क्योंकि उपाधियों और बुद्धिमत्ता में अन्योन्य संबंध नहीं होता। परीक्षा में सफल होना और उपाधि पाना अलग है और सुशिक्षित और ज्ञानी होना अलग है। छात्रों का भारवेत्ता होने से ज्ञानवेत्ता होना ज्यादा जरूरी है।

छात्रों की कमियों को सही ढंग से जानते हुए बाबासाहेब कहते हैं, 'विषय की जड़ तक पहुंचकर सम्यक् ज्ञान का मार्मिक आकलन करके उसकी भलीभांति रचना करने की योग्यता, सर्वसाधारण ज्ञान की बुनियादी अवस्था, युक्तिवाद, निर्दोष मत प्रदर्शन, प्रश्नों के तर्क की कसौटी पर उत्तर खोजना, मन के विचारों को सुस्पष्टता से रखना आदि बातें छात्रों में आजकल कम मात्रा में दिखाई देती हैं।' इस टिप्पणी से वे यह स्पष्ट करते हैं कि छात्रों का बौद्धिक गठन कैसा होना चाहिए।

सिद्धार्थ महाविद्यालय के छात्रों को संबोधित करते हुए बाबासाहेब कहते हैं कि शिक्षा से आपके मन, दृष्टि, विचारशक्ति, समस्या सुलझाने की ताकत आदि का विकास होना चाहिए। इतना ही नहीं, राजनीतिज्ञों को देश को सताने वाली इन समस्याओं को सुलझाने में आपके इस ज्ञान का उपयोग करना होगा, आपकी सहकारिता से वे उत्तर खोजे जाने चाहिए। अगर वे

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:50 PM Page 65

कहीं गलती कर रहे हैं तो निडरता से, स्पष्टता से उन्हें बताने का साहस शिक्षा से प्राप्त होना चाहिए। इतनी बड़ी अपेक्षा वे छात्रों से रखते थे।

अध्यापकों की योग्यता

अब देखें कि स्वयं उत्कृष्ट अध्यापक रहे बाबासाहेब की अध्यापक वर्ग से क्या अपेक्षाएं थीं। उनका कहना था कि शिक्षा एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है और अध्यापक उसका मुख्य आधार है। इसीलिए अध्यापकों की ज्ञानपिपासा, विद्याव्यासंग, आत्मीयता और ध्येयासक्त जीवनदृष्टि, इन बातों पर अध्यापकों की शिक्षा और योग्यता निर्भर है। बाबासाहेब की ज्ञानसाधना में हमने देखा कि उन्होंने अध्ययन की त्रिसूत्री - वाचन, मनन और चिंतन- अपनाई थी। इसी से वे स्वयं एक उत्कृष्ट अध्यापक और व्यापक अर्थ में समाजशिक्षक बने। उनकी भूमिका पहले करनी, बाद में कथनी थी।

अध्यापक की संकल्पना के बारे में वे कहते हैं कि अध्यापक को बहुश्रुत होना आवश्यक है, उसे अपने विचारों का विन्यास अच्छी तरह से करना जरूरी है, अपने और दूसरों के विचार जांचना जरूरी है, तभी वे छात्रों को अध्ययन करने तथा विचार करने के लिए प्रवृत्त कर सकेंगे। वह तेज बुद्धि का और चयनशीलवृत्ति का हो। उसमें चिकित्सकवृत्ति तथा मर्मज्ञता हो। उनकी दृष्टि में अध्यापक वर्ग राष्ट्र का सारथी है, क्योंकि उसके हाथों में शिक्षा की बागडोर होती है। पाठशाला सुसंस्कृत मन के नागरिक निर्माण करने का पवित्र तीर्थ है। अतः पाठशालाओं में समबुद्धि वाले, उदात्त विचारों से भरपूर और विशाल हृदय के अध्यापक होना जरूरी है।

> शिक्षा शोषणमुक्ति का महामार्ग है, अत: समाज में जो पीड़ित, उपेक्षित, शोषित घटक हैं, उनकी दैन्यावस्था को मिटाने वाला अचूक उपाय है शिक्षा। उनकी दृष्टि से समाज में जो पददलित हैं, उनकी आत्मनिर्भरता और आत्मसम्मान का आंदोलन है शिक्षा। समाज के निम्नस्तर को उच्चस्तर तक ऊंचा उठाने के लिए शिक्षा और शिक्षा में आरक्षण- इस तरह के दोहरे उपायों की जरूरत वे मानते हैं।

शिक्षा नीति

डॉ. आंबेडकर ने अपनी शिक्षा विषयक नीति क्रमबद्ध रूप से ग्रंथित नहीं की है। इस संदर्भ में उनके विचार अलग-अलग माध्यमों द्वारा व्यक्त हुए हैं। उनके संपादित किए नियतकालिक (पीरियॉडिकल), स्थापित की हुई सामाजिक और शिक्षा संस्थाओं के ध्येय और नीतियां, इनके माध्यम से वे व्यक्त हुए हैं। उन्होंने अन्यान्य शासकीय समितियों, आयोग, उनके सामने दिए साक्ष्य, प्रस्तुत किये पत्र-प्रपत्र इनके माध्यम से भी शिक्षा नीति का ऊहापोह उजागर किया। विविध परिषदों में, सम्मेलनों में, महाविद्यालयों तथा शिक्षण संस्थाओं में किए भाषणों द्वारा भी उनके विचार प्रस्तुत हुए हैं। बंबई विद्यापीठ सीनेट, शिक्षण संस्थाओं में किए भाषणों द्वारा भी उनके विचार प्रस्तुत हुए हैं। उन्होंने वैधानिक क्षेत्र अर्थात् बंबई विद्यापीठ सीनेट, बंबई विधिमंडल, महाराज्यपाल की मंत्रि परिषद, संविधान सभा, लोकसभा आदि में हुई चर्चाओं के जरिए अध्ययनपूर्वक सहभागी होते शिक्षा नीति के अनेक मुद्दे विशद किए हैं। उनके विस्तृत चिंतन में शिक्षा क्षेत्र की सामाजिक विषमताएं, उस पर उपाय, साक्षरता प्रसार और विकास की आवश्यकता, प्राथमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा और संशोधन, व्यवसाय प्रशिक्षण, तंत्र शिक्षा जैसे विषय विविध स्तरों के संदर्भ में दिखाई देते हैं। यहां हम उनके व्यापक चिंतन में से कुछ विशेष मुद्दों का विचार कर रहे हैं।

1. केन्द्रीय सत्ता की परिकल्पित की हुई एकसूत्री राष्ट्रीय नीति से ही शिक्षा की समस्या- यह खंड खंड करके सुलझाने वाला प्रश्न नहीं है, बल्कि यह प्रश्न एकसूत्री नीति से ही सुलझ सकता है, क्योंकि शिक्षा एक निरंतर चलने वाली प्रदीर्घ प्रक्रिया है। वे कहते हैं कि शिक्षा क्षेत्र को सच्चे अर्थों में स्वतंत्र और स्वाधीन होना चाहिए, उस पर व्यक्ति की सत्ता होना धोखादायक है। शिक्षा की जिम्मेदारी स्थानिक स्वराज्य संस्थाओं के पास नहीं होनी चाहिए। यह मुद्दा स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं, शिक्षा की बात गटर साफ करने जैसी बातों से भिन्न है, यहां कारोबार उपयुक्त नहीं। इस प्रकार की चेतावनी भी वे देते हैं।

साक्षरता प्रसार और विकास तथा सार्वत्रिक शिक्षा के उद्देश्य पर बल देते हुए बाबासाहेब कहते हैं कि एक बार एक बच्चे ने प्राथमिक शाला में प्रवेश ले लिया, तो वह साक्षर हो गया ऐसा नहीं है। जब तक उसमें जीवनभर साक्षर रहने की क्षमता विकसित नहीं होती, तब तक वह प्राथमिक शाला या साक्षरता वर्ग न छोड़े। उनकी दृष्टि में शिक्षा अन्न के समान है, उसकी आवश्यकता जीवनभर होती है। उनका दृढ़ मत था कि इस संदर्भ में पूरी जिम्मेदारी शासन को ही उठानी होगी।

शिक्षा क्षेत्र में सामाजिक विषमता के बारे में बाबासाहेब का मत अत्यंत स्पष्ट है। सन् 1927 में बंबई विधिमंडल में दिए भाषण में उन्होंने प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा में विषमता की जो सांख्यिकी प्रस्तुत की, वह अत्यंत चिंताजनक है। उसके निष्कर्ष चौंकानेवाले हैं- समूचे हिन्दू समाज में निरक्षरता 82.5 प्रतिशत है, वहीं पिछड़े समाज में 98 प्रतिशत। माध्यमिक और उच्च शिक्षा के स्तर पर पिछड़े वर्ग की अवस्था अत्यंत दयनीय है। शैक्षिक विषमता की जड़ सही मायने में सामाजिक और आर्थिक विषमता में है।

इसका उपाय बताते हुए वे कहते हैं कि असमान बर्ताव तत्व को स्वीकार कर कुछ वर्गों को विशेष सहूलियतें देने की आवश्यकता है। जो निम्नस्तरीय हैं, उन्हें विशेष दर्जा और सहूलियत देने के अलावा और कोई विकल्प नहीं है। इस सूत्र को अधिक स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं, 'केवल छात्रवृत्ति देकर पिछड़े वर्ग की समस्या सुलझ नहीं पाएगी। छात्रावास, अभ्यासगृह, बालवाडी, संस्कार केन्द्र आदि की योजना करके उनके लिए उचित, प्रेरणादायी सामाजिक वातावरण का निर्माण करना आवश्यक है। आगे चलकर भारतीय संविधान में शामिल हुई आरक्षण विषयक नीति के बीज उनके इस भाषण में मिलते हैं।

समाज परिवर्तन एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। शिक्षा द्वारा समाज परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त होता है। बाबासाहेब कहते हैं कि परिवर्तन की इस प्रक्रिया को गति देने के लिए समाज मानस में परिवर्तनवादी विचार दृढ़ होना आवश्यक है। व्यापक एवं सार्वत्रिक शिक्षा द्वारा ये विचार समाज में दृढ़ बन सकते हैं। शिक्षा का सामाजिक आशय कभी भी आंख से ओझल नहीं होना चाहिए। शिक्षा की संकल्पना के अंतर्गत 'पढ़ो और पढ़ाओ' की प्रक्रिया अभिप्रेत होती है। उसी से समाज की प्रगति संभव होती है। शिक्षा के बिना किसी समाज में संवेदनशीलता प्रतीति या सजगता निर्मित नहीं होगी तथा बिना जागृति के समाज की उन्नति भी नहीं होती। शिक्षा का आशय खासकर ऐहिक होना चाहिए। समाज में जो-जो विषमताएं है, वे शिक्षा के माध्यम से दूर हों, ऐसी व्यावहारिक अपेक्षाएं वे व्यक्त करते हैं। वे एक आदर्शवादी विचार भी सामने रखते हैं कि शिक्षा किसी के व्यक्तित्व में सनी हुई सुप्त शक्तियों को मुक्त करती है और मनुष्य को पशुता से मनुष्यत्व की

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:50 PM Page 66

ओर ले जाती है। वे यह कहने से भी चूकते कि शिक्षा का हेतु व्यक्ति का सामजिकीकरण और नैतिकीकरण करना है, क्योंकि सभ्यता और संस्कृति की बुनियाद शिक्षा ही है।

बाबासाहेब की अभिप्रेत ज्ञान की संकल्पना बड़ी ही व्यापक और आदर्शमय है। वे कहते हैं कि विद्या, प्रज्ञा, करुणा, शील और मित्रता, इन पंचतत्वों के अनुसार प्रत्येक को अपना चरित्र निर्माण करना चाहिए। विद्या के साथ शील भी चाहिए, शील के बिना विद्या व्यर्थ है। विद्या तलवार के समान है इसीलिए जो उसे धारण करे, उस पर उसकी महत्ता अवलंबित है। बुद्धि और चतुराई को सदाचार अर्थात् शील का साथ मिलना चाहिए। बगैर शील के अगर शिक्षित लोग निर्मित होने लगेंगे, तो उनकी शिक्षा से राष्ट्र और समाज का नाश होगा। ज्ञान और प्रज्ञा का सुचारु मेल माने शिक्षा। ऐसी शिक्षा मनुष्य का निर्माण करती है। व्यक्ति को स्वत्व की प्रतीति कराना शिक्षा का कार्य है। शिक्षा मूल्याधिष्ठित माने व्यक्ति में नैतिक आचरण निर्माण करने वाली है। ऐसे शिक्षाविषयक सूत्र उन्होंने हमारे सामने रखे हैं।

ज्ञान का अर्थ है प्रकाश। गौतम बुद्ध की शिक्षा की यह परिभाषा बाबासाहेब को भाती है। परंतु यह प्रकाश सामाजिक, आर्थिक, राजकीय क्रांति का आधार बनना चाहिए। प्रकाश शब्द का विश्लेषण करते हुए वे बताते हैं: शिक्षा के सामाजिक संदर्भ होने चाहिए। शिक्षा शोषणमुक्ति का महामार्ग है, अतः समाज में जो पीड़ित, उपेक्षित शोषित घटक हैं, उनकी दैन्यावस्था को मिटाने वाला अचूक उपाय है शिक्षा। उनकी दृष्टि से समाज में जो पददलित हैं, उनकी आत्मनिर्भरता और आत्मसम्मान का आंदोलन है शिक्षा। समाज के निम्नस्तर को उच्चस्तर तक ऊंचा उठाने के लिए शिक्षा और शिक्षा में आरक्षण- इस तरह के दोहरे उपायों का कठोर कार्यान्वयन करने की जरूरत वे मानते हैं। समताधिष्ठित, मूल्याधिष्ठित और नीतिमान समाज सफल लोकतंत्र की पूर्वशर्त है। यह संस्कार केवल शिक्षा ही दे सकती है।

> शिक्षा के प्रति डॉ. आंबेडकर के विचारों में जबरदस्त व्यापकता है। वे उसे समाज की उन्नति से भी जोड़ते हैं और मूल्य, नैतिकता व धर्म से भी। वे उसे शिक्षकों की योग्यता से भी जोड़ते हैं, और छात्रों के व्यवहार से भी। वे उसे समताकारक भी मानते हैं और समता प्राप्त करने के लिए दोहरे उपाय करने की आवश्यकता पर भी जोर देते हैं। वे उसे स्वतंत्रता का पर्याय भी मानते हैं, और एक नियमित प्रक्रिया भी।

समाज की निरक्षरता पर चिंता जताते बाबासाहेब कहते हैं, इसी निरक्षरता ने जनता को मानसिक दृष्टि से गुलाम, आर्थिक दृष्टि से दरिद्र, सांस्कृतिक दृष्टि से लूला-लंगड़ा और सामाजिक दृष्टि से पिछड़ा बना दिया। इसी वजह से समाज विदेशी आक्रामकों के विरुद्ध संघर्ष करने की ताकत खो बैठा है। इसका भावार्थ समझने की आवश्यकता है। शिक्षा और शिक्षाशास्त्र की केवल तात्विक चर्चा न करते हुए उन्होंने औपचारिक शिक्षा को नैतिकता से जोड़ने का ध्येयवाद रखा। इस प्रकार उन्होंने अपने शिक्षाचिंतन को एक व्यापक आदर्शवादी, सैद्धांतिक धरातल पर रखा।

बंबई विश्वविद्यालय से बी.ए. की उपाधि पाने के बाद सन् 1913 में उच्च शिक्षा हेतु वे अमरीका गए। कोलंबिया विश्वविद्यालय से उन्होंने एमए और पीएचडी की उपाधियां प्राप्त कीं। अनेक चर्चा सत्रों में उन्होंने शोध निबंध भी प्रस्तुत किए। बाद में इंग्लैंड जाने के बाद उन्होंने लंदन विश्वविद्यालय, लंदन स्कूल ऑफ इकानॉमिक्स तथा ग्रेज इन नामक विश्वमान्य संस्थाओं में अध्ययन किया। वहां उन्होंने एमएससी, डीएससी, एलएलडी, बार एट लॉ की उपाधियां सम्मान सहित प्राप्त कीं। सन् 1952 में कोलंबिया विश्वविद्यालय ने उन्हें डीलिट की उपाधि सम्मान के साथ प्रदान की। हर उपाधि के लिए उन्होंने स्वतंत्र संशोधन ग्रंथ लिखे, जो विश्वविख्यात हुए। इनमें प्रमुख रूप से सामाजिक, आर्थिक, वित्तीय विषयों के ग्रंथों का समावेश है। भारत आने पर देश के सामने मौजूद समस्याओं का अध्ययन करके उन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे। उनका अध्ययन और लेखन निर्बाध गति से सदा चलता रहा। 67 साल की उम्र में जीवनयात्रा समाप्त होने से कुछ दिन पूर्व उन्होंने महत्वपूर्ण ग्रंथ 'बुद्ध और धम्म' पूरा किया था। उनका समग्र साहित्य 22 खंडों में 15,000 पृष्ठों में ग्रंथित है।

बाबासाहेब ने वैचारिक विश्व में जो परिवर्तन किया, उसका प्रमुख आधार रहा उनका अखंड ग्रंथ पठन। ग्रंथों की ऐसी भूख रखने वाला ज्ञानमार्गी विरला ही होगा। विदेशी विश्वविद्यालयों के छात्रावासों में प्याला भर दूध और ब्रेड के दो-चार टुकड़े खाकर 18-18 घंटे अध्ययन करने वाला यह विद्यार्थी। पेट काटकर उन्होंने 35,000 ग्रंथ खरीदे। हर ग्रंथ बारीकी से पढ़ा हुआ और हाशिए में टिप्पणी किया हुआ था। ग्रंथ तो मानो उनके बहिश्वर प्राण थे। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए पं. मदनमोहन मालवीय जी ने इन ग्रंथों की मांग की थी। वे इन ग्रंथों के लिए मुंहमांगा दाम देने के लिए तैयार थे। उसे बड़ी नम्रता से अस्वीकार करते हुए बाबासाहेब ने कहा, 'आप तो मानों मेरे प्राण ही मांग रहे हैं।' बाबासाहेब के भक्तों, उनके विरोधियों और समाज के युवकों ने उनकी ज्ञानसाधना के शतांश का भी अनुसरण किया होता, तो यह देश प्रगति के शिखर पर जा पहुंचता।

शिक्षा विषयक चिंतन

बाबासाहेब ने समाज को शिक्षा लो, संगठन करो और संघर्ष करो- का मूलमंत्र दिया। इस मूलमंत्र में शिक्षा का प्रथम स्थान है। दुर्भाग्य से उनका शिक्षा विषयक चिंतन, सुसंगठित रूप में, प्रबंध रूप में उपलब्ध नहीं है। वह अन्यान्य रचनाओं में बिखरा पड़ा है। सभा सम्मेलनों में और परिषदों में किए हुए भाषण, पत्रवांग्मय, नियतकालिकों में छपे लेख, शिक्षा संस्थाओं को दी भेंट, प्रांतिक या केन्द्रीय विधिमंडलों में तथा विश्वविद्यालयों में किए भाषण, अन्यान्य आयोगों के सामने दिए गए साक्ष्य आदि में ये विचार व्यक्त हुए हैं। शिक्षा का तत्वज्ञान, ध्येयवाद, शिक्षा का सामाजिक आशय, पाठ्यक्रम का स्वरूप और ध्येय, विद्यार्थियों का दायित्व, अध्यापकों की पात्रता, पाठशाला तथा महाविद्यालयों की जिम्मेदारी, शिक्षा क्षेत्र में आरक्षण और उसकी मीमांसा, ऐसे अलग-अलग पहलुओं पर चिंतन के साथ-साथ उन्होंने गहरे उतरकर भाष्य किया है। प्राथमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा, विश्वविद्यालयों का कारोबार, साक्षरता, सार्वत्रिक शिक्षा की अनिवार्यता आदि बातों की भी उन्होंने चर्चा की है। अपने चिंतन में उन्होंने सिद्धांतों के साथ ही व्यावहारिकता को भी महत्व दिया है। बाबासाहेब का स्पष्ट मत था कि शिक्षा और समाज का एक अटूट रिश्ता है, क्योंकि शिक्षा ही समाज के सांस्कृतिक उन्नयन का आधार है। वे कहते हैं कि समाज अपना स्तर ऊंचा उठाने के लिए सामूहिक पद्धति से जो प्रयास करता है, वह शिक्षा है। समताधिष्ठित समाज निर्माण के लिए शिक्षा जैसा दूसरा साधन नहीं है। समता के लिए सबको शिक्षा मिलना जरूरी है। बाबासाहेब कहते हैं, 'शिक्षा सामाजिक समानता और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए आवश्यक शक्ति है।' वे कहते हैं कि व्यक्ति की स्वतंत्रता को अबाधित रखने और उसकी रक्षा के लिए काम आने वाली ताकत शिक्षा से ही प्राप्त होती है। ■

(लेखक मराठी पुस्तक 'बाबा साहेब अणि विवेकानन्द' के लेखक, विचारक एवं अध्येता हैं)

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:01 PM Page 67

जिनके मर्म में धर्म था

» भीमराव भोसले

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के धर्मचिंतन में हिन्दुत्व, बौद्धपंथ और लोकतंत्र के मानवीय मूल्यों का एक विराट त्रिसूत्रीय संगम नजर आता है। जीवन से वर्गकलह को रोकना और मानवीय दुखों का समूल उच्चाटन करके सदाचारी और शांतिमय जीवन निर्मित करना ही धर्म का लक्ष्य है। धर्म शासन तथा कानून से बहुत बलवान है। लेकिन राष्ट्र तथा कम्युनिटी जब न्याय के पक्ष में आवाज बुलंद करते हैं, तो राष्ट्र तथा कम्युनिटी सर्वतः धर्म पर भारी पड़ते हैं। धर्म वैसे व्यक्ति के लिए होता है। डॉ. आंबेडकर धर्म सुधार के पक्ष में हैं। मार्क्स अधिनायकवादी और हिंसाचारी क्रांति को इसका उपाय बताते हैं। वहीं इसकी तुलना में उन्हें बुद्ध का पंचशील तथा अष्टांगमार्ग सिद्धांत उचित लगता है। जगत् में शांति और सदाचार के निर्माण के लिए आंबेडकरजी की पद्धति में विज्ञान, लोकतंत्र और सुधारवाद का त्रिसूत्रीय संगम दिखाई देता है। धर्म के स्वरूप के अंतरविद्याशाखीय होने के कारण आंबेडकर जी के दृष्टिकोण से धर्म क्या है, रिलीजन और धर्म में क्या अंतर है, तथा कार्ल मार्क्स, बुद्ध, धर्मनिरपेक्षता, आदर्श समाज की उनकी संकल्पना, लोकतंत्र का आधार, बंधुत्व, उन्होंने आखिर बौद्ध धर्म क्यों स्वीकार किया, और हिन्दुत्व, बौद्धपंथ और लोकतंत्र के सामाजिक उच्चतम मानवीय मूल्यों के किन त्रिसूत्रों का संगम एक नए भारतीय समाज के निर्माण की वकालत करता है? यह समझना दिलचस्प है।

धर्म -आंबेडकर बहुश्रुत धर्म चिंतकों के चिंतन सार पर आधारित धर्म की व्याख्या इन शब्दों में करते हैं:

लोग जिसके द्वारा शासित होते हैं, वही धर्म है। धर्म और तत्वधान में फर्क होता है। धर्म का स्वरूप निश्चित है पर तत्वधान में कुछ भी निश्चित नहीं होता। दोनों एक-दूसरे के स्पर्धक जरूर हैं, पर विरोधी नहीं हैं।

धर्म सिर्फ सिद्धांत रूप में होता है, उसमें नियमों का कोई स्थान नहीं होता। जब धर्म नियमों का आधार बन जाता है, धर्म और कानून की मिलावट हो जाती है, और धर्म के नाम पर कानून की वकालत बलप्रयोग से की जाती है तो वह धर्म पूर्णतः नष्ट हो जाता है क्योंकि जवाबदेही लोकोत्तर नहीं रह जाती।

धर्म और कानून दो शक्तियां हैं, जो मनुष्य को नियंत्रित करती हैं। कभी-कभी दोनों में समन्वय होता है तो कभी-कभी दोनों एक-दूसरे को चेक और बैलेन्स भी करती हैं। दोनों में एक फर्क है: कानून 'पर्सनल' होता है, इसलिए वह भेद-भाव, अन्याय या विषमता को बढ़ावा दे सकता है। पर धर्म पूर्णतः 'इम्पर्सनल' होता है, जिसके कारण वह भेद-भाव, अन्याय और विषमता को पराजित कर सकता है। धर्म ढाल और तलवार दोनों ही रूप में एक बढ़िया साधन है।

राष्ट्र और कम्युनिटी धर्म से ज्यादा शक्तिमान हैं। जब न्याय की पुकार होती है, तब राष्ट्र और कम्युनिटी की सुरक्षा के हित धर्म को सुधार के लिए तत्पर होना ही पड़ता है। धर्म का लक्ष्य न्याय और शांति ही होता है।

धर्म शासन पर भारी होता है। धर्म मानवता के लिए अनिवार्य होता है। धर्म से हीन समाज का अन्त तय है। धर्म लोगों को इकट्ठा रखने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। धर्म ही लोगों की रक्षा करता है तथा अनुशासन सिखाता है। समाज में अगर उसकी नैसर्गिक एकरूपता के कारण एकरूपता नहीं है, तो वह समाज ही नहीं है। इसलिए धर्म मानवीय समाज का हृदय होता है।

धर्म शासन पर भारी होता है। धर्म मानवता के लिए अनिवार्य होता है। धर्म से हीन समाज का अन्त तय है। धर्म लोगों को इकट्ठा रखने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। धर्म ही लोगों की रक्षा करता है तथा अनुशासन सिखाता है।

डॉ. आंबेडकर के अनुसार धर्म उत्कांत होता है। जैसे भाषाओं की तरह धर्म का उत्कांत चार खंडों (युगों) में हुआ है।

पहला, धर्म मनुष्यमात्र की आत्मा की मुक्ति का विषय है। दूसरा, धर्म बंधुत्व का आचरण है जो नीति आधारित लोकशासन से संचरित होता है। तीसरा, धर्म धर्मवीरों की भक्ति, श्रद्धा तथा पूजापाठ होता है, जो उसकी रक्षा के लिए समर्पित कार्य में लगे होते हैं।

चौथा, धर्म उन धर्मवीरों की भक्ति, श्रद्धा तथा पूजापाठ होता है जो चमत्कार करते हैं।

धर्म के चार वैशिष्ट्य : आंबेडकर के अनुसार, धर्म की चार विशेषताएं हैं। पहली यह कि समाज को एकत्रित रखने के लिए कोई कानून या कोई नैतिकता जरूरी होती है अन्यथा समाज टुकड़ों में बिखर जाता है। दूसरी विशेषता यह कि धर्म का आधार तर्क विज्ञान है। धर्म का आधार नैतिकता हो, यह तीसरा वैशिष्ट्य है, यह जरूरी है, पर यही परिपूर्ण नहीं है। नैतिकता के साथ-साथ लोकतंत्र के मूलभूत त्रिसूत्रों- स्वातंत्र्य, समता और बंधुत्व का अनुसरण अनिवार्य होता है। चौथी खासियत है कि धर्म को कभी भी दारिद्रय का गुणगान तथा महिमामंडन नहीं करना चाहिए।

धर्म भाषा की तरह सामाजिक होता है। धर्म को आधार बनाकर समाज में भेदभाव करना आंबेडकर को मंजूर नहीं है। हम अपने ही धर्मबंधुओं के साथ जानवर की तरह व्यवहार करें और अन्याय-अत्याचार करें, यह बात उन्हें मान्य नहीं है। वे कहते हैं:- धर्म और गुलामी साथ-साथ नहीं चल सकते। धर्म कभी वैयक्तिक नहीं होता।

सभी रिलीजन अलग-अलग होते हैं। सभी धर्मों के मार्ग और पद्धति अलग-अलग होते हैं। दो धर्म कभी पूर्णतः समान नहीं रहते। सभी धर्म समान और अच्छे होते हैं- ऐसा समझना गलत है और धोखा देने वाला है। धर्म एक संस्था और प्रभाव होता है। धर्म फलदायी या उपद्रवी हो- यह उस धर्म पर निर्भर करता है।

धर्म ग्लानि क्यों होती है? नागसेन और मिलिंद (मिलिंद प्रश्न) का उदाहरण देकर आंबेडकर कहते हैं कि धर्म के विनाश के तीन प्रमुख कारण हैं: पहला, धर्म की आधारशिला का ही अपरिपक्व होना। दूसरा, परिपूर्ण ज्ञानी धर्मप्रचारक न होना। तीसरा, धर्म तथा धर्म सिद्धांत सिर्फ चुनिंदा ज्ञानी लोगों के लिए हों और आम साधारण लोग जब मंदिर-विहार तक ही सीमित रहें, तो धर्म का विनाश निश्चित है।

बुद्ध और उनका धर्म : 'बुद्ध और उनका धम्म' ग्रंथ के अनुसार बुद्ध रेशनल, डेमोक्रेटिक, मॉरल और साइन्टिफिक हैं।

धर्म क्या है? जीवन मंगल रखना धर्म है। जीवन में पूर्णता पाना धर्म है। सक्रियता और निर्वाण में जीना धर्म है। तृष्णा से मुक्त होकर जीना धर्म है।

सौजन्य : पीयूष इम्पैक्स प्राइवेट लिमिटेड, करोल बाग, दिल्ली–110005

सभी यौगिक वस्तुएं क्षणिक हैं, ऐसा विश्वास करना धर्म है। कर्म ही नैतिक नियमों का साधन है, ऐसा विश्वास करना धर्म है।

धर्म क्या नहीं है? पारलौकिक पर विश्वास करना धर्म नहीं है। ईश्वर पर विश्वास करना धर्म का आवश्यक अंग नहीं है। ब्रह्म पर आधारित धर्म असत्य धर्म है। आत्मा में विश्वास करना धर्म नहीं है। बलिदानों पर विश्वास करना धर्म नहीं है। परिकल्पना पर विश्वास करना धर्म नहीं है। धर्म की किताबें पढना धर्म नहीं है। धर्म किताबें होती है, ऐसा विश्वास करना धर्म नहीं है।

सधर्म या धर्म का कार्य क्या है?

मन को शुद्ध रखना। विश्व को सदाचारी राज्य बनाना। धर्म सद्धम बनने हेतु प्रज्ञा को बढावा देना। शिक्षा को सभी के लिए खुली रखना।

सिर्फ कोरी शिक्षा सबकुछ नहीं इसलिए प्रज्ञा का होना जरूरी है। प्रज्ञा का मतलब है साक्षात् अनुभव जो प्रयोगसिद्ध हो, यह अनुभव सार्वजनिक हो, और सच्चे तथ्यों पर आधारित हो

धर्म को सद्धम यानी सद्धर्म बनने हेतु, मैत्री को बढ़ावा देना। प्रज्ञा से ज्यादा शील हो । शील से ज्यादा करुणा हो। करुणा से ज्यादा मैत्री हो। यहां ये ध्यान रखें कि इनका मूल्य बढ़ते क्रम में है जैसे प्रज्ञा-शील-करुणा-मैत्री।

सामाजिक समता, सामाजिक एकता के लिए मैत्रीपूर्ण और कारुणिक चरित्र बहुत आवश्यक है इसलिए व्यक्ति की गुणवत्ता व चरित्र प्रमाण है न कि उसका जन्म।

धर्म सद्धम बनने हेतु व्यक्ति-व्यक्ति के बीच में से सभी सामाजिक दीवारें हटा देना जरूरी है। व्यक्ति का दर्जा उसकी गुणवक्ता पर हो न कि उसके जन्म पर। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच में समता को बढ़ाएं। समता और गुणवत्ता से समाज में एकता और बंधुत्व को बढ़ावा मिलता है। सब एक हैं तो समाज है।

धर्म का उद्देश्य: पहले यह बात समझ लें कि समाज में चारों ओर दुःख व्याप्त है, समाज को दुःख से मुक्त करें। दुःख के कारण का निवारण करें। दुःख को उचित उपाय करके सुख-शांति, बंधुत्व और मैत्री को बढ़ाएं।

धर्म का मार्ग मंगल है, पंचशील का मार्ग मंगल है। पंचशील का अनुकरण करें। हिंसा न करें। चोरी न करें। व्यभिचार न करें। झूठ न बोलें। मद्य आदि मादक पदार्थों का सेवन न करें।

धर्म का मार्ग सदाचार है। इसके आठ अंग हैं:

सम्यक् दृष्टि, सम्यक् वाचा, सम्यक् संकल्प, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीविका, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि।

इस मार्ग पर प्रयास करने के लिए मिच्छा (पालि भाषा में इसका अर्थ अधर्म है) दृष्टि को सम्यक् समाधि से हटाना होता है। यह मार्ग चार आर्य सत्यों का दर्शन है। यहां पर विज्ञान और नैतिकता का उचित प्रयोग होने से सामाजिक कल्याण और एकता का कार्य बढ़ सकता है। सम्मा, समाधि और श्रद्धा को बल देता है। सम्मा समाधि मन को मंगल, अचल और एकाग्र रखता है जिससे व्यक्ति की क्षमता व गुणवत्ता बढ़ती है। बुद्ध दस सद्गुण और दस पारमिता की भी बात करते हैं जिसकी आंबेडकरजी ने विस्तार से चर्चा की है।

दस सद्गुण हैं- शील, दान, प्रज्ञा, उपेक्षा, निष्काम कर्म, वीर्य, क्रांति, सच, अधिठान, मैत्री

बढ़ते मूल्यों के क्रमानुसार दस पारमिता हैं-

मुदिता, विमल, प्रभाचारी (चकाचक प्रकाश), अर्चिस्मृति (अग्नि की तरह बुद्धि), सुदूरजय, अभिमुखी, दुरंगम, अचल, साधुमति, धर्ममेध (धर्म की तीसरी आंख, बुद्धत्व)

बुद्ध के अनुसार निब्बान यानी निर्वाण सर्वोच्च फलनिष्पति है। निब्बान उच्चतम आनंद और सुख है। इसकी तुलना किसी भी भौतिक सुख से नहीं हो सकती।

मार्क्सवाद : आंबेडकर बुद्ध और मार्क्स की तुलना करते हैं। दोनों में इस बात पर सहमति है कि जीवन दुःख है और दुःख का कारण है वर्गकलह। वर्गकलह को कैसे रोकें और दुःख का क्या उपाय करें। मार्क्स ने वर्गकलह रोकने और दुःख दूर करने के लिए हिंसा का उपाय बताया है। डॉ. आंबेडकर के अनुसार बुद्ध और मार्क्स दोनों दुःख दूर करने के पक्ष में हैं पर दुःख को दूर करने के उपाय के लिए बुद्ध ने पंचशील और अष्टांगमार्ग का सुझाव दिया है। बुद्ध हिंसा के पक्ष में नहीं हैं। बुद्ध शांति के मार्ग से क्रांति समर्थक हैं। वहीं इसके बिलकुल विपरीत मार्क्स हिंसा के मार्ग से क्रांति के समर्थक हैं। आंबेडकरजी को शांति मार्ग पसंद है जो भारतीय धर्म और संस्कृति का अनिवार्य अंग है।

सेकुलर स्टेट : आजकल हर कोई सेकुलर शब्द का अपने-अपने दृष्टिकोण से उपयोग करता है। बाबासाहेब के अनुसार इसका एक स्पष्ट अर्थ है। उनके अनुसार सेकुलर शब्द का इतना ही अर्थ है कि संसद को एक धर्म को दूसरे लोगों पर लादने का अधिकार नहीं है और भारतीय संविधान यह मर्यादा मानता है।

उनके मुताबिक लोगों को अस्पृश्यता और सामाजिक विषमता को धर्मसम्मत मानने वाले हिन्दू धर्म का त्याग करना चाहिए। आंबेडकरजी ने जिस हिन्दू धर्म का अनुभव किया वह विषमता को प्रमाण माननेवाला था। भारतीय समाज में हिंदू धर्म को आधार बनाकर अस्पृश्यता का समर्थन किया गया था जिसके कारण करोड़ों बंधु सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक गुलामी में जीवन व्यतीत करते थे। इसलिए बाबासाहेब का कथन था कि अस्पृश्यता और सामाजिक विषमता को धर्मसंगत मानने वाले हिन्दू धर्म का त्याग करना चाहिए। यहां पर यह बात समझना उचित होगा कि वे निधर्मवादी, अधर्मवादी आदि नहीं थे। धर्म में उनकी गहरी आस्था थी। इसीलिए उन्होंने हिन्दू शब्द का त्याग करके बौद्ध शब्द का प्रयोग किया।

आंबेडकर बुद्धिज्म क्यों चाहते हैं? बाबासाहेब कहते कि उन्हें बुद्धिज्म के तीन तत्व बहुत पसंद हैं: प्रज्ञा, करुणा और समता। बुद्ध सिर्फ मार्गदाता हैं, मुक्तिदाता नहीं। बाकी सभी धर्म मुक्ति दिलाने का दावा करते हैं। मगर बुद्धिज्म में पंचशील और अष्टांगमार्ग का अनुसरण करके जीवन में मंगल, कारुणिक और मैत्रीपूर्ण व्यवहार करके शांति प्राप्त करने का प्रयास करने का आह्वान किया गया है। इससे हर व्यक्ति को मंगल जीवन तथा सामाजिक एकता को भी बल मिलता है। समाज को बचाना धर्म है मगर उसका विनाश करना अधर्म है।

भारत को सर्वोत्तम भेंट : बौद्धधर्म भारतीय संस्कृति का अंग है। यह सत्य और अहिंसा का प्रेरक है। इससे भारतीय संस्कृति और परम्परा का रक्षण होगा। इसीलिए आंबेडकर ने बौद्ध धर्म को स्वीकार किया है।

आदर्श समाज : आंबेडकरजी की दृष्टि से एक आदर्श समाज वह है जहां स्वातंत्र्य, समता, बंधुत्व और सामाजिकता हो। आदर्श समाज को परिवर्तनीय होना चाहिए। उसमें खुलापन हो। मुक्त संवाद व साहचर्य हो। सबके बीच हित का आदान-प्रदान हो। सबका अनुभाव-सहभाव सहयोग हो। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि आंबेडकर ऐसे समाज के निर्माण के लिए कानून बनाने की वकालत भी करते हैं।

लोकतंत्र का मूलमंत्र बंधुत्व है : इसका त्रिसूत्र है: स्वातंत्र्य, समता और बंधुत्व। आंबेडकर की दृष्टि में बंधुत्व ही उच्चतम मूल्य है। बंधुत्व है तो ही समाज में समता तथा स्वातंत्र्य रह सकता है।

शांति, मैत्री और न्याय के माध्यम से हिन्दुत्व वैश्विक शांति का संदेश देता है। प्रज्ञा, शील, करुणा के माध्यम से बौद्धधर्म वैश्विक मैत्री का संदेश देता है। समता, बंधुत्व और न्याय के जरिए लोकतंत्र वैश्विक न्याय का संदेश देता है। हिन्दुत्व की शांति, बुद्धिज्म की मैत्री और लोकतंत्र का न्याय- यह त्रिसूत्रीय संगम हो तो यह विश्व एक नए आदर्श समाज के निर्माण की संभावना बन सकता है। यही आंबेडकरजी का मानना है। ■

(लेखक आंबेडकर विश्वविद्यालय, औरंगाबाद में प्रोफेसर हैं)

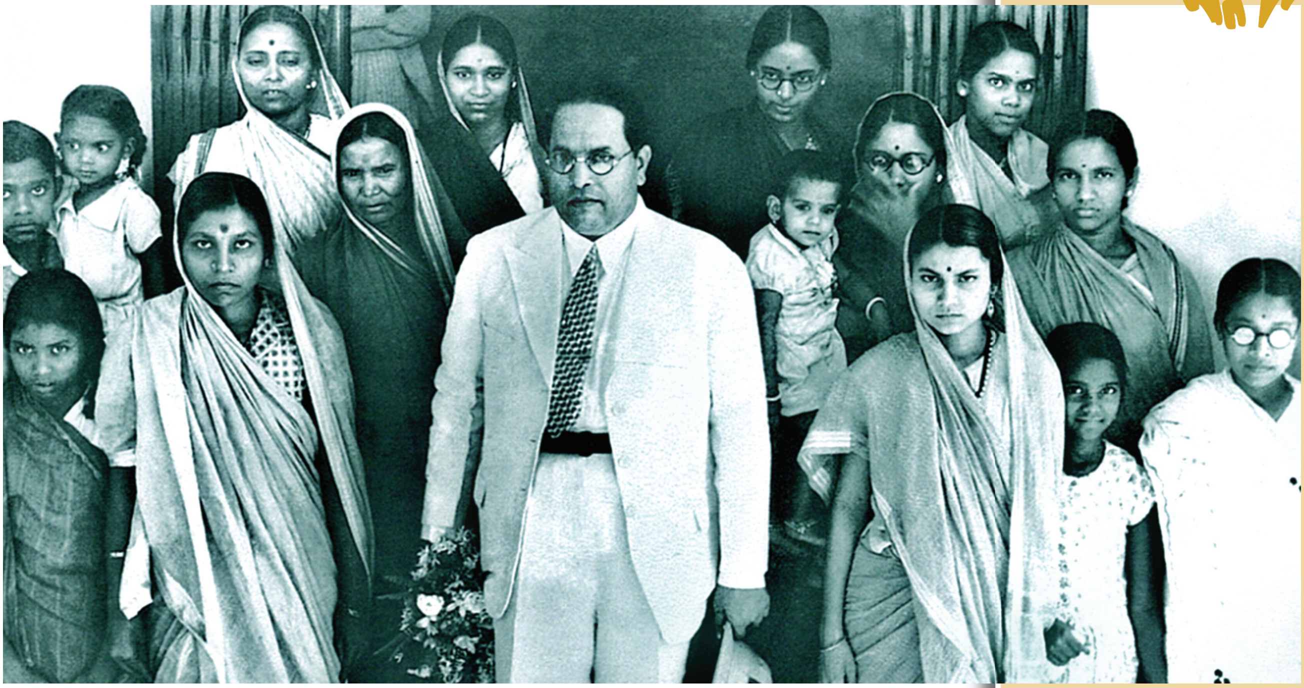

जो मिला, उनका हो लिया

डॉ. मिलिंद शेजवल

जुलाई 1923 को डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर बैरिस्टर होकर विलायत से भारत लौटे। वे अपने वकालत व्यवसाय के साथ-साथ सामाजिक काम और दलितों में जागृति एवं आत्मसम्मान निर्माण करने के कार्य में भी सक्रिय रहे। अस्पृश्य समाज के वे पहले उच्च शिक्षित व्यक्ति थे। समाज उन्हें आदर से देखता था। उनके भाषणों को ध्यान से सुनता था। अपने समाज की सदियों से चली आई हुई कठिनाइयां सिर्फ डॉ. बाबासाहेब दूर कर सकेंगे, ऐसा विश्वास उनके समाज में निर्मित होने लगा। यह विश्वास सिर्फ उनकी महार जाति के लोगों में ही नहीं बल्कि अस्पृश्य कहलाई जाने वाली कई जातियों के लोगों में तेजी से बढ़ने लगा। डॉ. आंबेडकर अस्पृश्यों के और दलितों के मसीहा बन गये। हजारों स्कूलों के बच्चों और युवाओं ने उन्हें अपना आदर्श माना और खुद भी बाबासाहेब की तरह उच्च शिक्षित होने का संकल्प किया। अस्पृश्यों में आत्मसम्मान जगाने के इस महान कार्य में डॉ. आंबेडकर के अस्पृश्य समाज के साथ-साथ स्पृश्य समाज के पढ़े-लिखे अनेक लोग शामिल थे। इन लोगों ने अपने संपूर्ण जीवनकाल में डॉ. बाबासाहेब के सामाजिक और शैक्षणिक कार्य में खुद को समर्पित किया।

24 जुलाई, 1924 को बहिष्कृत हितकारणी सभा की स्थापना हुई। उसके अधिकतम पदाधिकारी सवर्ण समाज के पढ़े-लिखे और संपन्न लोग थे। सर चिमनलाल सीतलवाड अध्यक्ष थे और मेयर नस्सीम जेपी, रुस्तमजी जिनवाला सॉलिसिटर, जी के नरीमन, डॉ. वि.पा. चव्हाण, डॉ. र.पु. परांजपे और बा.ग. खेर उपाध्यक्ष थे। सीताराम शिवतकर- कार्यवाह तो निवृत्ति जाधव कोषाध्यक्ष थे। स्वयं बाबासाहेब कार्याध्यक्ष थे। बहिष्कृत समाज में शिक्षा का प्रसार हो और उनकी सांस्कृतिक एवं आर्थिक उन्नति हो, इस उद्देश्य से संस्था की स्थापना की गई थी। समाज के सवर्ण, संपन्न और आस्था रखने वाले लोगों की मदद के सिवा अछूत वर्ग की उन्नति नहीं हो सकती, ऐसा डॉ. बाबासाहेब का मानना था। अपने सामाजिक और राजकीय जीवन में उन्हें पूरे अछूत वर्ग का साथ तो मिला ही लेकिन सवर्ण वर्ग के भी अनगिनत निष्ठावान सहयोगी थे जिन्होंने अपने जीवनभर डॉ. बाबासाहेब के विचारों का और उनके अछूत उन्नति कार्य का समर्थन किया।

दादासाहेब गायकवाड और डॉ. बाबासाहेब की पहली मुलाकात सन् 1926 में नासिक के शाहू छत्रपति बोर्डिंग में हुई। दादासाहेब वहां सुपरिटेंडेंट थे।

अपने सामाजिक और राजकीय जीवन में उन्हें पूरे अछूत वर्ग का साथ तो मिला ही लेकिन सवर्ण वर्ग के भी अनगिनत निष्ठावान सहयोगी थे जिन्होंने अपने जीवनभर डॉ. बाबासाहेब के विचारों का और उनके अछूत उन्नति कार्य का समर्थन किया।

सौजन्य : नवनीत गोयल, करोलबाग, दिल्ली-110005

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:31 PM Page 70

मैं महिलाओं के संगठन में बहुत ज्यादा विश्वास रखता हूं। यदि इन्हें विश्वास में लिया जाए तो मैं जानता हूं कि समाज में सुधार के लिए वे क्या कर सकती हैं... मैं किसी समाज की प्रगति उसकी महिलाओं की प्रगति के स्तर से मापता हूं।

– **बहिष्कृत वर्ग महिला सम्मेलन,** नागपुर, २० जुलाई, १९४२

युवा दादासाहेब, बाबासाहेब के व्यक्तित्व और विचारों से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने जीवनभर उनकी सेवा में रहने का संकल्प किया।

उन दिनों नासिक रोड को अस्पृश्यों की गतिविधियों का गढ़ माना जाता था और दादासाहेब गायकवाड इन गतिविधियों के मार्गदर्शक थे। नासिक रोड के वाईन डिट्रिलरी कारखाने, इंडिया सिक्यूरिटी प्रेस, करंसी नोट प्रेस और सेंट्रल जेल में अस्पृश्य कामगारों की संख्या लगभग तीन हजार थी। ये सारे कामगार उसी क्षेत्र में सरकारी निवास में अपने परिवारों के साथ रहते थे। इन बस्तियों में दादासाहेब गायकवाड का नियमित रूप से आना-जाना था। हर रविवार को एक कार्यकर्ता के घर पर बैठक होकर उसमें बाबासाहेब के विचारों और कार्यक्रमों की विस्तृत चर्चा होती थी। इस बस्ती में स्काउट पथक और बैंड पथक भी था और वह नियमित रूप से कवायद करता था। कैप्टन बापूराव शेजवल स्काउट पथक को शारीरिक व्यायाम, लाठी-काठी, दांड-पट्टा आदि का प्रशिक्षण देते थे। स्काउट पथक के सदस्यों की संख्या लगभग 500 थी। यह स्काउट पथक कई साल तक डॉ. बाबासाहेब के नासिक प्रवास में उनकी सुरक्षा का काम करता रहा। डॉ. बाबासाहेब जब नासिक रोड स्टेशन पर उतरते थे तो उनका जयजयकार करके जोरदार स्वागत किया जाता था। स्टेशन के बाहर स्काउट पथक और बैन्ड पथक की ओर से गार्ड ऑफ ऑनर दिया जाता था। नासिक रोड से माधवराव अहिरे, गणपत शिंदे, शंकर लोखंडे, किसनराव शेजवल, किसनराव लोखंडे, रामभाऊ जाधव, रघुनाथ भालेराव, सिताराम बर्वे, सीताराम गांगुर्डे, संभाजी सोनावणे, बापू बर्वे, यादव बर्वे, बहणाजी तपासे, अण्णा रिपोटे, धनजी दोंद, जेल रोड के शंकर गायकवाड, देवलाजी कैंप के देवराम डांगले, नासिक शहर के लिंबा मित्री, नानाशेठ चंद्रमोरे, सावलाराम दाणी, तुलसीराम काले, संभाजी रोकडे, अमृतराव रणखांबे आदि सक्रिय आंबेडकर कार्यकर्ता थे। इन सबको सक्रिय करने और संगठन खड़ा करने में दादासाहेब गायकवाड का बड़ा योगदान था।

19 और 20 मार्च, 1927 को महाड़ में कुलाबा जिला बहिष्कृत परिषद का आयोजन किया गया था। इस परिषद के आयोजन में दादासाहेब गायकवाड ने सक्रिय हिस्सा लिया था। बंबई, नागपुर और कोकण घाट से लगभग पांच हजार प्रतिनिधियों ने इस परिषद में हिस्सा लिया। इसमें महिलाओं और छोटे बच्चों का भी समावेश था। इस परिषद में डॉ. बाबासाहेब का स्फूर्तिदायक भाषण हुआ, साथ में ग.भी. सहस्त्रबुद्धे, कमलाकांत चित्रे और सुरभा टिपणीस आदि का भी मार्गदर्शन हुआ। अगले दिन 20 मार्च को चवदार तले का पानी प्राशन करके सत्याग्रह किया गया। पहले डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने चवदार तले का पानी प्राशन किया, उसके बाद अनुयायियों ने उनका अनुकरण किया। उधर महाड गांव में अफवाह फैली कि महार लोगों ने चवदार तले को अपवित्र कर दिया है और वे विरेश्वर मंदिर में प्रवेश करके उसको अपवित्र करने वाले हैं। इस अफवाह के कारण असामाजिक तत्वों ने सभा मंडप पर हमला बोल दिया। महिलाओं और छोटे बच्चों सहित अनेक कार्यकर्ता घायल हो गये। स्थिति काबू के बाहर जा रही थी, ऐसी स्थिति में डॉ. बाबासाहेब और उनके सहयोगियों ने संयम रखा। सभा मंडल में घायल लोगों में कुछ रिटायर्ड सैनिक भी थे जो जान की बाजी लगाकर असामाजिक तत्वों का प्रतिकार कर सकते थे, लेकिन वे डॉ. बाबासाहेब के आदेश की राह देख रहे थे। बाबासाहेब ने उन सबको शांत किया और हिंसा का जवाब ताकत होते हुए भी अहिंसा से दिया गया। 20 मार्च, 1927 के इस सत्याग्रह को अस्पृश्य आंदोलन का नींव का पत्थर माना गया। अगले तीन दशक तक डॉ. बाबासाहेब के नेतृत्व में उनके अनुयायियों ने अनेक सफल आंदोलन किये।

25 दिसम्बर, 1927 को समाज में विषमता फैलाने वाले और अस्पृश्यों पर अन्याय करने वाले मनुस्मृति ग्रंथ का सार्वजनिक दहन किया गया। डॉ. बाबासाहेब के साथ इस सभा में दादासाहेब गायकवाड, गंगूबाई सावंत, एनटी जाधव आदि ने स्फूर्तिदायक भाषण किया। मनुस्मृति के दहन का प्रस्ताव सवर्ण वर्ग के ग.भि. सहस्त्रबुद्धे ने रखा और उसका अनुमोदन पा.ना. राजभोज ने किया।

2 मार्च, 1930 को कालाराम मंदिर सत्याग्रह की शुरुआत हुई। दादासाहेब गायकवाड सत्याग्रह कमिटी के सेक्रेटरी थे। सुबह 10 बजे डॉ. बाबासाहेब की अध्यक्षता में नासिक रोड पर परिषद का आयोजन हुआ। दोपहर 3 बजे सत्याग्रहियों का जुलूस निकला जिसमें 15,000 सत्याग्रही शामिल थे। आगे बैंड पथक, उसके पीछे बांसुरी, शहनाई और तुतारी का घोष, फिर बालवीर पथक और महिला मोर्चा गाने गाते हुए चले। उनके पीछे बैरागी और वारकरी संप्रदाय के सत्याग्रही भजन गा रहे थे। जुलूस का एक छोर गोदावरी पुल के पास था तो अंतिम छोर देवलाली नाके पर था। ऐसा जुलूस नासिक वालों ने शायद पहले कभी देखा नहीं होगा। इस अनुशासनप्रिय जुलूस का सारा श्रेय दादासाहेब गायकवाड और उनके साथियों को जाता है। पुजारियों ने रामजी को मंदिर में बंद कर रखा। जुलूस का रूपांतर महासभा में हुआ। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने सभा को संबोधित किया। इस सत्याग्रह में समाज समता संघ के नेता देवराव नाईक, द.वि. प्रधान, कवली, सहस्त्रबुद्धे, पा.ना. राजभोर, शिवतकर, पतितपावनदास, अमृतराव रणखांबे शामिल थे। सत्याग्रह कई साल चला। रामनवमी के दिन अस्पृश्यों को रथ खींचने को बुलाया गया लेकिन असल में रथयात्रा दूसरे रास्ते से निकाली गई। इससे भगदड़ मच गई और सत्याग्रही भास्करराव कद्रेकर बुरी तरह घायल हुए।

जिन पुजारियों ने 1930 में अस्पृश्यों को राम मंदिर प्रवेश करने से नकारा था, उनके पोतों ने सन् 2005 में समरसता मंच की ओर से निकली समरसता यात्रा की शुरुआत कालाराम मंदिर से करवाई। दादा इदाते जी के मार्गदर्शन और डॉ. सुवर्णा रावल के नेतृत्व में समरसता यात्रा कालाराम मंदिर से शुरू हुई। यह बदलाव 75 साल में आया था। लेकिन इसकी नींव डा. बाबा साहेब और उनके निष्ठावान अनुयायियों ने 1930 में डाली थी।

कालाराम मंदिर सत्याग्रह के दरम्यान डा. बाबा साहेब की जान को खतरा है, ऐसी अफवाहें आने लगीं। ऐसे समय स्काउट पथक के जवानों ने आंखों में तेल डालकर डा. बाबा साहेब की रक्षा की। कालाराम मंदिर सत्याग्रह ने अस्पृश्यों के आत्मसम्मान और आत्मविश्वास को बढ़ाया।

उन दिनों दादासाहेब गायकवाड हर झुग्गी झोंपड़े में और गांव में जाते और लोगों से संवाद बढ़ाते। उनकी कठिनाइयों को सुनते और उन्हें डॉ. बाबासाहेब के कार्य के बारे में बताते थे। उन दिनों अस्पृश्य समाज के कवि गायक अपने गानों का जलसा रखते थे। इन जलसों से वे डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के कार्य का और उनके विचारों का प्रसार करते थे। जलसे में शामिल होने के लिए गांव-गांव में अच्छी भीड़ लगती थी। लोक शायर भीमराव कर्डक इन जलसाकारों में सबसे ज्यादा योगदान वाले शायर थे।

दादासाहेब गायकवाड के मार्गदर्शन में आंबेडकर के अनुयायियों ने नासिक रोड स्टेशन के बाहर एक वाचनालय का निर्माण किया। यह पूरा निर्माण अस्पृश्यों ने अपने श्रमदान से और पैसों से किया। एक ईंट भट्ठे

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:51 PM Page 71

के मालिक फकीर राव ने हजारों ईंटों का दान दिया। कॉन्ट्रेक्टर भवानी बागूल ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। शनिवार, रविवार इन छुट्टी के दिनों में हर कार्यकर्ता ने सहयोग दिया और वाचनालय का निर्माण हुआ। इसका नाम दीनबंधु डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर वाचनालय रखा गया। 1937 में इस वाचनालय का उद्घाटन स्वयं डॉ. बाबासाहेब ने किया था।

इन सभी गतिविधियों के कारण नासिक में और मुंबई प्रेजीडेंसी के बाकी इलाकों के युवकों में जागृति निर्माण के साथ शिक्षा का प्रसार हुआ। हर युवा डॉ. बाबासाहेब को अपना आदर्श मानता था और उनकी तरह उच्च शिक्षा पाने की कोशिश करता था।

डॉ. बाबासाहेब के विश्वस्त सहकारी होने के नाते शेड्यूल कास्ट फेडरेशन पक्ष के संगठन की जिम्मेदारी भी दादासाहेब गायकवाड पर थी। 1952 के सार्वत्रिक चुनाव से पहले उन्होंने पूरे भारत का भ्रमण करके पक्ष कार्य बढ़ाने और राजकीय ताकत बढ़ाने का कार्य किया। 1952 के चुनाव में शेड्यूल कास्ट फेडरेशन को बुरी हार का सामना करना पड़ा। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर बंबई से लोकसभा चुनाव हार गये। उनके कई साथियों को भी हार का सामना करना पड़ा। चुनाव की राजनीति में डॉ. बाबासाहेब और उनकी पार्टी को राजकीय अछूत माना गया। संविधान में 26 जनवरी, 1950 को आरक्षण तो लागू हुआ लेकिन समाज के मन में अस्पृश्यों के लिए और डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के प्रति जो द्वेष छुपा था, चुनाव में प्रकट हुआ। इन सभी चीजों से सबक लेते हुए डॉ. बाबासाहेब ने व्यापक प्रतिनिधित्व वाली रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया के गठन के बारे में सोचना शुरू किया। दुर्भाग्य से इसकी शुरुआत होने से पहले ही उनका महापरिनिर्वाण हो गया। दादासाहेब और अन्य नेताओं ने रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया की स्थापना की लेकिन 1957 में हुए चुनाव के अलावा इस पार्टी को कभी अच्छा यश नहीं मिला। डा. बाबा साहेब के पश्चात हम एक न रह सके और यह प्रक्रिया आज भी चालू है। भूमिहीनों का आंदोलन, मातोश्री रमाबाई छात्रनिवास, नासिक में 10 एकड़ जमीन पर आंबेडकर नगर नाम से अस्पृश्यों की सहकारी सोसायटी का निर्माण, रमाबाई आंबेडकर के नाम से भव्य सभागृह, ऐसे अनेक सकारात्मक कार्य दादासाहेब गायकवाड के हाथ से हुए। लेकिन उनका कांग्रेस के साथ जाना आंबेडकर के अनुयायियों को अच्छा नहीं लगा। 'कांग्रेस एक जलता हुआ घर है' ऐसा डॉ. बाबासाहेब कहा करते थे। दादासाहेब का निर्णय आज गलत लगता है लेकिन उनकी गुरुभक्ति और अस्पृश्यों की उन्नति के बारे में उनका लगाव सौ प्रतिशत सच्चा था। 29 दिसम्बर 1971 को दादासाहेब गायकवाड का निर्वाण हुआ।

दादासाहेब के अलावा अनेक कार्यकर्ता हैं जिन्होंने डॉ. बाबासाहेब के विचारों से प्रेरित होकर अपना पूरा जीवन उनके मिशन के लिए समर्पित कर दिया। इनमें से कुछ का जीवन परिचय और कार्यों का विवरण यहां प्रस्तुत है:

वामनराव गोडबोले- 14 अक्तूबर 1956 को नागपुर में सम्पन्न दीक्षा समारोह की समिति के कार्यवाह थे। जब धर्मांतरण की तारीख 14 अक्तूबर तय हो गई तो शुरुआत में इस समारोह को बंबई में आयोजित करने बात सोची गई थी। बाबासाहेब के विश्वास पात्र नागपुर के समता सैनिक दल के प्रमुख वामनराव गोडबोले और उनके साथियों ने उनसे चर्चा करके दीक्षा समारोह को नागपुर में ही रखने की विनती की। नागपुर बुद्धधर्मीया नाग लोगों की पुण्यभूमि है। वामनराव गोडबोले और उनके सहयोगी ने वहां पर दीक्षा समारोह अच्छी तरह से आयोजित करने की जिम्मेदारी ली। समारोह से दो माह पहले बाबासाहेब ने वामनराव को दिल्ली बुलाकर उनसे दीक्षा समारोह के बारे में विस्तृत रूप से चर्चा की। वामनराव और उनके साथी रेवाराम कवाडे, नारनवरे, नारायण साखरे, पंचभाई, सोमकुवर, तिरपुडे, रायपुरे, रामटेके, शेंडे ने दिन-रात मेहनत करके दीक्षा समारोह का शानदार तारीके से आयोजन किया। लगभग 3 लाख से ज्यादा लोगों ने दीक्षा भूमि पर दीक्षा ली। सभी अनुयाायी सफेद वस्त्र धारण करके दीक्षा भूमि आएं, ऐसा पत्रक भारतीय बौद्धजन समिति ने निकाला था। 3 लाख अनुयायियों ने उस आदेश का पालन किया और एक ऐतिहासिक दीक्षा समारोह संपन्न हुआ। दीक्षा समारोह को सफल बनाने में वामनराव गोडबोले का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

डॉ. बाबासाहेब के महानिर्वाण के बाद वामनराव गोडबोले जी ने लगभग 50 वर्ष तक उनकी स्मृति को जिलाए रखने का महत्वपूर्ण काम किया। उन्होंने नागपुर शहर से 17 किलोमीटर दूर काटोल रोड पर चिंचोली गांव में शांतिवन का निर्माण किया। 14 एकड़ जगह में बसे इस शांतिवन में धर्म प्रसार प्रशिक्षण केन्द्र, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर वस्तु संग्रहालय, बुद्धविहार, विश्रामगृह, प्रिन्टिंग प्रेस और कार्यालय का निर्माण किया गया। इस संग्रहालय में बाबासाहेब के स्पर्श से पावन हुई लगभग 4,000 वस्तुओं का संग्रह है। इनमें दीक्षा समारोह की बुद्ध मूर्ति, बुद्ध एण्ड हिज धर्म नामक ग्रंथ जिस टाईपराइटर से टाईप हुआ था, वो टाईपरायटर, वह पेन, घड़ी, ग्रामोफोन, रेकॉर्डस, छाता, हैट, सूट, जैकेट, कुर्ता जो डॉ. बाबासाहेब इस्तेमाल करते थे, इन सारी चीजों का समावेश है। इन सभी चीजों का ढंग से जतन करना, इन्हें खराब होने से बचाना, उनका नियमित रूप से फ्युमिगेशन करना ये सब काम वामनराव जी जान लगाकर करते थे। इन सब चीजों को भली-भांति सुरक्षित रखने पर काफी पैसा खर्च होता था।

नानकचंद रत्तू- नानकचंद डॉ. बाबासाहेब के वैयक्तिक सहायक थे। व्यक्तिगत सहायक होने के नाते उन्हें बाबासाहेब को नजदीक से देखने का, उनकी सेवा करने का मौका मिला। नानकचंद साये की तरह बाबासाहेब के साथ रहा करते थे। उनके कार्यक्रम निश्चित करना, उनके पत्रों और पुस्तक के निर्माण का नोटेशन लेना, उनसे मिलने आने वाले मेहमानों की देखभाल करना ऐसे कई काम नानकचंद श्रद्धा से करते थे।

अक्तूबर 1956 के दीक्षा समारोह के दौरान डॉ. बाबासाहेब की तबियत अच्छी नहीं थी। उस वक्त नानकचंद उन्हें अपने कंधों का सहारा देकर स्टेज पर लेकर आये। 1 दिसम्बर, 1956 से 5 दिसम्बर 1956 में पांच दिन बाबासाहेब की तबियत अच्छी नहीं थी फिर भी उन्होंने काफी सार्वत्रिक कार्यक्रमों में हिस्सा लिया। 2 दिसम्बर 1956 को आदरणीय दलाई लामा के सम्मानार्थ हुए अशोक विहार के कार्यक्रम में बाबासाहेब उपस्थित रहे। 4 दिसम्बर को वे राज्यसभा में उपस्थित थे। वहां पर उन्होंने कई साथियों से चर्चा की। उस दिन डॉ. बाबासाहेब आखिरी बार

> २ मार्च, 1930 को जिन पुजारियों ने अस्पृश्यों को कालाराम मंदिर प्रवेश करने से रोका था, उनके पोतों ने सन् २005 में समरसता यात्रा की शुरुआत कालाराम मंदिर से करवाई। दादा इदाते जी के मार्गदर्शन और डॉ. सुवर्णा रावल के नेतृत्व में समरसता यात्रा कालाराम मंदिर से शुरू हुई। यह बदलाव 75 साल में आया था। लेकिन इसकी नींव डा. बाबा साहेब और उनके निष्ठावान अनुयायियों ने 1930 में डाली थी।

राज्यसभा गये। इसके बाद घर आकर उन्होंने महाराष्ट्र के दो कांग्रेस विरोधी नेताओं आचार्य प्रह्लाद केशव अत्रे और एस.एम. जोशी को संकल्पित रिपब्लिकन पार्टी में शामिल होने के बारे में लिखने के खत का नोटेशन दिया। 5 दिसम्बर की रात वे जैन प्रतिनिधिमंडल से मिले। इसके बाद नानकचंद ने उनके पैरों की मालिश की, उनके सिर पर तेल लगाया। वे बुद्धम् शरणम् गच्छामि गाने लगे। रात 11 बजे तक नानकचंद उनके साथ थे। उसके बाद वे अपने घर गये और कुछ ही देर बाद बाबासाहेब का नींद में ही महानिर्वाण हुआ। नानकचंद रत्तू को एक महान कर्मयागी की सेवा करने का मौका मिला और उन्होंने यह काम पूरी श्रद्धा से किया।

अस्पृश्य विद्यार्थियों को अच्छी तरह शिक्षा मिले, इस उद्देश्य से डा. आंबेडकर ने पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी की स्थापना की। इसके कार्यकारी मंडल में वी.जी. राव, अ.बा. गजेन्द्रगडकर, आचार्य मो.वा. दोंदे, रावबहादुर के.सी. बोले, डी.जी. जाधव और कमलाकर चित्रे शामिल थे। इस संस्था की ओर से 1946 में सिद्धार्थ कॉलेज ऑफ आर्ट्स एण्ड साइंस की शुरुआत की गई। अस्पृश्य छात्रों की उच्च शिक्षा के लिए सिद्धार्थ कॉलेज बड़ा सहारा था। इन छात्रों के रहने की व्यवस्था चर्नी रोड के छात्रालय और दादर के राजगृह में थी। आगे चलकर पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी का कारोबार काफी बढ़ा। सिद्धार्थ कॉमर्स कॉलेज, मिलिंद कॉलेज, औरंगाबाद का स्कूल 380 एकड़ जमीन में बसा हुआ है। वडाला में आंबेडकर कॉलेज और छात्रालय, महाड में आंबेडकर कॉलेज इन सभी के निर्माण में सवर्ण और अस्पृश्य समाज के आंबेडकर के अनुयायियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा, जिनमें कुछ प्रमुख नाम हैं-

प्रिंसिपल हेमंत कर्णिक- इन्होंने अपनी विद्यार्थी अवस्था में बाबासाहेब को ठाणे रेलवे स्टेशन पर देखा था। वे उनके व्यक्तित्व से इतने प्रभावित हुए कि यह सोचने लगे कि ऐसे व्यक्ति के साथ जीवनभर काम करने का मौका मिला तो कितना अच्छा होगा। कुछ समय बाद वे बाबासाहेब के संपर्क में आये और उन्होंने अपना सारा जीवन बाबासाहेब द्वारा स्थापित शिक्षा संस्थाओं की उन्नति में लगा दिया। उन्होंने ही पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी के सिद्धार्थ कॉलेज को एक अच्छे कॉलेज का दर्जा दिलवाया। वे काफी सालों तक कॉलेज के प्रधानाचार्य रहे। उनके कार्यकाल में सिद्धार्थ कालेज को अकादमिक, सांस्कृतिक और खेल गतिविधियों के लिए अव्वल माना जाता था। उनके बाद के प्रिंसिपल डॉ. जे.वी. देशपांडे और पी.एन. चौधरी ने भी इस कॉलेज को एक अलग ऊंचाई पर ले जाने की कोशिश की।

शंकरराव शेजवल- नासिक रोड पर पढ़ने वाले शंकरराव शेजवल बाबासाहेब के भाषणों से काफी प्रभावित थे। डॉ. बाबासाहेब जैसा उच्च शिक्षण लेने की बात मन में ठान ली। आठ भाई-बहनों में उनका दूसरा नंबर था। पिताजी किसनराव इंडिया सिक्यूरिटी प्रेस में कामगार थे। गरीबी से जूझते हुए उन्होंने मैट्रिक पास किया। 1947 में वे अगली पढ़ाई के लिए सिद्धार्थ कॉलेज में आये। साईंस का छात्र होने के कारण वे नौकरी भी नहीं कर पाते थे। गरीबी से जूझते हुए उन्होंने बी.एससी. डिग्री हासिल की। इस दौरान उन्हें डॉ. बाबासाहेब को नजदीक से देखने-सुनने का कई बार मौका मिला। उनके विचारों से प्रभावित होकर उन्होंने सरकारी नौकरी में न जाते हुए सिद्धार्थ कॉलेज में विद्यादान का पवित्र काम किया। वे 37 साल (1951-1988) तक सिद्धार्थ कॉलेज से जुड़े रहे। वे कैमिस्ट्री के एक अच्छे प्राध्यापक थे। उन्होंने जीवनभर बाबासाहेब की 'चिंतन और अध्ययन' सीख का पालन किया। अपने जीवनकाल में उन्होंने अनेक गरीब विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा के लिए प्रोत्साहित किया और मदद की। 30 दिसम्बर 1996 को उनका निर्वाण हुआ।

विश्वनाथ देवराव गायकवाड- यह पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी से जुड़े और एक निष्ठावान कार्यकर्ता हैं। माटुंगा लेबर कैंप में बचपन गुजारने वाले विश्वनाथ सन् 1959 में मैट्रिक हुए और सिद्धार्थ कॉलेज में दाखिला लिया। डॉ. बाबासाहेब के द्वारा स्थापित विद्यार्थी फेडरेशन के वे अध्यक्ष थे। बीए, बीएड करने के बाद कुछ समय उन्होंने इन्कमटैक्स डिपार्टमेंट में नौकरी की। सन् 1964 में उन्होंने पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी में असिस्टेंट सेक्रेटरी के बतौर नौकरी की शुरुआत की। संस्था का शिक्षा का कारोबार बढ़ाने में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। 1975 में उनका तबादला औरंगाबाद के मिलिंद कालेज में हुआ। उन्होंने इस कॉलेज का विस्तार, उसकी 380 एकड़ जमीन का सरकारी दफ्तर में ठीक रजिस्ट्रेशन करना, उसे अतिक्रमण से बचाना आदि महत्वपूर्ण काम किये। बीएड कालेज, शारीरिक शिक्षण कॉलेज, इंजीनियरिंग कॉलेज आदि के निर्माण में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। आज 10,000 छात्र स्कूल से लेकर कॉलेज तक की शिक्षा वहां से ले रहे हैं। 1990 में वे सेवानिवृत्त हुए। उसके पश्चात उन्होंने परेल में नाईट हाई स्कूल का निर्माण किया और माटुंगा लेबर कैंप में प्रौढ़ शिक्षा वर्ग शुरू किया। 2001 में उनका निर्वाण हुआ।

14 अक्तूबर 1956 को पांच लाख अनुयायियों के साथ डॉ. आंबेडकर ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। उनमें राजकोट जिले के 5 गुजराती भाषिक अनुयायी शामिल थे। भीम बाघा रावलिया मोजा बाप्पा, सोम्दावार मूलदास बापू, धर्मबंधु और पागलबापा इन्होंने नागपुर में दीक्षा ली। भीम बाप्पा रावलिया बौद्ध धर्म के कट्टर समर्थक रहे। उन्हें परमार गुरुजी के माध्यम से डॉ. बाबासाहेब की सेवा करने का मौका मिला इसलिए वे खुद को भाग्यशाली समझते थे। हाल ही में सौराष्ट्र में अनेक भाइयों ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। उस कार्यक्रम में भीम बाप्पा के सुपुत्र सक्रिय थे।

हां, आखिरी अनुयायी जरा अलग है। मार्च 1939 में सोनबा येलवे पनवेल के एक-छोटे से होटल में लकड़ियां तोड़ने का काम करता था। वह दोपहर को काम खत्म करके होटल के सामने झाड़ के नीचे आराम कर रहा था। इतने में एक मोटरगाड़ी वहां रुकी। गाड़ी से गडकरी वकील बाहर निकले और उन्होंने होटल के सवर्ण मालिक को दो चाय का आर्डर दिया और वहां पानी पीकर गाड़ी में बैठे डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर को पानी देने को कहा। होटल मालिक ने जवाब दिया, 'डॉ. आंबेडकर अछूत है। उन्हें पानी नहीं दूंगा।' यह सुनकर बाबासाहेब की आंखों में आंसू आ गए। बिना कुछ कहे वे और गडकरी वकील वहां से निकल गये। सोनबा येलवे यह सब देख रहा था। वह भागते हुए अपने घर गया और वहां से घड़े में पानी भरकर लेकर आया। तब तक डॉ. बाबासाहेब की गाड़ी दूर चली गई थी। सोनबा इस घटना से व्यथित हो गया। डॉ. बाबासाहेब को दलित समाज भगवान मानता है, उनके फोटो की पूजा करता है, ऐसे बाबा साहेब का एक गिलास पानी के लिए अपमान हुआ, यह उससे बरदाश्त नहीं हुआ। फिर से ऐसा अपमान न हो, इसलिए वह रोज सुबह से शाम तक पानी का घड़ा लेकर होटल के सामने बैठा रहता था। उसने काम-धंधा छोड़ दिया था। दिल में एक ही इच्छा थी कि अगली बार डॉ. बाबासाहेब यहां से गये तो पानी के लिए उनका अपमान न हो। दिन बीते, महीने बीते, साल बीते लेकिन वो दिन आया नहीं कि सोनबा अपने बाबासाहेब को पानी पिला सके। इस दौरान उसकी तबियत गिरती गई, लोग उसे पागल समझने लगे, लेकिन सोनबा ने घड़े में पानी लेकर डा. बाबासाहेब की राह देखना नहीं छोड़ा। यह सिलसिला 7 साल चला। फरवरी 1946 में सोनबा येलवे का निर्वाण हुआ। धन्य हैं डॉ. बाबासाहेब और धन्य हैं उनके निष्ठावान अनुयायी। ■

(लेखक पेशे से चिकित्सक और मुंबई प्रदेश भाजपा अनुसूचित जाति मोर्चा के अध्यक्ष हैं)

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:52 PM Page 73

राष्ट्रपिता और देश के बाबा

डॉ. सुवर्णा रावल

भारत का भविष्य तय करने में जिनकी भूमिका अहम रही है उनमें राष्ट्रपिता गांधी और भारतरत्न डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर का नाम अग्रगण्य है। भारतवर्ष एवं विदेशों में भी इन दोनों व्यक्तित्वों का प्रभाव है। इन दोनों के जीवन से प्रेरणा लेने वाला समाज अलग-अलग है। गांधीजी का नाम भारत के स्वतंत्रता संग्राम के साथ जोड़ा जाता है, वहीं आंबेडकरजी का नाम भारतीय समाज की मूल व्याधि- अस्पृश्यता निवारण, सामजिक न्याय, स्वातंत्र्य, समता, बंधुता के प्रणेता होने के नाते इनके साथ जोड़ा जाता है। गांधीजी के स्वातंत्र्य आंदोलन का पथ क्षेत्र राजकीय था तो डॉ. आंबेडकरजी का भारत को दलित शाप से मुक्त करने का पथ क्षेत्र सामाजिक था। गांधीजी प्रस्थापितों के प्रतिनिधि थे तो डॉ. आंबेडकर दलितों के प्रतिनिधि माने जाते थे।

सद्यस्थिति में भी इन दोनों व्यक्तित्वों के विविध पहलुओं को चर्चा का विषय बनाया जाता है। जहां सवर्ण समाज के विचारवंतों का झुकाव गांधीजी की तरफ है वहीं दलित विचारवंतों का झुकाव डॉ. बाबासाहेब की तरफ होता है। दलित विचारवंत डॉ. बाबासाहेब का विचार रखते समय आक्रमकता के भाव मोड़ पर आते-आते ममत्व, अत्यधिक आदर, जीवन प्रेरणा के आधार भाव में बदल जाते हैं। उसमें भावुकता की लय होती है। डॉ. बाबासाहेब को, उनके विचारों को सही समय पर न्याय नहीं मिला, इसका दुःख उनकी वाणी में होता है। इस दुः ख का परिणाम रोष में दिखाई देता है।

गांधीजी ने कांग्रेस नामक आंदोलन का नेतृत्व किया। वे खुद धार्मिक वृत्ति के थे। सनातनी हिंदू थे, चातुर्वर्ण्य को मानने वाले थे। अस्पृश्यता की वजह से हिंदू समाज खोखला हो गया था, टुकड़ों में बंटा हुआ था। लेकिन इस वास्तविकता से निपटना उनका प्रधान कार्य नहीं था। उनका विश्वास था कि अस्पृश्यों की समस्या देश की अंदरूनी समस्या है, जिसे देश की स्वतंत्रता के बाद सुलझा लिया जाएगा। सर्वसाधारण समाज में भी यही सोच थी। गांधीजी के व्यक्तित्व का प्रभाव और अपनापन सर्वत्र माना गया है। डॉ. आंबेडकरजी का भी प्रभाव सर्वत्र है, लेकिन अपनापन ज्यादातर दलित समाज में है।

सभी सामाजिक संगठन गांधीजी को जानते भी हैं और मानते भी हैं। परंतु कार्य के आधार स्तर पर गांधीजी के जीवन के प्रभाव की तुलना में उनके कार्य का प्रभाव ज्यादा होता है। देश का कोई भी सर्वजन समावेषक संगठन डॉ. आंबेडकरजी के विचारों से परे चल ही नहीं सकता। डा. आंबेडकर के विचार, उनकी सोच और उनका दर्शन विविध सामाजिक घटकों के बीच काम करने वाले और सामाजिक न्याय के लिए लड़ने वाले संगठनों का आधार, प्रेरणा और चयन हैं।

ऐसी परिस्थितियों में एक मान्यता समान है कि गांधीजी और आंबेडकर दोनों ही राष्ट्रपुरुष हैं। राष्ट्रहित ही दोनों का लक्ष्य था लेकिन विषयों के प्राधान्य क्रम में फर्क था और देश की सामाजिक स्थिति को समझने का तरीका अलग-अलग था।

डॉ. आंबेडकर अस्पृश्य समाज में जन्मे थे। भीमराव से बाबासाहेब बनने का उनका सफर बहुत ही क्लेशकारी, रोमांचकारी और आश्चर्यजनक है। मुझे हमेशा लगता रहा है कि इस सफर में बाबासाहेब के बचपन में आए कुछ प्रसंगों से उनके मन में इन विषयों का बीजारोपण हुआ और आगे जिंदगी में उनके जीवन का यही लक्ष्य दृढ़ हुआ। उनके मन में अपने बचपन को लेकर यह प्रश्न आया कि अस्पृश्य व्यक्ति और अन्य समाज के व्यक्ति में क्या फर्क है? ईश्वर ने तो इस भूतल पर भेजते वक्त सभी इन्सानों को समान स्वरूप देकर भेजा है, फिर क्या फर्क है मुझमें और अन्य बच्चों में तथा मुझमें और अन्य व्यक्ति में? उन्होंने इस प्रश्न का उत्तर ढूंढ़ा। बाबासाहेब ने शिक्षा, प्रज्ञा, ज्ञान प्राप्त करने हेतु असंख्य अवसरों पर भूख, कष्ट झेलकर अपार, अविरत कष्ट- प्रयासों से अव्वल दर्जा प्राप्त किया। उच्च विद्याविभूषित होकर लंदन से लौटने के

आंबेडकर और गांधीजी दोनों ही राष्ट्रपुरुष हैं। राष्ट्रहित ही दोनों का लक्ष्य था, लेकिन दोनों की प्राथमिकताएं भिन्न थीं। गांधीजी देश की स्वतंत्रता को प्राथमिकता देते थे और आंबेडकर अस्पृश्यों की समस्या को अनुभूत करते थे

सौजन्य : गोपाल अग्रवाल, नोएडा, उत्तर प्रदेश

बाद भी उनके हिस्से में अपमानित जिंदगी आई, तब बाबासाहेब की सहनशीलता का बांध टूट गया। उनकी आंखों में आंसू आए, उन्होंने खुद से प्रश्न पूछा कि मैं अस्पृश्य समाज में जन्मा हूं, केवल इस कारण उच्च विद्याविभूषित व्यक्ति का यह हाल है तो मेरे समाज के लाखों अनपढ़, गंवार भाई-बहनों का क्या हाल होगा? यहां जानवरों को सम्मान मिलता है और अस्पृश्य मानवों के साथ उनसे बदतर व्यवहार किया जाता है।

यह पृष्ठभूमि डॉ. बाबासाहेब के सामाजिक कार्यों की, आंदोलन वृत्ति की विषय सूची तैयार होने की है। इन विषयों पर जब भी मैं बोलती, लिखती हूं, तो मेरे हृदय में पीड़ा- यातना होती है। बार-बार मेरा हृदय रो पड़ता है। डॉ. बाबासाहेब ने अपने जीवन में जिन विषयों को प्रधानता देते हुए अपनी कार्य सूची निर्धारित की, वह भारतीय समाज की जड़ हो चुकी मूल व्याधि के निवारण की विषय सूची थी। उनका प्रयास अपने संपूर्ण भारतीय समाज को, संपूर्ण सामाजिक दृढ़ता को पुष्ट करने का था। उन्होंने समाज को निष्कलंक करने का यशस्वी प्रयास किया।

गांधीजी ने 1920 में एक साल में स्वराज्य की मांग की घोषणा करके ब्रिटिश शासन से असहकार का नारा दिया। सुराज्य के ध्येय को लेकर स्वातंत्रता प्राप्ति के आंदोलन से देश के प्रत्येक व्यक्ति को जोड़ने का गांधीजी का प्रयास अद्‌भुत था। उस समय सभी नेता कांग्रेस से जुड़े थे। कारण-कांग्रेस ही स्वतंत्रता प्राप्ति के आंदोलन का एकमात्र संगठन था। स्वतंत्रता पूर्व कांग्रेस एक राष्ट्रीय प्रवाह था, जिसका नेतृत्व गांधीजी कर रहे थे। इसी कांग्रेस को हिंदू आंदोलन के नजरिए से देखा जाता था। डॉ. बाबासाहेब जिन लोगों से संघर्ष कर रहे थे, वे सभी प्रस्थापित कांग्रेस के सदस्य थे। गांधीजी खुद संवेदनशील, धार्मिक वृत्ति के सनातनी हिंदू थे। चातुर्वर्ण, जाति प्रथा के संबंध में गांधीजी की धारणा थी कि 'चार वर्णो के अतिरिक्त वर्ण नहीं है। वर्ण जन्म से ही तय होता है जो, जिस वर्ण में जन्मा वह उसी वर्ण में मरेगा, जो अपने वर्ण का पालन नहीं करेगा वह शूद्र योनि में जन्मेगा। वर्णाश्रम मानवीय प्रकृति का ही भाग है, हिंदू धर्म ने उसे शास्त्र का स्वरूप दिया है, कोई भी व्यक्ति अपने मन से वर्ण नहीं बदल सकता, जो व्यक्ति अपने जन्म के वर्ण का पालन नहीं करता इसका मतलब है कि वह अपनी आनुवंशिकता को अमान्य कर रहा है।'

इस विचार के बावजूद दक्षिण अफ्रीका में वहां के हिंदू बांधवों को वर्ण भेद की तकलीफ सहनी पड़ रही थी, उससे गांधीजी व्यथित हुए थे। 22 मई, 1894 को नैटाल इंडियन कांग्रेस की स्थापना हुई। गांधीजी उसके कार्यवाहक अध्यक्ष थे। इस नाते उन्होंने वहां की विधानसभा और विधान परिषद के सभासदों को एक खुला पत्र लिखा। उसमें उन्होंने लिखा था, 'वर्णभेद के कारण यहां के हिंदी लोगों को जो तकलीफ, कठिनाई सहनी पड़ रही है उसके बारे में तकरार स्वरूप निवेदन किया था।' इस पर गोरे लोगों की अलग-अलग प्रतिक्रिया आई थी। उसी में एक खुला पत्र आया था, जिसमें लिखा था कि गोरे लोग हिंदी लोगों पर जो अन्याय कर रहे हैं, उसका कोई समर्थन नहीं कर सकता, अफ्रीका में उदारमतवादी लोग भी हैं। उनको आपके पत्र का निवेदन मान्य होगा ही, लेकिन हिंदुस्तान में उच्च वर्गो के लोगों निचले वर्ग के लोंगो के साथ कैसा व्यवहार कर रहे हैं? शूद्रों के साथ कैसा व्यवहार किया जा रहा है? पत्र लेखक ने लिखा कि पहले अपने देश के बांधवों को न्याय का पाठ पढ़ाना चाहिये और उसके बाद दूसरे देश के गोरे लोगों को उपदेश देना चाहिए। यह पत्र पढ़कर गांधीजी एकदम अंतर्मुखी बन गए थे। विरोधियों के प्रतिपादन में तथ्यांश हो, तो उसे स्वीकार करना गांधीजी की स्वाभाविक वृत्ति थी, उन्होंने उसी समय से अस्पृश्यता की रूढ़ि को समूल नष्ट करने का निश्चय किया, लेकिन यह विषय उनकी कार्यसूची में अग्र क्रम का विषय नहीं था। गांधीजी पापक्षालन हेतु जीवन भर अपने आश्रम में व्रतस्थी भावना से भंगीकाम करते रहे। गांधीजी की विचारसृष्टि का आधार सत्य और अहिंसा के मूलभूत तत्व थे।

गांधीजी और डॉ. आंबेडकर दोनों विभूतिपूजा में विश्वास नहीं रखते थे। राष्ट्र निर्माण में गांधीजी के योगदान को कोई नकार नहीं सकता, विवाद तो उनके ईश्वर, प्रार्थना, अंतर्नाद , व्रतग्रहण, पापक्षालन, उपोषण ऐसे धार्मिक विचारों का जिक्र उनकी लेखनी में होने पर है।

डॉ. आंबेडकर के व्यक्तित्व और विचारों में वैज्ञानिक निष्ठा, उद्योग प्रधानता और आधुनिक संस्कृति का समाहित दृष्टिकोण था। उन्होंने देश-विदेश में रहकर शिक्षा ली थी, चिकित्सक वृत्ति और भारत के प्रति समर्पित भाव होने के कारण उनके मन में यही विचार होता था कि मेरे भारत के सभी लोग ऐसे विकसित जीवन का अनुभव लें। उन्हें अनेक विषयों का अभ्यास था, उनमें समाजशास्त्र सबसे रुचि वाला विषय था। इसके साथ उन्होंने अर्थशास्त्र, राज्यशास्त्र, मानवविज्ञान, इतिहास, तत्वज्ञान, कार्य पद्धति इत्यादि विषयों का ज्ञानार्जन किया था, इसीलिए उनके मन में देश के भविष्य का जो चित्र था, वह विविध अंगों से विचारोस्थित था। उनके कार्यों में देश के प्रति, दलित जनता के प्रति मातृभाव और स्पष्ट दृष्टिकोण झलकता था। कोई भी व्यक्ति जो आंबेडकरजी के विचारों का, आंदोलनों का गहराई से अध्ययन करता है, उसे डॉ. आंबेडकरजी के सामाजिक तत्वों में मग्न होने का एहसास होता है। स्वातंत्र्यवीर सावरकर जी ने एक व्याख्यान में कहा था 'अस्पृश्य समाज में जन्म के कारण उनके स्वभाव में ही स्नेह-प्रेम, जिद और कट्टरता दिखाई देती है, यह गुण हम जैसे सवर्णो में जन्मे लोगों में कभी दिखाई नहीं देगा।' सावरकरजी ने डॉ. आंबेडकरजी के हर आंदोलन की सराहना की, और लोगों को अस्पृश्यता भाव से मुक्त करने पर तीखे शब्दों में अपना निषेध समय-समय पर व्यक्त किया है।

> ...ब्रिटिश सरकार ऐसी नहीं है जो सिद्धांतों के अनुसार काम करे। वे पक्के व्यापारी हैं, वे हर किसी को जो भी आता है और स्वतंत्रता की मांग करता है, स्वराज नहीं देने वाले।
>
> **- बाबासाहेब**
>
> बहिष्कृत वर्ग परिषद सम्मेलन, धारवाड़, दिसंबर 1929

दलितोत्थान को लेकर आंबेडकरजी का दृष्टिकोण एकदम स्पष्ट था। वे कहते थे, 'दलितोन्नति का कार्य राष्ट्रकार्य है। देश के एक पंचमांश जनसमूह को विकलांग (सामाजिक रूढ़ि से) रखना देशहित और विकास में बाधक होगा। हिंदू धर्म की अस्पृश्यता रूढ़ि का असर मुसलमान, क्रिश्चियन आदि धर्मों पर भी हुआ है। इस प्रथा का समूल उच्चाटन होने से समाज में संगठित शक्ति को पुष्टि मिलेगी, उसके अलावा अन्य धर्मावलंबियों की मनोवृत्ति में भी फर्क आ जाएगा। मेरे कार्य की प्रेरणा केवल तात्कालिक देशहित नहीं है, वह भारत की मूलगामी सामाजिक क्रांति से जुड़ी है। यह व्यक्ति-व्यक्ति के संबंधों की स्वतंत्रता, समता और बंधुभाव इन तत्वों को दृढ़ करने वाला है। अस्पृश्यता निवारण का हमारा कार्य सामाजिक क्रांति का पहला कदम है। दलित मुक्ति आंदोलन समता प्रस्थापित करने के लिए था। इसके लिए उन्होंने प्रतिकार और बहिष्कार दोनों मार्गों का अवलंबन लिया।

बाबासाहेब के जीवन में आंदोलनों का विशेष महत्व है। उन्होंने जितने भी आंदोलन चलाए, उनका मूलतत्व सामाजिक न्याय था। वे कहते थे कि हमारा कार्यक्रम सवर्णों द्वारा जातीय भावना के आधार पर दलितों पर (अस्पृश्यों पर) जो अन्याय होता है उसे दूर (नष्ट) करने हेतु है। इसमें किसी को जातीयता का रंग दिखाई देगा। इसमें दिखाई देने वाली जातीयता संरक्षक स्वरूप की है। हमारी मांग समान अधिकारों की है, अपितु हमारा झगड़ा विशेषाधिकार के तत्व के विरुद्ध है। हमें ज्ञात है कि महाड के तालाब के पानी में कोई अमृत नहीं है, जिसे प्राप्त करने के लिए अस्पृश्य आतुर हैं। इसी तरह कालाराम मंदिर प्रवेश हमारी स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु है। उससे कोई मोक्षप्राप्ति नहीं होने वाली है। हम इस देश के नागरिक हैं, हिंदू समाज के घटक हैं। इसलिए सवर्ण समाज को जैसे सार्वजनिक स्थानों पर मुक्त व्यवहार की अनुमति है, वैसी ही अनुमति अस्पृश्यों

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:52 PM Page 75

को भी मिलनी चाहिए। उन्होंने गोलमेज परिषद में अस्पृश्यों के लिए अलग मतदाता संघ की मांग की, जिस पर गांधीजी को सख्त ऐतराज था। गांधीजी राजकीय धुरंधर थे तो डॉ. आंबेडकर सामाजिक क्रांति के अग्रणी थे, मसीहा थे। इस बात को लेकर गांधीजी और आंबेडकरजी में मतभेद हुए। गांधीजी के अनशन और आंबेडकरजी के आग्रह पर पूरे देश में चर्चा चल रही थी। गांधीजी के अनशन के कारण पूरे देश में चिंता का वातावरण था। लोग बाबासाहेब पर लांछन लगा रहे थे। गांधीजी के प्राणों के लिए डॉ. आंबेडकर ने स्वतंत्र मतदार संघ (मतदाता संघ) का अपना आग्रह वापस ले लिया।

'येरवडा करार को पुणे करार के नाम से भी जाना जाता है। गांधीजी का येरवडा जेल में अनशन समाप्त हुआ, लेकिन डॉ. आंबेडकरजी के स्वतंत्र मतदार संघ की मांग पर गांधीजी के मन में विचार मंथन चलता रहा। दलित वर्ग परिषद के माध्यम से भी इस विषय पर चर्चा होती रही। इसी के परिणामस्वरूप गांधीजी ने येरवडा जेल से सम्युअल होअर को जो पत्र लिखा था, उसमें वे लिखते है, 'मैं अस्पृश्यों को विधिमंडल में प्रतिनिधित्व देने के विरुद्ध नहीं हूं। मैं सभी प्रौढ़ व्यक्तियों का मताधिकार न होते हुए भी अस्पृश्य समाज में से हर एक प्रौढ़ व्यक्ति का नाम, उसकी शिक्षा, संपत्ति का प्रश्न उपस्थित न करते हुए उसका नाम मतदाताओं की सूची में समाविष्ट करने के लिए अनुकूल हूं। परंतु हिंदू समाज से यह जनसमूह ना हटे इसलिए मेरा यह आग्रह है।' यहां कोई भी यह सोच सकता है कि बाबासाहेब की स्वतंत्र मतदार संघ की मांग के बदले यह गांधी द्वारा चुकाई गई कीमत है।

इससे यह ज्ञात होता है कि डॉ. आंबेडकर और गांधीजी दोनों के मन में हिंदू समाज की एकजुटता के लिए विविध तरह के विचार थे और दोनों ने इसके लिए अथक प्रयास किया। इन दोनों महापुरुषों में एक और समानता थी। धर्म के प्रति निष्ठा। धर्म हमारे समाज और शासन का मूल आधार है, इस तथ्य को लेकर उनमें एकवाक्यता थी।

> दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद का विरोध करने वाले गांधीजी को किसी के भेजे उस खुले पत्र ने अंतर्मुखी बना डाला था, जिसने शूद्रों के प्रति सवर्णों के व्यवहार पर सवाल उठाया था। गांधीजी ने अस्पृश्यता की रूढ़ि को समूल नष्ट करने का निश्चय किया, और उसे आजीवन निभाया

धर्मातंर्गत विचारों में गांधीजी का अधिष्ठान दलितपूरक नहीं था तो डॉ. आंबेडकरजी का धर्म विचार सवर्ण हिन्दुओं के लिए प्रेरणास्पद नहीं था। गांधीजी के वर्णाश्रम और जाति प्रथा से जुड़े विचार डॉ. आंबेडकरजी को मान्य होना संभव नहीं था। वे वर्णाश्रम और जातिप्रथा के विरोधी थे। 'कांग्रेस और गांधीजी ने अस्पृश्यों के लिए क्या किया' शीर्षक ग्रंथ में बाबासाहेब ने गांधीजी के मतों का खंडन किया है, वे लिखते हैं, 'गांधीवाद का सामाजिक आदर्श जाति पद्धति और वर्ण पद्धति में से एक है। इसमें से कौन-सा आदर्श गांधीवाद को चाहिए यह कहना कठिन है। लेकिन सामाजिक आदर्श लोकशाही नहीं है, इसमें कोई दो राय नहीं है। क्योंकि जाति और वर्ण-पद्धति की लोकशाही से तुलना करेंगे तो यह ध्यान में आएगा कि यह दोनों पद्धतियां लोकशाही विरोधी हैं।' सो, गांधीवाद अस्पृश्यों के लिये आशा निर्माण नहीं कर सकता। इसकी पुष्टि में डॉ. बाबासाहेब लिखते हैं कि गांधीवाद अस्पृश्यों के लिए काली कोठरी जैसा है।

'अस्पृश्यता हिंदू धर्म पर कलंक है' गांधीजी के इस विचार का डॉ. आंबेडकरजी ने अपने 'मुक्ति कोन पथे' भाषण में जिक्र किया है। कुछ लोगों का कहना है कि अस्पृश्यता हिंदू धर्म पर कलंक है। लेकिन इन बातों का कोई मतलब नहीं। दुर्भाग्य यह है कि एक भी हिंदू यह नहीं मानता कि हिंदू धर्म कलंकित है। इस कलंक को साफ करने का काम अस्पृश्यों को ही करना पड़ेगा।' इस तरह डॉ. बाबासाहेब ने अस्पृश्यों में आत्मसम्मान, अस्मिता, आत्मभान जागृति का काम किया। गांधीजी ने अस्पृश्यों को आत्मशुद्धि की सलाह दी थी। डॉ. बाबासाहेब ने बहिष्कार का शस्त्र प्रयुक्त किया। डॉ. आंबेडकर गांधीजी के दिए हुए हरिजन शब्द का निषेध कड़े शब्दों में किया और उसे नकारा।

स्पृश्य-अस्पृश्य लोगों में व्याप्त भेदभाव को मिटाने हेतु बाबासाहेब ने अनेक उपाय सुझाए। उनका विचार था कि एकतरफा अस्पृश्यता निवारण से सुदृढ़ वातावरण निर्मित नहीं हो सकता। सवर्ण समाज के मन में अस्पृश्यों के प्रति घृणा न हो। अस्पृश्यों के मन का डर दूर होना चाहिए। आत्मविश्वास निर्माण व्यक्ति-व्यक्ति में परस्पर संबध और इस भावना की पुष्टि के लिए सहवास का निर्माण होना चाहिए। सार्वजनिक स्तर के वातवरण में भी बदलाव लाना जरूरी है। इसके लिए सार्वजनिक स्तर पर अस्पृश्यों से मुक्त व्यवहार होने जैसा वातावरण निर्मित करने की आवश्यकता है।

अगर हम सूक्ष्म स्तर पर गांधीजी और डॉ. आंबेडकरजी के विचारों और व्यवहार का आकलन करें तो ध्यान में आता है कि दोनों प्रखर राष्ट्रनिष्ठ थे। दोनों को देश की सामाजिक कुरीतियों का गहन आकलन था। सामाजिक न्याय दोनों की सूची में प्रथम स्थान पर था, लेकिन उसका कार्य कारण भाव भिन्न था। सामाजिक स्तर के सभी विषयों को लेकर उनमें मतभिन्नता था। गांधीजी राजकीय पथ के लीडर थे तो डॉ. आंबेडकर ज्ञान और सामाजिक पथ के लीडर थे। दोनों एक दूसरे की श्रेष्ठता को जानते थे। गांधीजी को सर्वस्तर और धनिक लोगों से सभी प्रकार का बल मिला था। वहीं बाबासाहेब ने सर्वसामान्य समाज के एक-एक व्यक्ति के मन में अपने ज्ञान और कार्यशैली से, उत्तेजना और आशा का निर्माण किया एवं समाज से बल कमाया।

गांधीजी और आंबेडकर एक-दूसरे की श्रेष्ठता को जानते थे। इसी कारण 1935 में कालाराम मंदिर प्रवेश के आंदोलन के अंत में गुस्से में डॉ. बाबासाहेब ने घोषणा की थी- 'मैं हिंदू के नाम से जन्मा हूं लेकिन हिंदू रह कर मरूंगा नहीं।' इस घोषणा से सारा देश हड़बड़ा गया था। समाज के अलग-अलग तबकों में गुस्सा, द्वेष, क्लेश, अवहेलना, डर , नाराजगी का माहौल बन गया था। गांधीजी ने डॉ. आंबेडकरजी को समझाया, संयम बरतने को कहा। अस्पृश्यों के आत्मसम्मान के लिए पूरा सहयोग देने का वचन दिया। डॉ. आंबेडकरजी ने भी गांधीजी को वचन दिया कि मैं हिंदू धर्म छोड़ूंगा लेकिन उसका कम से कम नुकसान हो, ये जरूर ध्यान में रखूंगा। डॉ. आंबेडकरजी ने वचन का पालन किया और जब उन्होंने नागपुर दीक्षा भूमि में अपने अनुयायियों के साथ धम्मदीक्षा ली तब उन्होंने यह कहा कि मैंने गांधीजी को दिए वचन का पालन किया।

गांधीजी भी डॉ. आंबेडकरजी के ज्ञान, बड़प्पन को गहरे जानते थे। ब्रिटिश इस देश से चले गए। देश स्वतंत्र हो गया। अपने देश को खुद के संविधान निर्माण की बात आई। पं.नेहरू, सरदार पटेल आदि लोगों के सामने यह प्रश्न था कि देश का संविधान कौन लिखेगा। बाहर के देश से विद्वान बुलाने की तैयारी चल रही थी। गांधीजी के ध्यान में बात आई। उन्होंने पं.नेहरू से पूछा कि इतने बडे देश में आपको ऐसा विद्वान दिखाई नहीं देता जो अपने देश का संविधान लिख सके। यह कहकर उन्होंने बैरिस्टर डॉ. आंबेडकरजी के नाम का सुझाव दिया और कहा, डॉ. आंबेडकर लिखेंगे अपने देश का संविधान। बाबासाहेब भी गांधीजी के विश्वास पर खरे उतरे। उन्होंने दिन रात एक करके इस देश के आगे का रास्ता तय किया। उनके मन में इस देश के लोगों के प्रति जिस उज्जवल भविष्य का सपना था उसके लिये उन्होंने एक ब्लू प्रिंट तैयार किया या कहें कि कालबाह्य मनुस्मृति उन्होंने जलाई थी। नयी मनुस्मृति या कहें, भीमस्मृति का निर्माण किया। इस भीमस्मृति की वजह से आज तक देश अनेक संकटों से बचा है। इस लोकतांत्रिक देश को बाबासाहेब ने संविधान देकर उपकृत किया है। ■

(लेखिका भटके विमुक्त विकास परिषद, महाराष्ट्र की अध्यक्ष हैं)

वे आज भी दिखाते हैं राह

डॉ. रामशंकर कठेरिया

डॉ. आंबेडकर ने जीवन के कई बिंदुओं से जुड़े विभिन्न विषयों पर देश की जनता और सरकारों को कई रचनात्मक सुझाव दिए हैं। इनमें शिक्षा से लेकर सिंचाई तक लगभग सभी पक्ष शामिल हैं। डॉ. आंबेडकर के इन सुझावों की समीक्षा की जानी चाहिए।

भारत रत्न बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर सही अर्थों में कालजयी युगदृष्टा थे। आज के दौर में सामाजिक, राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में जो गंभीर समस्याएं और विडम्बनाएं हमारे सामने हैं, उनके कारगर समाधान बाबासाहेब के चिंतन में मौजूद हैं। खेद है कि उनके चिंतन को कभी व्यापक दृष्टि से नहीं देखा गया। उन्हें भी जातिवादी चश्मे से देखकर उनका अधिमूल्यन अथवा अवमूल्यन किया गया। यदि उनके व्यक्तित्व चिंतन और साधना का राष्ट्रीय सन्दर्भों में मूल्यांकन किया जाता तो हम अपनी बहुत सी गंभीर समस्याओं का समाधान प्राप्त कर सकते थे। बाबासाहेब समय-समय पर अपने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शिक्षा-सम्बन्धी विचारों से समाज और देश का मार्गदर्शन करते रहे। उनके विचारों में जो मौलिकता, प्रगतिशीलता एवं वैज्ञानिक अंतर्दृष्टि है, वह उन्हें विश्व चिन्तकों में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में बाबासाहेब की आधारभूत चिंता सामाजिक असमानता थी। उन्होंने अपने समूचे जीवन में मानव-मात्र की समानता पर बल दिया। उनका दृढ़ विश्वास था कि किसी व्यक्ति को मात्र जन्म या प्रथा के आधार पर सामाजिक और आर्थिक न्याय से वंचित नहीं किया जा सकता। वे जाति-विभाजन को श्रम-विभाजन से पूरी तरह भिन्न मानते थे। लाहौर जांत-पांत तोड़क मंडल 1936 के वार्षिक अधिवेशन में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा, 'जाति प्रथा मात्र श्रमिकों का विभाजन नहीं है, बल्कि यह श्रम के विभाजन से बिल्कुल भिन्न है। यह एक श्रेणीबद्ध व्यवस्था है जिसमें श्रमिकों का विभाजन एक के ऊपर दूसरे के क्रम में होता है।' जाति-प्रथा के भावी दुष्परिणामों से वे भली-भांति अवगत थे। इसी भाषण में उन्होंने इस ओर संकेत करते हुए कहा, 'जाति-प्रथा से आर्थिक उन्नति नहीं होती। जाति प्रथा से नस्ल या प्रजाति में न सुधार हुआ है और न होगा। इससे एक बात अवश्य सिद्ध हुई है कि इससे हिन्दू समाज पूरी तरह छिन्न-भिन्न और हताश हो गया है।' आज के दौर में जाति-प्रथा जिस भी रूप में मौजूद है उससे सामाजिक समरसता को किस हद तक क्षति पहुंचती है, उससे हम सभी अवगत हैं। 31 मई, 1936 को बंबई में दिए गए अपने अविस्मरणीय भाषण में उन्होंने दलित वर्ग की राजनीतिक स्वतंत्रता पर सामाजिक स्वतंत्रता को तरजीह देते हुए घोषित किया, 'अस्पृश्यों को राजनीतिक स्वतंत्रता की अपेक्षा सामाजिक स्वतंत्रता की त्वरित आवश्यकता है। जब तक आपको सामाजिक स्वतंत्रता नहीं मिलती, तब तक आपकी स्वतंत्रता के लिए बनाए गए कानूनी प्रावधानों का कोई उपयोग नहीं है।' प्रगति और विकास के सारे दावों और सारे संवैधानिक एवं विधिक प्रावधानों के बावजूद सामाजिक न्याय की दिशा में हम कितना आगे बढ़ सके हैं, यह यक्ष प्रश्न अभी भी हमारे सामने मुंह बाए खड़ा है।

बाबा साहेब अपने कार्यालय में

बाबा साहेब का आर्थिक चिंतन न केवल प्रगतिशील है बल्कि पूरी तरह व्यावहारिक है। शैक्षिक दृष्टि से अर्थशास्त्र उनकी विशेषज्ञता का क्षेत्र था। उन्होंने कोलम्बिया विश्वविद्यालय से जो पीएचडी और डीएससी की उपाधि प्राप्त कीं, वे अर्थशास्त्र में ही थीं। अपने सार्वजनिक जीवन में दिए गए उनके भाषणों से उनकी आर्थिक विचारधारा पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है। वे 1942 से 1946 तक वाइसराय की एग्जीक्यूटिव काउंसिल में श्रम तथा ऊर्जा विभाग के प्रभारी थे। इस दौरान उन्होंने श्रमिकों से जुड़े मुद्दों के साथ-साथ विद्युत ऊर्जा के विकास, नदियों के विकास आदि पर

सौजन्य : ए.डी.एस. प्रोजेक्ट्स एण्ड सिस्टम प्राइवेट लिमिटेड, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली–110001

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:53 PM Page 77

अपने रचनात्मक विचार प्रस्तुत किए। वे मानते थे कि जलमार्गों के लिए बहुउद्देशीय नीतियों का निर्माण आवश्यक है जिससे जल स्त्रोतों का बहुआयामी उपयोग हो सके। बॉम्बे लेजिस्लेटिव काउंसिल में 24 फरवरी, 1927 की बहस में भाग लेते हुए उन्होंने कहा, ''लोगों की समृद्धि ही राज्य की सबसे बड़ी धरोहर होती है। उन्हें उनको दयनीय या भिखारी नहीं बना देना चाहिए। जो राज्य अपनी जनता को भिखारी बना देता है, अंततः वह खुद भिखारी हो जाता है।' कृषि के क्षेत्र में अलाभकारी जोतों से लिए जाने वाले कर को लेकर उन्होंने अनेक बार चिंता व्यक्त की। इसी बहस में उन्होंने अपना दृष्टिकोण प्रतिपादित करते हुए कहा, 'हमारा अंतिम उद्देश्य अलाभकारी जोतों पर से कर को खत्म करना है। फिर भी शुरू में हम यह आवश्यक समझते हैं कि बड़ी कृषि-आय पर श्रेणीत कर लगाया जाए। वास्तविक खेती करने वालों के हाथों से संपत्तिहरण प्रक्रिया के कारण बहुत-सी भूमि उन हाथों में पहुंच गई है, जो खेती नहीं करते, भाड़ा खाते हैं।' इस प्रकार के विचार उनकी प्रगतिशील आर्थिक दृष्टि का जीता-जागता प्रमाण हैं।

बाबासाहेब की राजनीतिक दृष्टि सामाजिक न्याय की अवधारणा पर आधारित थी। प्रजातंत्र उनकी दृष्टि में आदर्श शासन-व्यवस्था है किंतु वे सामाजिक प्रजातंत्र के पक्षधर थे। यह सामाजिक प्रजातंत्र सम्पूर्ण सामाजिक समानता से प्राण-रस ग्रहण करता है। इसलिए वे मानते थे कि संसदीय लोकतंत्र ने आजादी पर बल देते हुए सामाजिक समानता की उपेक्षा की। 22 दिसंबर, 1952 को पुणे में भाषण देते हुए उन्होंने कहा, 'लोकतंत्र की कामयाबी की सबसे पहली शर्त यह है कि समाज में किसी तरह की असमानता नहीं होनी चाहिए। कोई दलित वर्ग न हो और कोई शोषित वर्ग भी न हो। ऐसा कोई वर्ग न हो जिसके सिर पर सारा बोझ हो। इस तरह का वर्ग-भेद हिंसक क्रान्ति को जन्म देता है और लोकतंत्र भी उसका उपचार नहीं कर सकता'। प्रजातंत्र के वास्तविक स्वरूप को उद्घाटित करते हुए उन्होंने 15 सितंबर, 1938 को अपने भाषण में शुद्ध राजनीतिक प्रजातंत्र का खंडन करते हुए कहा, 'ऐसा प्रजातंत्र, जो श्रमिकों को अपना दास बना ले, उन्हें संगठन, शक्ति और बुद्धि से वंचित कर दे, तो मैं कहूंगा कि वह प्रजातंत्र नहीं बल्कि प्रजातंत्र का उपहास है।' आज लोकतंत्र के माहौल में हम जिस दिशा में बढ़ रहे हैं, उस पर बाबासाहेब के राजनीतिक विचारों के परिप्रेक्ष्य में पुनर्विचार की आवश्यकता है।

> 'लोकतंत्र की कामयाबी की सबसे पहली शर्त यह है कि समाज में किसी तरह की असमानता नहीं होनी चाहिए। कोई दलित वर्ग न हो और कोई शोषित वर्ग भी न हो। इस तरह का वर्ग-भेद हिंसक क्रान्ति को जन्म देता है और लोकतंत्र भी उसका उपचार नहीं कर सकता। जो प्रजातंत्र श्रमिकों को अपना दास बना ले, उन्हें संगठन, शक्ति और बुद्धि से वंचित कर दे, वह प्रजातंत्र नहीं बल्कि प्रजातंत्र का उपहास है।'

बाबासाहेब एक विश्वविख्यात अर्थशास्त्री होने के साथ-साथ जाने-माने शिक्षाविद् भी थे। उन्होंने अपने शिक्षा-संबंधी विचारों में प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालयीय स्तर की शिक्षा को अपने ध्यान में रखा। बॉम्बे लेजिस्लेटिव काउंसिल में बहस के बीच उन्होंने प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा, 'प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य यह है कि प्राथमिक विद्यालय में दाखिल होने वाला बच्चा स्कूल तभी छोड़े, जब वह साक्षर हो जाए और अपने शेष जीवन में साक्षर बना रहे।' 'शिक्षा के क्षेत्र के व्यवसायीकरण की आलोचना करते हुए इसी बहस में उन्होंने कहा, 'शिक्षा विभाग ऐसा नहीं है, जो इस आधार पर चलाया जाए कि जितना वह खर्च करता है, उतना विद्यार्थियों से वसूल किया जाए। शिक्षा को सभी संभव उपायों से व्यापक रूप में सस्ता बनाया जाना चाहिए।' वे छात्र-वृत्ति देने की प्रचलित पद्धति को उचित नहीं मानते थे क्योंकि बच्चों के गरीब माता-पिता इसे बच्चों की शिक्षा पर खर्च करने की बजाए परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। वे इसकी बजाए ऐसे छात्रावास बनाए जाने के पक्ष में थे जिन्हें सरकार या पिछड़ी जातियों को बढ़ावा देने वाली संस्थाएं चलाएं। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने इसी बहस में कुछ महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए-

1. विश्वविद्यालय और महाविद्यालयों के उद्देश्य भिन्न-भिन्न हों।
2. विश्वविद्यालय पूर्व तक कक्षाओं का भार अपने ऊपर लें।
3. विद्यार्थी किसी भी कॉलेज में जाकर किसी भी प्राध्यापक का व्याख्यान सुनने को स्वतंत्र हों।

वे समय-समय पर ऐसे बहुत से रचनात्मक सुझाव देते रहते थे। आज आवश्यकता इस बात की है कि इन सुझावों की गंभीर समीक्षा करके इनका उचित क्रियान्वयन किया जाए।

समय आ गया है कि बाबासाहेब के विचार-सागर का गहन मंथन कर उनके विचार-रत्नों से इस राष्ट्र को समृद्ध किया जाए। उन्हें संकुचित सीमाओं में देखे जाने से हमारे समाज और राष्ट्र की गंभीर क्षति हुई है। उनके विचार जिस अनुपात में सार्थक और रचनात्मक हैं, उसी अनुपात में प्रासंगिक भी। उनके विचार समय बदलने के साथ और भी महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं। इसलिए राष्ट्र-निर्माण में उनके विचारों के अनुसरण को एक आंदोलन का रूप दिए जाने की आवश्यकता है।

डॉ. आंबेडकर के संपूर्ण जीवन की संघर्षगाथा को उन सभी विषम परिस्थितियों को ध्यान में रखकर समग्रता के साथ देखने की जरूरत है, जिन परिस्थितियों में वे संघर्ष करते रहे। डॉ. आंबेडकर असमानता के विरुद्ध अपने जीवन को समर्पित कर समाज की समानता के लिए, वंचितों के अधिकार के लिए, अशिक्षा से मुक्ति के लिए, गरीबों के उत्थान के लिए और सामाजिक समरसता के लिए संघर्षरत भारत को एक मजबूत, संगठित राष्ट्र देखना चाहते थे। उनका मानना था कि जब तक कमजोर समाज, बंटा हुआ समाज रहेगा, तब तक शक्तिशाली राष्ट्र की परिकल्पना करना व्यर्थ है। इसलिए उन्होंने जीवन भर के सामाजिक आंदोलनों में, सामाजिक समानता को और राष्ट्रीय एकता को अत्यधिक महत्व दिया। आज देश का दुर्भाग्य है कि दलित समाज डॉ. आंबेडकर को केवल अपना नेता मानता है और शेष समाज भी उन्हें केवल दलितों का नेता मान बैठा है। उनके जीवन भर के सामाजिक समानता के संघर्ष को कुछ विचारकों, लेखकों ने एकपक्षीय दृष्टिकोण से देखकर उन्हें संपूर्ण देश, संपूर्ण समाज और हिंदू समाज से काटकर उनके विराट व्यक्तित्व के साथ न्याय नहीं किया।

आज उनके इसी व्यक्तित्व को समझना होगा। वे संपूर्ण मानवता, संपूर्ण समाज और संपूर्ण देश के महानायक थे। उनके संपूर्ण जीवन को समग्रता के रूप में स्वीकार कर उनके मूल विचारों को देश की एकता और समाज की समरसता की प्रासंगिकता के मद्देनजर आज के परिप्रेक्ष्य में समझना अति आवश्यक है। ■

(लेखक भारत सरकार में राज्य मंत्री हैं और कई पुस्तकों के लेखक हैं)

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:53 PM Page 78

कहीं से हम आए थे नहीं

डॉ. आंबेडकर के विचार दर्शन के विशेष सन्दर्भ में एक अध्ययन

डॉ. विजय कायत

डॉ. आंबेडकर उन प्रखर देशप्रेमियों में से थे, जिन्होंने अंग्रेजों और उपनिवेशवादियों की आर्यों के आक्रमण का सिद्धांत रचने के पीछे की साजिश को शुरुआत में ही भांप लिया था। डॉ. आंबेडकर ने उनको मुंहतोड़ उत्तर दिया, सिर्फ वैचारिक नहीं, तथ्यों पर आधारित

औपनिवेशिक इतिहासकारों, विशेषकर भारतविद (इन्डोलोजिस्ट) एवं जर्मनभाषाविद मैक्समूलर ने उन्नीसवीं शताब्दी में भारत के इतिहास की व्याख्या करते हुए आर्यों के आक्रमण के सिद्धान्त को आधिकारिक तौर पर स्थापित किया। इस सिद्धान्त का प्रभाव विशेषकर सत्तासंघर्ष और समाज परिवर्तन के सन्दर्भ में आज भी भारतीय समाज के विभिन्न आयामों पर देखा जा सकता है। इन्हीं आयामों में एक से विकसित हुई दरार ने धर्म एवं जाति पर आधारित राजनीति, सामाजिक आन्दोलनों के सरोकारों को आधार तथा प्रगति के लिए सामग्री एव विचार उपलब्ध कराने में योगदान दिया। इस सिद्धान्त के अस्तित्व में आने से लेकर वर्तमान तक लगातार अनुसूचित जातियों-जनजातियों पिछड़ी जातियों बनाम आर्यों उच्च जातियों में जन्मे समाज सुधारकों, धर्मयोद्धाओं और राजनीतिज्ञों में वैचारिक मतभेद को जन्म दिया। उनके द्वारा अपने हितों में विचार गढ़ने और उन्हें आधार बनाकर आन्दोलनों को संचालित करने सम्बन्धी कई बड़ी घटनाएं न केवल इतिहास के पन्नों में दर्ज हैं,बल्कि वर्तमान में जारी भी हैं।

महात्मा ज्योतिबा फुले ने इस सन्दर्भ में आर्यों के और विशेषकर ब्राह्मणों के वर्चस्व के विरुद्ध वैचारिक-सामाजिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार की। आगे चलकर बीसवीं शताब्दी के अस्सी के दशक में जन्मे दलित पेंथर तथा इसी प्रकार तीन संगठनों बामसेफ, डीएस -फोर तथा बहुजन समाज पार्टी के प्रमुख नेता श्री कांशीराम ने इन्हीं मुद्दों पर, आर्यों व ब्राह्मणवाद की सत्ता को चुनौती देते हुए भारत की अनुसूचित जातियों-जनजातियों और पिछड़ों को मुख्य रूप से लामबन्द कर सड़क से लेकर संसदीय लोकतंत्र तक उनके हितों का सामाजिक-राजनीतिक आन्दोलन खड़ा किया। पिछले दिनों बिहार के पूर्व मुख्यमन्त्री जीतनराम मांझी ने इसी मुद्दे पर नारा दिया - आर्य विदेशी आक्रमणकारी हैं और अनुसूचितजातियों, जनजातियों और पिछड़ों को एकजुट होकर उसकी सत्ता को समाप्त कर अपनी सत्ता स्थापित करनी है। लगभग पिछली दो शताब्दियों से दोनों ही पक्षों के चिन्तकों, समाजसुधारकों और राजनीतिज्ञों द्वाराअपने-अपने पक्ष के हितों को साधने व पूर्वाग्रहों से ग्रस्त होने के कारण यह विषय विवादास्पद बना रहा है।

दादासाहेब गायकवाड के साथ बाबासाहेब का एक दुर्लभ चित्र

आर्यों को विदेशी बताने के सिद्धान्त की जड़ें उन यूरोपियन भाषाशास्त्रियों के अध्ययनों में निहित हैं, जिन्होंने पहली बार एक भाषा के रूप में संस्कृत का अध्ययन किया और इसे यूनानी, लेटिन, प्रशियन तथा कुछ अन्य यूरोपीयन भाषाओं के समकक्ष बताया। ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एक प्रशासनिक उच्चाधिकारी एव मनुस्मृति के अनुवादक सर विलियम जोन्स ने 1788 में अपने अध्ययनों की उपलब्धि में बताया कि विश्व की छह प्रमुख भाषाओं में संस्कृत बोलने वालों समेत अन्य दूसरी भाषाओं में समानता के साथ-साथ उनके बोलने वाले सभी के पूर्वज एक समान थे (थर्ड एनिवर्सरी डिस्कोर्स, एशियाटिक रिसर्चेज)। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक आर्य शब्द उन सभी लोगों के लिए प्रयोग किया जाने लगा जो इन भाषाओं को बोलते थे। यह शब्द ऋग्वेद के आर्य और ईरानी ग्रन्थ जेन्द अवेस्ता के ऐरीय से लिया गया था। जहां तक आर्य एक प्रजातीय संवर्ग का विषय है, इसे प्रारम्भ में यूरोपियन और बाद में भारत के सन्दर्भ में प्रस्तुत करना उचित प्रतीत होता है। वास्तव में आर्य का प्रयोग उस अवस्था में केवल एक भाषाविशेष को चिन्हित करना था- भारतीय-आर्य (इण्डो-आर्य) भाषा। अतः तकनीकी तौर पर आर्य शब्द भारतीय-आर्य भाषा बोलने वाले लोगों के लिए प्रयोग किया गया

सौजन्य : होटल पूजा पैलेस, करोल बाग, दिल्ली-110005

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:53 PM Page 79

था। इसमें ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रजाति एक जैविक संवर्ग है तो भाषा एक सांस्कृतिक और सामाजिक संवर्ग। इसी सन्दर्भ में भारतीय परिप्रेक्ष्य में, सम्भवतः द्रविड़ शब्द भी एक प्रजातीय संवर्ग को नहीं,बल्कि भाषा को चिन्हित करता है।

सबसे पहले जर्मन भारतविद मैक्समूलर ने आर्यों के न केवल भारत के लिए विदेशी होने का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। उनके तर्क के अनुसार भारत में प्रवेश करने से पहले आर्य प्रजाति दो बड़े समूहों में बंट गई थी। एक समूह इन्डो-यूरोपियन यूरोप की ओर, तथा दूसरे समूह इण्डो-आर्यन का ईरान की ओर आगमन हुआ। आगे चलकर ईरान के समूह में से एक अन्य समूह निकलकर भारत आया,और भारत में आने वाला यह समूह आर्य कहलाया।

उनकी मातृभूमि के बारे में मैक्समूलर कहते हैं कि यूरोप और ईरान की ओर आगमन से पहले आर्य मध्य एशिया से आए थे। अर्थात वे मध्य एशिया के निवासी थे। अपने विश्लेषण में वह आगे लिखते हैं कि भारत आने वाली शाखा के आर्यों ने उत्तर भारत में बसे द्रविड़ों पर आक्रमण किया और समर्पण करने वालों को अपना दास बनाकर शेष को दक्षिण भारत की ओर खदेड़ दिया। परन्तु दस्युओं ने निरन्तर आर्यों के वर्चस्व को चुनौती दी और उनकी अधीनता स्वीकार नहीं की (1862, लेक्चर्स ऑन द साईंस ऑफ लेंगुएजेज 1883, इण्डिया - वाट कैन इट टीच अस)। आक्रमण के इस सिद्धान्त को प्रतिपादित करते समय मैक्समूलर ने प्रजातिसंवर्ग एव भाषासंवर्ग दोनों को मिश्रित कर दिया।

वेदों एव ब्राह्मणीक शास्त्रों के विद्वान और आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्य प्रजाति को तिब्बत का मूल निवासी बताया। उन्होंने आर्यों की भाषाई एव प्रजातीय शुद्धता को रेखांकित करते हुए उन्हें उच्च जाति का बताया और अस्पृश्यों (वर्तमान अनुसूचित जातियों) को आर्यसमाज की व्यवस्था से बाहर के लोग बताया। यद्यपि उन्होंने अस्पृश्यों को शुद्धि नामक अनुष्ठान से अपनी जाति के सुधार को भी सम्भव बताया। राष्ट्रवादी नेता बाल गंगाधर तिलक ने आर्यों को आर्कटिक क्षेत्र के मूलनिवासी बताया। अपनी पुस्तक द आर्कटिक होम इन द वेदाज में उन्होंने लिखा कि वेदों की रचना इसी हिमक्षेत्र अर्थात आर्कटिक क्षेत्र में की गई थी जहां छः महीने की रात और छः महीने के दिन होते थे।

उपरोक्त विचारों के विपरीत राष्ट्रवादी विचारकों ने आर्यों के विदेशी होने के सिद्धान्त को सैद्धान्तिक तौर पर नकार दिया। इन में मुख्यतः विनायक दामोदर सावरकर (1922, हिन्दुत्व, हूइज ए हिन्दू) तथा एम. एस. गोलवलकर (1938, वी, आर आवर नेशनहूड डिफाईन्ड) के मतानुसार आर्य वास्तव में भारत के मूल निवासी थे तथा सभी हिन्दू आर्य हैं। अर्थात भारत ही उनकी पितृभूमि तथा पुण्य भूमि है। इसी सन्दर्भ में वे आगे लिखते हैं कि संस्कृत मानव भाषाओं में सबसे पुरानी है और भारत में जन्मी है। सावरकर ने हिन्दू को परिभाषित करते हुए कहा कि यह प्रजाति न तो आर्य है, न ही द्रविड़ बल्कि वे सब लोग हैं जो एक सांझी मातृभूमि और पुण्यभूमि में निवास करते हैं और सभी हिन्दू भारत वर्ष के निर्भीक देशभक्त निवासी हैं। यद्यपि गोलवलकरजी को तिलक द्वारा बताए गए आर्कटिक क्षेत्र पर दी गई व्याख्या तर्कसंगत प्रतीत नहीं होती है जिसने उन्होंने कहा था कि उत्तरी ध्रुव स्थायी नहीं होने के कारण घूम गया और वर्तमान साइबेरिया के उत्तर में स्थित यह स्थान कभी प्राचीन काल में भारत का आधुनिक बिहार व उड़ीसा का क्षेत्र था।

आर्यों का विदेशी मूल खोजने और स्थापित करने की ऐसी झड़ी लगी थी कि उनके मूलत: यूरोपीय काकेशियन होने, ईरान, अफगानिस्तान से आए होने से लेकर उत्तरी ध्रुव के मूल निवासी रहे होने तक के तमाम सिद्धांत गढ़ दिए गए। भाषा को नस्ल से मिला दिया गया। राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने इसे दृढ़ता से नकारा। इन विद्वानों में डॉ. आंबेडकरजी भी थे और गोलवलकर जी भी थे।

इन राष्ट्रवादी विचारकों का उपरोक्त मत ब्रिटिश थियोसोफिस्ट विचारक कर्नल अलकोट के विचार से नजदीक से मेल खाता है। वह भारत में सक्रिय रहे और उनका मानना था कि आर्य हिन्दुओं के पूर्वज थे तथा मूल भारतवासी थे। उनका यह भी मानना था कि इन्हीं भारतीय आर्यों ने यूरोप में जाकर यूरोपियन सभ्यता को जन्म दिया था। (जे. लियो पोल्ड,74,ब्रिटिश एप्लिकेशन ऑफ द् आर्यन थ्योरी ऑफ रेस टू इण्डिया, 1850-70)

1920-22 में सिन्धु सभ्यता की खोज प्राचीन भारतीय इतिहास में आर्य सभ्यता के सन्दर्भ में स्थापित मानदण्डों पर एक और प्रश्न खड़ा करने वाली थी। क्योंकि इतिहासकारों और पुरातत्व शास्त्रियों ने इस नगरीय सभ्यता का समय आर्यों के प्रारम्भिक कबीलाई समाज से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व निर्धारित किया था और यह निर्धारित किया था कि भारत आगमन के उपरान्त उन्होंने ऋग्वेद की रचना लगभग एक हजार ई.पू. के आसपास की थी। सिन्धु सभ्यता से आर्यों को जोड़ने और आगे बढ़कर आर्य सभ्यता का ही पूर्वगामी विस्तार बताते हुए राष्ट्रवादी पुरातत्वविदों ने एक अन्य विचार को प्रस्तुत किया। इसके लिए उन्होंने कहा कि हड़प्पन संस्कृति को पूर्व वैदिक न मान कर सिन्धु-सरस्वती सभ्यता मानना चाहिए। इस विचार को प्रस्तुत करने वाले पुरातत्वविदों एस.पी गुप्ता क्रोनोलोजी ऑफ द इण्ड सरस्वती सिविलाइजेशन (पुरातत्व 1992-93)और वी.एन मिश्र, 'इण्डस सिविलाइजेशन एण्ड् ऋग्वेदिक सरस्वती', (साउथ एशियन आर्केलॉजी, 1994) ने अपनी उपलब्धियों के उपरान्त कहा कि सिन्धु सभ्यता को सिन्ध सरस्वती सभ्यता नाम दिया जाना चाहिए। अपने तर्कों में उन्होंने तीसरी सहस्राब्दिक ई.पू. में चोलिस्तान के क्षेत्र में बड़ी संख्या में पूर्व हड़प्पन और विकसित हड़प्पन स्थलों का पाया जाना बताया और यह भी कि जिस घग्गर-हाकड़ा नदी के किनारे अथवा इस के क्षेत्रों (वर्तमान पाकिस्तान में मिले कुछ हड़प्पन पुरास्थल) में ये स्थल पाए गए हैं। इस नदी को ऋग्वेद में सरस्वती नदी कहा गया है और क्योंकि सरस्वती नदी के किनारे ही आर्यों की सभ्यता, वेद साहित्य आदि का उद्‌गम हुआ था। इस प्रकार उनके मतानुसार सिन्धु संस्कृति को सरस्वती नदी के साथ जोड़कर आर्य संस्कृति का विस्तार मान लेना उचित होगा।

इतिहासकार और पुरातत्वशास्त्री जो आर्यों को विदेशी मानते हैं अपने तर्कों का मुख्य आधार एशिया माइनर के बोगाज कोई नामक स्थान से मिले लगभग चौदहवीं शताब्दी ईपू के शिलालेख को मानते हैं। इसमें आर्यों के देवताओं में इन्द्र, मित्र वरुण और नास्त्य (द्वय) का उल्लेख है। दरअसल प्राचीन सीरिया उस समय मिश्र के फराओं शासन के अधीन था। एक अन्य स्थान तेल-एल अमरन से मिले अभिलेख में सीरियाई राजाओं के नाम आए हैं जो आर्यों के समान हैं। इनमें एक वर्तन, त्रिवर्तन, वर्तन आदि शुद्ध संस्कृत के शब्द हैं। इस पर उनका मानना है कि ये अभिलेख उस समय

आर्यों के उस क्षेत्र में होने के द्योतक हैं।

पुरातत्वविदों के अतिरिक्तइतिहासकारों में मुख्य रूप से रोमिला थापर ने आर्यों के बारे में विस्तार से अध्ययन किया है (द आर्यन रिकास्टिंग कन्सट्रक्ट्स, 2008)। वह कहती हैं कि हड़प्पन संस्कृति (सिन्धु सभ्यता) मूल रूप से नगरीय तथा वैदिक संस्कृति (आर्यों की संस्कृति) मूल रूप से ग्रामीण थी, दोनों के प्राचलक भिन्न-भिन्न हैं और दोनों संस्कृतियों की विशेषताएं भिन्न हैं। अतः हमें उनको उनके मापदण्डों के अनुरूप समझने की आवश्यकता है। आर्यों का समाज छोटे-छोटे पशुचारी समूहों में रहने वाला, धार्मिक विश्वासों-अनुष्ठानों सहित जीवन व्यतीत करने वाला और छोटे-छोटे ग्रामों में रहने वाला था। उनकी अर्थव्यवस्था अधिकतर घोड़ों और गायों पर निर्भर अर्थात चलीय अर्थव्यवस्था थी और जिसके लिए उनमें आपसी मुठभेड़ होती रहती थी। यही नहीं बल्कि रोमिला थापर आगे आर्यों के स्थानान्तरण की दिशा पर विश्लेषण करती हुई कहती हैं कि सामान्यतया उनका स्थानान्तरण उत्तर-पश्चिमी दिशा में गंगाघाटी के जल वाले मैदानी क्षेत्रों की ओर देखा जा सकता है। इस सन्दर्भ में वह उत्तरी सीरिया में मिले उपरोक्त वर्णितहित्ती और मितानी समुदायों में 14वीं शताब्दी के बोगाज कोई शिलालेख में वर्णित समझौते का उल्लेख पुष्टि के रूप में करती है। इस समझौते में हित्ती समुदाय के लोग अपने देवताओं में मित्र (मिश्रशील) वरुण (उरूवशिल) इन्द्र (इन्द्रुह) औरनास्तय (नास्तयन) को गवाही के लिए आहवान करते हैं। यह इस तथ्य का स्पष्ट संकेत है कि भारतीय आर्य (इण्डो-आर्यन) उस समय में सोपोटामिया और सीरिया में मौजूद थे। यह मार्ग-क्षेत्र घोड़ों को प्रशिक्षण देने के लिए जाना जाता था जिन्हें आर्य अपने साथ लेकर आए थे। वह आगे कहती है कि यद्यपि इस संन्दर्भ में पूर्ण विषय-वाक्य उपलब्ध नहीं है फिर भी जो हैं उससे यही माना जाए कि इण्ड्रो-आर्यन अर्थात आर्य भाषा बोलने वाले ये लोग द्वितीय सहस्त्राब्दि के मध्य में घोड़ों के व्यापार सहित और उनको अपने साथ लेकर ईरान की ओर आए थे। इसके उपरान्त वह लिखती है कि ईरानी (इण्डो-यूरोपियन की शाखा के ही लोग) बोली बोलने वालों का एक समूह अफगानिस्तान की ओर आया था। ऋग्वेद में आर्यों के अफगानिस्तान से पंजाब की ओर स्थानान्तरण सम्बन्धी सन्दर्भों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। अपने तर्क को आगे बढ़ाते हुए यह इतिहासकार ऋग्वेद में उल्लेखित मुजांवत पहाड़ (जहां आर्यों में लोकप्रिय सोम पौधा उगता था जिसका पेय उन्हें प्रिय था) से उतरने के बाद जल से उफनती नदी को आर्यों के देवता इन्द्र ने यदु और तुरवसों (आर्य कबीलों के नाम) को पारकर वाने में सहायता प्रदान की थी।

इसी सन्दर्भ में वह आगे चलकर पंजाब के बाद भरत कबीले के लोगों द्वारा रावी नदी पारकर के गंगाघाटी के मैदानी भागों में फैलने व बसने का विचार प्रस्तुत करती है। इस सारी प्रक्रिया में वह यद्यपि आर्यों के आक्रमण के सिद्धान्तया व्यापक अथवा बड़े पैमाने पर स्थानान्तरण को नहीं मानती हैं परन्तु उनके छोटे-छोटे समूहों में अलग-अलग समय में भारत आगमन का विचार प्रस्तुत करती है।

डा. बी. आर. आंबेडकर, बहुमुखी प्रतिभा के धनी एव विश्वविख्यात काननूवेत्ता, अर्थशास्त्री एव राजनीतिज्ञ थे, जिन्होंने प्रजाति, वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था व अस्पृश्यता पर गहन अध्ययन किया, उन्होंने भी आर्यों के विषय में विश्लेषण करने के बाद अपने निष्कर्ष दिए है। उन्होंने इस विषय पर अपनी पुस्तक हू वर द् शूद्राज नामक पुस्तक (हिन्दी अनुवाद मोजज माइकेल एव प्रस्तावना लेखक डॉ. प्रदीप अग्रवाल, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली,2007) के अध्याय चार शूद्र बनाम आर्य में विस्तार से अध्ययन-विश्लेषण किया। उनका अध्ययन वास्तव में मूलरूप से साहित्यिक स्त्रोतों पर आधारित विभिन्न पहलुओं और दूसरे विद्वानों द्वारा अपनाए गए तर्कों का आलोचनात्मक अध्ययन है। अपने अध्ययन में वह शूद्रों (जिन्हें वर्ण व्यवस्था में चौथे पायदान पर रखा गया) की उत्पत्ति से शुरू करते हुए आर्यों का सात पहलुओं पर अध्ययन करते हैं। जिनमें वैदिक साहित्य की रचना, क्या आर्य प्रजाति विदेशी आक्रमणकारी थी? क्या भारत के मूल निवासी दास-दस्यु आर्य प्रजाति से भिन्न थे? क्या आर्य गौरवर्णीय तो दास और दस्यु काले थे। क्या आर्यों ने दास-दस्युओं को पराजित किया था? क्या पराजित होने और गुलाम बना लिए जाने के बाद वे शूद्र कहलाए? आर्य लोग मनुष्य की चमड़ी के रंग के बारे में पूर्वाग्रह से ग्रस्त थे इसलिए उन्होंने चातुर्वण्य व्यवस्था कायम की और इसके अन्तर्गत गोरी प्रजाति (नस्ल) को काली प्रजाति - जैसे दास और दस्यु से अलग किया।

डॉ.आंबेडकर भारतीय-आर्यों के समाज में ऋग्वेद में शूद्रों की उत्पत्ति और स्थिति (ऋग्वेद के दसवें मण्डल में पुरुष सूक्त पर आधारित) पर दिए गए विवरण के सन्दर्भ में इसे एकसामाजिक तथ्य की स्वाभाविक व्याख्या तक उचित मानते हैं परन्तु इसे दैवीय विधान का रूप देने पर इसे मूर्ख मस्तिष्क का बेतुका उफान कहकर निरस्त कर देते हैं।

उन्होंने भाषा विज्ञान के अन्तर्गत आर्य प्रजाति शब्द का अभिप्राय मैक्समूलर द्वारा बना निम्न तीन अर्थों को दिया हैः (1) जीती हुई भूमि तथा आर्य अर्थात भूस्वामी, इस सन्दर्भ में उनका यह कहना है यद्यपि यह शब्द संस्कृत से लुप्त हो गया है परन्तु यूनानी भाषा में यह शब्द आज भी संरक्षित है। (2) मनु की पुत्री इड़ाजोती हुई भूमिका एक और नाम है और संभवतः अराही इसका संशोधित रूप है अर्थात आर्य शब्द का व्यापत्ति मूलक हल चलाने वाला अथवा जोतने वाला भी था। उन्होंने यह नाम सम्भवतः खाना बदोश प्रजातियों, तुरानियों से स्वयं को भिन्न दिखाने के उद्देश्य से रखा होगा, जिसके मूल नाम तुरा का अर्थ घुड़सवारों की तेजी होता है। (3) तीसरे अर्थ के अन्तर्गत आर्य का अभिप्रायः श्रेष्ठकुल वाला बताया गया है।

अपनी विस्तृत व्याख्या में मैक्समूलर का विशेष मत यह है कि वे आर्य प्रजाति का सम्बन्ध रक्त से नहीं बल्कि भाषा से मानते हैं। इस पर डॉ.आंबेडकर आर्य शब्द का खुलासा करते हुए लिखते हैं कि इस शब्द से मेरा आशय न रक्त से है, न अस्थियों से, न बालों से और नही खोपड़ी से है। यही बात (वह कहते हैं) हिन्दुओं, यूनानियों, रोमनों, जर्मनों, केल्टो और स्लाबों पर भी लागू होती है। अतः मैक्समूलर के अनुसार आर्य प्रजाति का आधार उनकी भाषाई विशिष्टता है। वे एक सांझा भाषा बोलने वाले लोग थे। आर्यों के मूल स्थान के विषय पर एक अन्य विद्वान बेनफे द्वारा वनस्पति और जीव जन्तुओं को आधार बनाकर किए गए अध्ययनों को भी उन्होंने अध्ययन किया। बेनफे के विचारों को आईजरटेलर ने (दि ओरिजन ऑफ दि आर्यन्स) ने संक्षेप में वर्णन करते हुए कहा है कि आर्य सर्व प्रथम भालू और भेड़ियों जैसे कुछ जानवरों तथा करंज और भूर्ज जैसे कुछ पेड़ों से परिचित रहे होंगे अर्थात वे यूरोप वासी थे। जबकि दक्षिणी एशिया के विशिष्ट पशु और वृक्ष जैसे बाघ और ताड़ से केवल भारतीय और ईरानी परिचित थे। इस सिद्धान्त को यदि मान लिया जाए तो आर्य लोग कैस्पियन सागर के पूर्वीक्षेत्र से आए थे। तो उनके शब्द भण्डार में दो शिकारी पशु शेर और बाघ तथा एशिया का सवारी पशु ऊंट का नाम न मिलना उनके यूरोपीय होने के सिद्धान्त पर निश्चित ही सन्देह व्यक्त करता है।

एक अन्य विद्वान जाइगर के अध्ययन को समायोजित करते हुए डॉ.आंबेडकर आगे लिखते हैं कि यद्यपि जाइगर भी बेनफे की दलीलों से लगभग सहमत थे परन्तु वे उनका मूल स्थान कृष्ण सागर के उत्तर में न बताकर थोड़ा और उत्तर पश्चिम की ओर अर्थात मध्य और पश्चिमी जर्मनी को बताता है। इसी तरह उन्होंने एक अन्य ओसेटजन के बारे में पाया कि यदि वे आर्य हों तो भी वे न तो काकेशिया के मूलनिवासी थे और न आसपास रहने वाली अन्य कौमों में श्रेष्ठ थे। न ही उनमें वह शारीरिक सौन्दर्य था और न ही साहस क्योंकि उन्होंने तो रूसियों के आगे

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:53 PM Page 81

कायरता पूर्ण बगैर प्रतिरोध किए घुटने टेक दिए थे। डॉ.आंबेडकर आगे लिखते हैं कि आर्य काकेशियाई भी नहीं थे क्योंकि काकेशस तो कौमों का, भाषाओं का, प्रथाओं का और शारीरिक प्रकारों का पालना नहीं बल्कि कब्रिस्तान है। उन्होंने तिलक द्वारा बताए गए उत्तरी ध्रुव के सिद्धान्त पर अपने विश्लेषण उपरान्त पाया कि उत्तरी ध्रुव में घोड़ा (जिसका आर्यों के जीवन में बहुमूल्य स्थान था) न पाए जाने के कारण यह सिद्धान्त अत्यन्त निराधार हो जाता है।

पीटी श्रीनिवास आयंगर (लाईफ इन एनशियंट इण्डिया इन दिऐज ऑफ द मंत्राज) की व्याख्या का अध्ययन भी डा.आंबेडकर ने निम्न प्रकार से किया। इस व्याख्या के अनुसार ऋग्वेद के जिन मन्त्रों में आर्य, दास, दस्यु शब्द आते हैं उनका सम्बन्ध प्रजाति से न होकर पूजा-पद्धति से है और यदि वे आक्रमणकारी होते तो स्वाभाविक तौर पर उन पर अपनी सैनिक उपलब्धियों की डींग मारते, जिसका कोई विवरण नहीं मिलता। दूसरे, वैदिक साहित्य का साक्ष्य इस सिद्धान्त के विपरीत है कि आर्यों का मूल निवास स्थान भारत से बाहर था। डी एस त्रिवेद (ऐनल्स अफद भंडार कर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, खण्ड 20, पृ. 13) सप्त नदियों के विषय में ऋग्वेद (10,755)का उद्धरण देते हुए उजागर करते हैं कि इसमें 'मेरी गंगा, मेरी यमुना, मेरी सरस्वती' आदि कहकर सम्बोधित किया गया है - कोई विदेशी किसी नदी को इतने परिचित और प्रेमिल अन्दाज में तभी सम्बोधित करेगा जब बहुत समय उनके सानिध्य में रह लेने के बाद उसके साथ भावनात्मक लगाव हो जाए। अर्थात यह एक और तथ्य उनके भारतीय होने की पुष्टि करता है।

इन तथ्यों के अतिरिक्त डॉ. आंबेडकर ऋग्वेद में आर्यों की दास, दस्युओं के साथ हुई झडपों पर भी ध्यान आकर्षित करते हुए लिखते हैं कि कुल 33स्थानों में 8 स्थानों में दासों के विरूद्ध तथा सात स्थानों पर दस्युओं का उल्लेख आया है। उनका मानना है कि ये छिटपुट झड़पें थीं और किसी एक प्रजाति की दूसरी प्रजाति पर जीत या अधीनता का साक्ष्य नहीं है। वह आगे आर्यों तथा दास और दस्युओं में सम्मान और शान्ति पर आधारित समझौते की बात भी करते हैं। ऋग्वेद के मण्डलों को उद्धृत करते हुए बताते हैं कि किस प्रकार दास और आर्य एक साझा दुश्मन के खिलाफ एकजुट होकर लड़े। इनके निष्कर्षों में उनका कहना है कि उनमें टकराव जिस सीमा तक रहा हो परन्तु यह प्रजाति का टकराव नहीं था। यह एक ऐसा टकराव था जो पृथक धार्मिक मान्यताओं व विश्वासों को लेकर था। उदाहरण के तौर पर ऋग्वेद में विभिन्न स्थलों पर दस्युओं को आव्रत (संस्कारविहीन), अपव्रत अन्य व्रत (भिन्न संस्कार वाले), अग्निनत (अग्निविहीन), अब्रह्म (प्रार्थनारहित), ब्राह्मणद्वेषी (ब्राह्मणों से घृणा करने वाले), अनिंद्र (इन्द्र से रहित, अर्थात इन्द्र की अवमानना करने वाले) वे न सोम निचोड़ते, न कड़ाही गर्म करते हैं, ब्राह्मणों को दान नहीं देते हैं। इसी प्रकार ऋग्वेद में उनके लिए मृघ्रावक(असहाय भाषा बोलने वाला) और 'अनास' शब्दों का प्रयाग हुआ है। अनास के सन्दर्भ में वे 14वीं शताब्दी के भास्यकार सायण द्वारा निकाल गए अर्थ-अर्थात अन-असा (मुखविहीन-अर्थात उत्तम वाणी रहित) बताते हैं। वे इन्द्र को उनसे अपनी रक्षा करने की प्रार्थना भी करते हैं। अतः उनके अनुसार, ऋग्वेद के उपरोक्त कथनों से इस सिद्धान्त के लिए कोई स्पष्ट जगह नहीं है कि आर्यों ने दासों और दस्युओं पर सैनिक विजय हासिल की होगी।

अतः अन्त में डॉ. भीमराव आंबेडकर अपने विश्लेषण के उपरान्त यह स्पष्ट लिखते हैं कि कहना न होगा कि पाश्चात्य लेखकों ने आर्य प्रजाति का जो सिद्धान्त दिया है वह हर तरह से धराशाही हो गया है। यह सिद्धान्त वैज्ञानिक अनुसंधान का विकृत रूप है। इसे तथ्यों पर आधारित नहीं किया गया। इसके विपरीत यह सिद्धान्त पूर्वकल्पित है और तथ्यों का चयन उसे प्रमाणित करने के लिए किया गया है। जहां तक आर्यो के आक्रमण के सिद्धान्त का प्रश्न है, डॉ.आंबेडकर लिखते है कि आक्रमण का सिद्धान्त तो एक आविष्कार है। यह आविष्कार पाश्चात्य सिद्धान्त में निहित एक अकारण धारणा के कारण आवश्यक हो गया। धारणा यह कि भारतीय-जर्मन लोग तो मूल आर्य प्रजाति के वर्तमान प्रतिनिधियों में सब से शुद्ध हैं इनका पहला मूलनिवासी यूरोप में कहीं माना गया है। इन धारणाओं में एक सवाल उठता है- आर्य भाषा भारत में कैसे आई होगी? इस सवाल का जवाब केवल इस धारणा में मिल सकता है कि आर्य लोग भारत में बाहर से ही आए होंगें। इसीलिए आक्रमण वाले सिद्धान्त का आविष्कार करना आवश्यक हो गया।

डॉ. आंबेडकर ने आर्यों के आक्रमण के सिद्धांत को बहुत दृढ़ता से नकारा। उन्होंने सिद्ध किया कि न तो आर्य कोई नस्लसूचक शब्द था, और न ही दास और दस्यु शब्दों से अर्थ द्रविड़ों से था। बाद में मैक्समूलर को भी स्वीकार करना पड़ा कि आर्य भाषासूचक शब्द था न कि नस्लसूचक। चेहरा, बालों और मानवकाया की बनावट के आधार पर भी आर्यों के भिन्न होने की बात डॉ. आंबेडकर ने गलत साबित की

उपरोक्त सभी साहित्यिक, भाषायी, ऐतिहासिक, पुरातात्विक, मानवभीति स्त्रोतों पर विद्वानों द्वारा विभिन्न सिद्धान्तों के अध्ययनों को यदि निष्कर्ष स्वरूप देखा जाए तो हम पाते हैं कि इनमें आर्यों के विदेशी होने के ठोस प्रमाण प्रतीत नहीं होते हैं। औपनिवेशिक इतिहासकारों, अंग्रेज प्रशासनिक अधिकारियों से लेकर भारतविद् मैक्समूलर जैसे तमाम विद्वानों ने यद्यपि उन्हें सांझी इन्डो-यूरोपियन भाषाओं के बोलने वालों के संदर्भ में मध्य एशिया, यूरोप निवासी बताया है। शारीरिक विशिष्टताओं को अध्ययन करने वाले मानवभीति विज्ञानी इस विषय को दो भिन्न प्रजातियों के मध्य छोड़ देते हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार रोमिला थापर, उन्हें बोगाज कोई शिलालेख के आधार पर उतरी सीरिया से ईरान, अफगानिस्तान और पंजाब की ओर से भारत में छोटे-छोटे समूहों में समय अन्तराल पर भारत में उनका आगमन मानती हैं। पुरातत्व विद्व हीलर, गॉर्डन चाइल्ड आदि भी उन्हें विदेशी आक्रमणकारी मानते हैं। चोलिस्तान (वर्तमान पाकिस्तान के क्षेत्र) में हाकड़ा-घग्गर नदी के किनारे के क्षेत्रों में सिन्धु सभ्यता से संबंधित मिले भग्नावशेषों के आधार पर पुरातत्वविद एस.पी. गुप्ता आदि राष्ट्रवादी विचारकों के पक्ष में लिखते हुए और आगे बढ़कर सिन्धु सभ्यता को सिन्धु-सरस्वती संस्कृति नाम दिए जाने का सुझाव देते हैं।

डा.आंबेडकर आर्यों को न केवल प्रजाति होने से नकार देते हैं बल्कि वह उनके बारे में विदेशी आक्रमणकारी होने के सिद्धान्त को भी अपने आलोचनात्मक विश्लेषण के उपरान्त नकार देते हैं। उनका मत स्पष्ट एव उचित प्रतीत होता है कि पाश्चात्य लेखकों द्वारा पूर्व कल्पित तथ्यों का चयन उसे प्रमाणित करने के लिए कर लिया गया है। अन्त में डॉ. आंबेडकर के शब्दों में, आर्यों को विदेशी प्रजाति और भारत पर उनके आक्रमण का सिद्धान्त मात्र एक मान्यता और धारणा है, इससे अधिक कुछ भी नहीं। ■

(लेखक महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक में आम्बेडकर पीठ के अध्यक्ष हैं)

उठाया सौ टके का सवाल

» मूलचंद राणा

बाबासाहेब का मूल्यांकन करते समय इस ऐतिहासिक तथ्य को अक्सर अनदेखा किया गया कि वे भारत के सबसे शुरुआती आर्थिक चिंतकों में से एक थे, जिन्होंने देश की अर्थव्यवस्था के कई पक्षों पर मौलिक व सार्थक चिंतन प्रस्तुत किया।

देश के सामाजिक जीवन तथा भारतीय संविधान के निर्माण में डॉ. भीमराव आंबेडकर का इतना अधिक योगदान है कि एक प्रखर अर्थशास्त्री के रूप में उनकी पहचान उजागर ही नहीं हो पाई। शोषितों व पीड़ितों के सामाजिक न्याय के लिए सतत् संघर्षशील रहने के कारण उनकी पहचान भी शोषित व पीड़ितों के नेता के रूप में बनी और लोगों में उनकी वही छवि लोकप्रिय है। भीमराव आंबेडकर 20वीं सदी में अर्थशास्त्र की एडवांस ट्रेनिंग करने वाले गिने-चुने विद्यार्थियों में एक थे। 20 जुलाई, 1913 से उन्होंने अमरीका की कोलंबिया यूनिवर्सिटी से अपनी पोस्ट ग्रेजुएट की पढ़ाई शुरू की थी। पोस्ट ग्रेजुएशन में उनका विषय- 'एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ फाईनेंस ऑफ ईस्ट इंडिया कंपनी 1792 से 1822' था, जिसमें कंपनी के अंधाधुंध शोषण के कारण भारत की आर्थिक दयनीयता में बढ़ोतरी होने का सजीव चित्रण था। उनके शीर्ष ग्रंथ- 'द इवोल्यूशन ऑफ प्रोविंशियल फाइनेंस इन ब्रिटिश इंडिया' में वंचितों को लेकर उनकी वेदना स्पष्ट नजर आती है। यह पुस्तक ब्रिटिश इंडिया के सन् 1833 से 1921 के बीच केन्द्र व राज्यों के बीच आर्थिक संबंधों को उजागर करती है। इसमें भूमिकर, नमक कर, स्टाम्प ड्यूटी जैसे घातक करों के कारण उत्पन्न हुई आर्थिक पद्धति की खामी, शिक्षण पर खर्च की बजाए गैर उत्पादन खर्च पर ध्यान दिलाया गया है और सौंपे गए काम, सौंपी गई आवक एवं विभाजनयुक्त आर्थिक योजना के साथ-साथ आर्थिक विकेन्द्रीकरण के जरिए गरीबों के उद्धार पर जोर दिया गया है।

उभरते युवा अर्थशास्त्री

आंबेडकर ने वर्ष 1917 में 26 वर्ष की उम्र में अर्थशास्त्र में शोध किया। उनके शोध का विषय 'नेशनल डिविडेंड ऑफ इंडिया- ए हिस्टोरिक एंड एनालिटिकल स्टडी' था, इसमें ब्रिटिश शासन की आलोचना होने से अवरोधों के बीच 1925 में 'इवोल्यूशन ऑफ प्रोविंशियल फाईनेंस इन ब्रिटिश इंडिया' नाम से इनकी पुस्तक प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में ब्रिटिश सरकार की आर्थिक पद्धति के संपूर्ण केन्द्रीयकरण एवं सरेआम इसकी निष्फलता का तथ्यात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया। डॉ. आंबेडकर ने केन्द्र व राज्यों के बीच आर्थिक संबंधों के साथ कई अहम पहलुओं को भी उजागर किया। उनकी दलील थी कि रेलवे, रोड, कैनाल जैसे सार्वजनिक सुविधा वालों कामों पर किसी भी दलीय व्यवस्था की ओर से किए गए खर्च के आधार पर उसका आकलन हो। क्योंकि सन् 1834 से 1848 के दौरान ईस्ट इंडिया कंपनी की ओर से भारत में किया गया संपूर्ण खर्च मानचेस्टर शहर की जलापूर्ति पर किए गए खर्च से कम था।

इस तथ्य को उजागर कर आंबेडकर ने ब्रिटिश लोगों की ओर से भारतीयों पर किए जाने वाले अन्याय का पर्दाफाश किया। उन्होंने विस्तार से बताया कि सन् 1858 में ईस्ट इंडिया कंपनी को समाप्त करने के बाद उसकी भारत की देनदारी का सारा भार कंपनी की कारस्तानी से भारत के गरीबों पर लाद दिया गया।

स्वर्ण आदान-प्रदान व्यवस्था

प्रख्यात अर्थशास्त्री जॉन मिनार्ड केन्स एवं अन्य मुख्य अर्थशास्त्रियों के मतानुसार स्वर्ण आदान-प्रदान व्यवस्था भारत के लिए आदर्श चलन के मापदंड से ठीक थी। उनके मतानुसार सोने की आवक से स्वर्ण आदान-प्रदान प्रभावित नहीं होगा। कारण यह कि लेन-देन में खुलापन देश के भावी विकास के लिए वांछनीय होता है। डॉ. आंबेडकर ने भी इस व्यवस्था को स्वीकार किया लेकिन यह भी कहा कि यह मिश्रित आशीर्वाद है। उन्होंने करेंसी को छापने वाले तंत्र के विवेकाधिकार पर नियमन रखने की व्यवस्था पर जोर

दिया, उनके मतानुसार स्वर्ण विनिमय व्यवस्था ऐसी कोई गारंटी नहीं देती। यह महंगाई को बढ़ाती है और सामाजिक व आर्थिक स्थिरता के लिए खतरा होने के साथ गरीबों का सबसे अधिक नुकसान करती है।

इससे केन्स जैसे अर्थशास्त्री को दो-टूक कह सकने वाले डॉ. आंबेडकर की ओजस्विता का अनुमान लगाया जा सकता है। हकीकत में आंबेडकर देश की जमीन से जुड़े अर्थशास्त्री थे। इसलिए उनकी बातों से अर्थशास्त्र के बड़े-बड़े सिद्धांतों के बजाए देश की आर्थिक वास्तविकता, लोगों की स्थिति पर आधारित अर्थशास्त्र छलकता था।

दामोदर वैली प्रोजेक्ट

वर्ष 1942 में डॉ. आंबेडकर वायसराय की कार्यकारी परिषद के सदस्य थे। यह एक मंत्री स्तर का पद था जिसका उल्लेख 'डॉ.आंबेडकर रोल ऑन इकोनॉमिक प्लानिंग' पुस्तक में मिलता है। इसमें उन्होंने पांच कॉन्फ्रेंस को संबोधित किया है जिसमें दो दामोदर वैली प्रोजेक्ट, एक महानदी एवं दो इलेक्ट्रिक पावर के लिए थीं। इसके अलावा बिहार व पश्चिम बंगाल को प्रभावित करने वाले कई बहुउद्देश्यों वाले दामोदर वैली प्रोजेक्ट में उनका अमूल्य योगदान था। बाढ़ नियंत्रण, सिंचाई, पेयजल एवं विद्युत उत्पादन इस प्रोजेक्ट के मुख्य हेतु थे। आंबेडकर के अथक प्रयासों से ही दामोदर वैली बिल को दिसंबर 1947 में संविधान सभा में लाया जा सका और फरवरी 1948 में पारित किया गया। दो-दो राज्यों व केन्द्र सरकार के बीच डॉ. आंबेडकर के अद्भुत कार्य निष्पादन से ही चार वर्ष से कम समय में यह प्रोजेक्ट पूरा हो सका और 'रिवर ऑफ शर' मानी जाने वाली दामोदर नदी बिहार व प. बंगाल के लिए वरदान बनी। आजाद भारत का यह सफलतम प्रोजेक्ट था जिसकी सफलता का श्रेय डॉ. आंबेडकर को जाता है।

कृषि का राष्ट्रीयकरण

डॉ .बाबासाहेब आंबेडकर के कृषि संबंधित विचार उनके 'स्मॉल होल्डिंग इन इंडिया एंड देअर रेमेडीज 1917' लेख में देखने को मिलते हैं, जो इंडियन इकोनॉमिक सोसायटी के वर्ष 1918 के अंक में प्रकाशित हुआ था। 'स्टेट्स ऑफ माइनोरिटीज' 1947 के अंक में भी उनके कृषि विषय संबंधी विचार प्रकाशित हुए। उनके द्वारा स्थापित स्वतंत्र मजदूर पक्ष के घोषणापत्र में शामिल बाबासाहेब का कृषि ज्ञान ऐसा है, जो आंखें खोल दे। आंबेडकर के अनुसार देश में जमीन के छोटे-छोटे टुकड़ों पर हो रही खेती बड़ी समस्या है। इससे अधिकांश जमीन बेकार पड़ी रहती है व खाद्य आवक भी अपूर्ण होती है। इसके बदले आर्थिक व व्यावसायिक खेती को अपनाना चाहिए।

डॉ. आंबेडकर के मतानुसार खेती की उत्पादकता केवल जमीन के आधार पर ही नहीं बल्कि अन्य परिबल पूंजी, श्रम व अन्य आवश्यकताओं से भी प्रभावित होती है। उनकी प्रेरणा से ही बाद में लैंड सीलिंग एक्ट को अमल में लाया गया।

खेती के बारे में उनकी सलाह

1 खेती का राष्ट्रीयकरण

2 सामूहिक अथवा सहकारी खेती

3 खेती में खोत पद्धति का उन्मूलन

4 खाद, बीज व सिंचाई सरकार की ओर से हो

5 बजट में खेती के लिए अधिक बजट

6 निजी साहूकारों पर नियंत्रण

... वास्तव में भारतीय मुद्रा के लिए सबसे रोचक बात यह है किस प्रकार स्वर्ण मानक, स्वर्ण विनिमय मानक में परिवर्तित हो गया इस त्रुटि का पर्दाफाश करने के लिए कुछ ऐसे पुराने तथ्यों को जिन्हें लोग विस्मृत कर चुके हैं, पुन: सामने लाने को बाध्य होना पड़ा...

– बाबासाहेब, पुस्तक रुपये की समस्या इसका उद्भव एवं समाधान

> डॉ. आंबेडकर ने चार दशक पहले ही उदारीकरण की नीति की हिमायत की थी। मगर उनकी यह शर्त थी कि यह भारतीय रुपए के अवमूल्यन की कीमत पर न हो। उनका स्पष्ट मानना था कि विनिमय दर ऊंची-नीची हो लेकिन राष्ट्रीय मुद्रा स्थिर रहे। लेकिन उनकी चिंता को समझे बिना विभिन्न सरकारों ने भय के मारे उदारीकरण की नीति को लागू करने में देरी की।

डॉ. आंबेडकर के विचार आज भी प्रासंगिक हैं। नोबेल अवार्ड विजेता भारतीय अर्थशास्त्री डॉ. अमर्त्य सेन ने डॉ. आंबेडकर को अर्थशास्त्र में अपने पितातुल्य माना है।

औद्योगिक विकास पर विचार

डॉ. बाबासाहेब का स्पष्ट रूप से मानना था कि देश का गतिशील विकास औद्योगिक विकास के बिना संभव नहीं है। तेजी से होने वाला औद्योगिक विकास रोजगार बढ़ाएगा, साथ ही विदेशी पूंजी की भी बचत करेगा। सरकार को सामाजिक व राष्ट्रीय जरूरतों को पूरा करने को इसके लिए आगे आना चाहिए। इसी के चलते 50 के दशक में बीएचईएल, एचईएल, ओएनजीसी, एसएआईएल जैसी महाकाय औद्योगिक इकाइयों की स्थापना हुई। बीमा एवं वाहन व्यवहार का राष्ट्रीयकरण होना चाहिए, ऐसा उन्होंने 1944 में कहा था। उसी का अनुपालन करते हुए जीवन बीमा का 1956 में तथा सामान्य बीमा का 1980 में राष्ट्रीयकरण हुआ।

हिन्दू कोड बिल

देश की महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिए डॉ.आंबेडकर के खूब मेहनत से तैयार किए गए हिन्दू कोड बिल को अक्टूबर 1948 में सदन में पेश किया गया। पैतृक संपत्ति में महिलाओं की समान हिस्सेदारी की वकालत करने वाले इस बिल में उनके हितों से जुड़े

स्वर्ण विनिमय व्यवस्था महंगाई बढ़ाती है और सामाजिक व आर्थिक स्थिरता के लिए खतरा होने के साथ गरीबों का सबसे अधिक नुकसान करती है। नोबेल से सम्मानित अर्थशास्त्री डॉ. अमर्त्य सेन ने डॉ. आंबेडकर को अर्थशास्त्र में अपने पितातुल्य माना है।

कई प्रावधान थे, जिसमें भरण-पोषण, स्त्री धन में एकरूपता आदि शामिल थे। लेकिन सदन में यह बिल पारित नहीं होने पर आंबेडकर ने कानून मंत्री के पद से त्यागपत्र दे दिया।

भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना

वर्ष 1926 में भारत यात्रा पर आए हिल्टन यंग कमीशन के, जो इस दौरान आर्थिक व्यवस्था में एकरूपता पर अध्ययन कर रहा था, सभी सदस्यों के हाथ में डॉ. आंबेडकर की 'द प्रॉब्लम ऑफ रुपीजः इट्ज ओरिजिन एंड इट्ज सोल्यूशन' पुस्तक थी। बाबासाहेब ने आयोग के समक्ष ब्रिटिश शासन की खामीयुक्त व्यवस्था का विवरण दिया था, जिसमें उन्होंने धन का नियमन सरकार के बजाए एक स्वायत्त संस्था के माध्यम से होने का सुझाव दिया था। बस यहीं से रिजर्व बैंक की स्थापना की नींव रखी गई और आरबीआई एक्ट 1934 के जरिए रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया की शुरूआत हुई।

श्रम मंत्री के रूप में योगदान

-दिनांक 27 नवंबर, 1942 को भारतीय श्रम अधिवेशन के 7वें सत्र में श्रमिकों के लिए काम के घंटे 14 से घटाकर 8 घंटे करने का प्रस्ताव, जो आज भी यथावत है।

-श्रमजीवी महिलाओं को प्रसूति के दौरान अवकाश व लाभ स्वीकृत हुए।

-देश में पहली बार नेशनल एम्पलायमेंट पॉलिसी कार्यान्वित हुई। आज देशभर में कार्यरत एम्पलायमेंट एजेंसीज डॉ. आंबेडकर की अमूल्य देन।

-दिनांक 8 नवंबर, 1934 को बाबासाहेब के प्रयास से पेश भारतीय ट्रेड यूनियन एक्ट 1943 के ही कारण देश में सबसे शक्तिशाली ट्रेड यूनियन मौजूद हैं।

-श्रमजीवियों के लिए हथियार के समान हड़ताल के अधिकार को कानूनी वैधता बाबासाहेब के कारण ही मिली। -श्रमिकों व कर्मचारियों के जीवन स्तर में वृद्धि हेतु निरंतर वेतन बढ़ोतरी, भत्ते, बोनस आदि सुविधाएं भी डॉ. आंबेडकर के श्रम मंत्री के कार्यकाल में ही स्वीकृत हुईं।

आंबेडकर के जनआंदोलन

डॉ. आंबेडकर के जीवन के साथ अनेक आंदोलन जुडे हैं, इनमें खोत पद्धति और महार वतन आर्थिक आंदोलन प्रमुख हैं। खोत पद्धति के खिलाफ डॉ. आंबेडकर के आंदोलन ने गांवों में रहने वाले गरीब समुदाय को आर्थिक शोषण से मुक्ति दिलाई। जबकि महार वतन जनसंघर्ष ने विशाल ग्रामीण समुदाय को खेत गुलामी के अभिशाप से आजाद कराया। वंचितों को लेकर आंबेडकर की संवेदना उन्हें लोकमान्य तिलक जैसे नेताओं से अलग करती है। तिलक ने वर्ष 1903 में खोत के अधिकारों में कटौती का विरोध किया, हकीकत में खोत के अधिकारों के खिलाफ ब्रिटिश सरकार पहले सक्रिय हुई थी। तिलक ने अपने पत्र 'केसरी' में खोत के समर्थन में अनेक लेख लिखे। तिलक खुद जन्मजात खोत थे, इसलिए वे अपने अधिकारों के लिए लड़े, लेकिन उन्होंने यह विचार नहीं किया कि इससे ग्रामीणों का शोषण होता है। तिलक ने स्वराज की मांग की थी जबकि आंबेडकर सुराज के लिए लड़ते रहे।

जाति व्यवस्था और श्रम विभाजन

आंबेडकर का स्पष्ट रूप से मानना था कि जाति व्यवस्था से जुड़े श्रम विभाजन का निर्मूल स्वतः नहीं होने वाला। यह प्राकृतिक कौशल पर आधारित नहीं था। इसमें पसंद, योग्यता, व्यक्तिगत संवेदना का तो कोई स्थान ही नहीं था। भारतीय सामाजिक ढांचे को बाबासाहेब ने बिना सीढ़ी की बहुमंजिला इमारत बताया जिसमें श्रमिकों का विभाजन एक के ऊपर एक जाति आधारित हुआ है। जाति के कारण ही श्रमिक बंटे व श्रम भी। इसके अनुसार किसी बच्चे ने जिस समाज में जन्म लिया हैं, उसे उसी में मरना होगा। कहने की जरूरत नहीं कि कोई भी श्रमिक ऐसे अनैसर्गिक विभाजन को पसंद नहीं करेगा।

उदारीकरण और आंबेडकर

देश में पिछले दो दशक से उदारीकरण, वैश्वीकरण एवं निजीकरण की नीति अमल में है जो अब सर्वस्वीकृत है। शुरुआत में उदारीकरण का विरोध हुआ लेकिन अब यह दुनिया के साथ भारत में भी फैल चुका है। उदारीकरण की नीति सरकारी नीति व नियमों को सरल बनाने के साथ उद्योगों को एक अनुकूल माहौल प्रदान करती है। डॉ. आंबेडकर ने चार दशक पहले ही उदारीकरण की नीति की हिमायत की थी। मगर उनकी यह शर्त थी कि यह भारतीय रुपए के अवमूल्यन की कीमत पर न हो। उनका स्पष्ट मानना था कि विनिमय दर ऊंची-नीची हो लेकिन राष्ट्रीय मुद्रा स्थिर रहे। लेकिन उनकी चिंता को समझे बिना विभिन्न सरकारों ने भय के मारे उदारीकरण की नीति को लागू करने में देरी की। साथ ही रुपए का मूल्य भी स्थिर नहीं रख सकीं, जिससे भारत को उदारीकरण से जो लाभ होना था, वह नहीं हो सका।

दरअसल बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय की नीति के साथ जुड़ा हुआ डॉ. आंबेडकर का आर्थिक तत्व ज्ञान सामाजिक, धार्मिक एवं नैतिक तत्वों से गुंथा हुआ था, जिसका मध्य बिन्दु शोषित व पीड़ित जन थे। उनका आर्थिक तत्वज्ञान समानता, स्वतंत्रता, एवं बंधुता के सिद्धांत के आधार पर था। प्रज्ञा-विचार शक्ति, शील चरित्र एवं करुणा-दया आधारित जातिहीन लोकतांत्रिक समाज का निर्माण उनके तत्वज्ञान की आत्मा है।

उनका आर्थिक तत्वज्ञान इतना संकुचित भी नहीं था। समग्र देश के लिए क्या सर्वश्रेष्ठ है, उनके मन में हमेशा यही विचार चलता रहता था। ऐसे महान देशभक्त अर्थशास्त्री को देश के एक समुदाय मात्र का नेता बताकर हाशिए पर धकेल देना उनके साथ क्रूर अन्याय जैसा है।■

(लेखक चिंतक एवं 'रिजर्वेशन इन इंडिया मिथ्स एंड रियलिटी' पुस्तक के लेखक हैं)

सौजन्य : बिजेंद्र गुप्ता, अध्यक्ष संस्कार भारती, दिल्ली प्रांत

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:55 PM Page 85

तथागत और बोधिसत्व

दीपक हनुमंत जेवणे

बाबासाहेब के व्यक्तित्व के कई पहलू अविस्मरणीय हैं। साधारण परिवार में जन्म लेकर वे एक असाधारण व्यक्तित्व के धनी बनें। वे सदियों के लिए एक प्रेरणापुरुष साबित हो गए हैं। 'बुद्' यानी बुलबुले से 'बुद्ध'-सी विराटता तक उनका प्रवास रोमांचकारी है। सभी तरह की दासता से 'बद्ध' समाज में उनका जन्म हुआ, मगर भगवान 'बुद्ध' की शरण लेकर उन्होंने अपने साथ अपने सारे समाज को मुक्तिमार्ग दिखलाया। इसलिए उनकी पहचान 'बोधिसत्व' बन गई है और 'तथागत' यह भगवान बुद्ध की पहचान है। डॉ. बाबासाहेब ने मानो आईना बनकर बौद्ध विचारों को अपने आप में पूरा प्रतिबिंबित कर दिया था। उनके जीवन में यह मोड़ अत्यंत प्रारंभिक काल में आया था, ऐसा हम कह सकते हैं।

बाबासाहेब को बचपन से ही भगवान बुद्ध एवं उनके द्वारा स्थापित बौद्ध धर्म का आकर्षण था। जब वे मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण हुए थे तब उनके हितैषी अध्यापक कृष्णाजी अर्जुन केलुसकर ने गौतम बुद्ध की स्वयंलिखित जीवनी बाबासाहेब को भेंट की थी। इस ग्रंथ से उनके मन पर अमिट संस्कार बन गए।

आज हम डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी को संविधान निर्माता के नाते जानते हैं। उनके कंधों पर ऐसा दायित्व डाल कर नियति ने भी इस देश के साथ और समाज के साथ न्याय किया है। पुराने समय में भी धर्मशासी ही समाज धारणा के शास्त्र बनाते थे और उन पर अमल किया जाता था। इसीलिए धर्म, नीति, न्याय और कानून इन संज्ञाओं से समान अर्थ ही झलकता है। संविधान द्वारा इस देश में स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व इन तत्वों की प्रस्थापना हुई है। डॉ. बाबासाहेब ने यह तत्व भगवान बुद्ध के उपदेशों से लेने की बात कही है। व्यक्ति को अपना उद्धार और प्रगति स्वयं प्रयास से ही करनी होती है। तथागत गौतम बुद्ध स्वयं को मनुष्य ही मानते थे और ऐसा उपदेश करते थे कि, मैंने जिस तरह अपने प्रयत्नों से उन्नति की है, उसी तरह सभी लोग उन्नति कर सकते हैं।

नीति का संबंध व्यक्ति और समाज की मानसिकता से होता है और समाज परिवर्तन का कार्य केवल धम्म ही कर सकता है। गौतम बुद्ध ने अपने जीवन में यह कार्य किस तरह किया, इसका डॉ. बाबासाहेब ने गहन अध्ययन किया था और चिंतन भी किया था। उनका 'गौतम बुद्ध और उनका धम्म' शीर्षक ग्रंथ इसी चिंतन का सार है।

यहां बाबासाहेब ने धर्म का प्रयोग नहीं किया है। उन्होंने 'धम्म' शब्द का प्रयोग किया है। सामान्यतः धर्म इस शब्द का अर्थ लोग 'रिलिजन' ऐसा ही करते हैं। बाबासाहेब को यह अर्थ स्वीकार नहीं था। जो धर्मज्ञानी लोग हैं वे धर्म को कदापि रिलिजन नहीं कहते। ऐसा अर्थ लगाना किस तरह से गलत है, यह बताते हुए बाबासाहेब कहते हैं, 'भगवान बुद्ध जिसे धम्म कहते थे वह उस धर्म से मूलतः भिन्न है..रिलिजन व्यक्तिगत होता है और उसे व्यक्ति अपने तक ही सीमित रखें, सार्वजनिक जीवन में उसे अवसर न दें। इसके विपरीत धम्म सामाजिक है और वह मूलतः तत्वतः सामाजिक है।

धम्म अर्थात् सदाचरण अर्थात् जीवन के सभी क्षेत्रों में व्यक्ति-व्यक्ति के बीच बर्ताव उचित होना। व्यक्ति अकेला ही हो तो उसे धम्म की आवश्यकता नहीं है, लेकिन जब दो लोग किसी रिश्तों से एकत्रित आते हैं तो उन्हे पसंद आए या ना आए, लेकिन धम्म अनिवार्य होता ही है। समाज धम्म के बिना नहीं हो सकता है।' इस तरह से साफ-साफ शब्दों में डॉ. बाबासाहेब ने समाज का नियमन करने के लिए धम्म की आवश्यकता किस तरह से है, यह बताया है।

न्याय पर आधारित समाज व्यवस्था कायम करने के

पत्नी सविता आंबेडकर के साथ भगवान बुद्ध की प्रतिमा ले जाते बाबासाहेब

डॉ. आंबेडकर रचित भारत के संविधान में स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के जो तत्व निहित हैं, डॉ. आंबेडकर के लिए उनकी प्रेरणा का स्रोत भगवान गौतम बुद्ध ही थे। गौतम बुद्ध के विचार बाबासाहेब के मन-मस्तिष्क पर तब से स्थापित थे, जब वह बालक थे

सौजन्य : महेंद्र गुप्ता, भाजपा प्रदेश मंत्री, दिल्ली

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:56 PM Page 86

वाराणसी में सद्दतिस्सा और भिक्खु सुमेध के साथ डॉ. आंबेडकर

बाबासाहेब जब हुए बौद्ध

रूढ़िवादी हिन्दू समाज-व्यवस्था को त्यागते हुए भी हिन्दुत्व के ही एक और मुख को चुना। यह अत्यंत हर्ष की बात है। (इंडियन एक्सप्रेस, बंबई) डॉ. आंबेडकर जैसे विख्यात विचारक तथा वैज्ञानिक चिंतन वाले व्यक्ति के, बौद्ध पंथ के एक श्रेष्ठ प्रवक्ता के रूप में, चक्रवर्ती अशोक तथा अन्य ऐतिहासिक व्यक्तियों की श्रेणी में चले जाने को एक विचित्र विडंबना ही कहना पड़ेगा। (हितवाद, नागपुर)

लिए अच्छे कर्म, सदाचार, प्रज्ञा, शील, करुणा का स्वीकार करना आवश्यक होता है। तथागत गौतम बुद्ध की यह विशेषता है कि उन्होंने अपनी वर्ष की आयु में यह कर दिखलाया और केवल वे ही वैसा जीवन नहीं जिए बल्कि उन्होंने लाखों अनुयायियों को वैसा जीवन जीना सिखलाया।

बोधिसत्व डॉ. बाबासाहेब ने तथागत बुद्ध की शरण ली, इससे एक यह भी अर्थ निकलता है कि उन्होंने हमेशा से बुद्ध को अपना मार्गदाता माना था। बुद्ध का भी यही कथन रहा है कि वे मार्गदाता हैं, मुक्तिदाता नहीं। जब व्यक्ति के मन में उभरते सवालों के उत्तर उसे किसी चिंतन में मिलते हैं, तो उसे अपना मार्ग मिल जाता है। शायद डॉ. बाबासाहेब ने अपने जीवन में यही पाया और वे बुद्ध के तत्वज्ञान की ओर आकृष्ट हो गए।

तथागत बुद्ध ने मनुष्य को ही धम्म का केंद्रबिंदु बनाया है। डॉ. बाबासाहेब कहते हैं, 'भगवान गौतम बुद्ध का धम्म एक खोज है। यह कहने का कारण यह है कि पृथ्वी के मानवी जीवन के गहन अध्ययन से उसका उद्‌भव हुआ है। जिस स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण मनुष्य जन्म लेता है उसकी क्रिया-प्रक्रियाओं एवं इतिहास व परंपराओं के कारण उसे प्राप्त वांछित-अवांछित मोड के अनुसंधान का परिणाम बुद्ध धम्म है।'

आगे डॉ. बाबासाहेब ने इस खोज का विवरण भी बताया है। भगवान बुद्ध की खोज को 'प्रत्युत-समुत्पाद' सिद्धांत कहा जाता है। वह बारह कारणों की एक श्रृंखला है। यह सिद्धांत बताता है कि विश्व कार्य-कारण के अनुसार चलता है और ईश्वरीय इच्छा अथवा आज्ञा से नहीं चलता है।

डॉ. बाबासाहेब कहते हैं कि इस दुनिया में एक तरह की सुव्यवस्था है और तथागत का कथन है यह नैसर्गिक व्यवस्था ईश्वर नहीं संभालता, अपितु वह कम्म नियमों के अनुसार चलती है। सृष्टि की नैतिक व्यवस्था अच्छी हो या बुरी, भगवान बुद्ध के विचार में वह व्यक्ति को सौंपी गई है। अन्य किसी को नहीं। कम्म का अर्थ व्यक्ति जो कार्य करता है वह और विपाक का मतलब है उसका परिणाम। यदि नैतिक व्यवस्था बुरी होगी तो उसका कारण मनुष्य अकुशल कम्म कर रहा है। नैतिक व्यवस्था अच्छी हो तो इसका अर्थ केवल इतना ही है कि मनुष्य कुशल कम्म कर रहा है।'

अर्थात्, बाबासाहेब यह स्पष्ट शब्दों में बताते हैं कि समाज के अच्छे रहने के लिए समाज में नैतिक व्यवस्था होनी आवश्यक है। यह नैतिक व्यवस्था अच्छे या बुरे कर्मों से निर्मित होती है। कर्म का फल उस व्यक्ति को ही भुगतना पड़ता है ऐसा नहीं है; अपितु कभी-कभी पूरे समाज को उसके परिणाम भुगतने पड़ते हैं।

डॉ. बाबासाहेब का हिंदू समाज में समानता का अधिकार पाने का संघर्ष निरंतर चला। इसलिए उन्होंने अलग-अलग तरीके अपनाए और आंदोलन भी चलाए। महाड का सत्याग्रह, कालाराम मंदिर सत्याग्रह, पर्वति सत्याग्रह, अंबामाता मंदिर सत्याग्रह एवं राजनीतिक क्षेत्र का पुणे करार इन सभी घटनाओं की पार्श्वभूमि में येवला में अस्पृश्य गुटों के सभी लोगों की जो परिषद हुई थी, उसमें उन्होंने ऐसी घोषणा की थी, 'दुर्भाग्य से मैं अस्पृश्य जाति में जन्मा हूं, यह कोई मेरा अपराध नहीं है, फिर भी मैं हिंदू के रूप में नहीं मरूंगा।' इस घोषणा के बारे में उनके चरित्रकार धनंजय कीर लिखते हैं, 'आंबेडकर की इस घोषणा को दुनिया भर में जितनी प्रसिद्धि मिली उतनी किसी घोषणा को नहीं मिली थी।'

डॉ. बाबासाहेब ने घोषणा तो कर दी थी मगर वे किस धर्म में जाने वाले हैं, यह नहीं बताया था। इस घोषणा से कांग्रेस एवं सनातनी हिंदुओं में प्रचंड दबाव बन गया था। डॉ. बाबासाहेब को समाज में जिस परिवर्तन की अपेक्षा थी, उसके आने का उन्होंने संयम पूर्वक इंतजार भी किया था। इस अपेक्षा और प्रतीक्षा की पूर्ति के लिए जब सफल कदम बढ़ते नजर नहीं आए तब उन्होंने अपने ही कदम तथागत 'बुद्ध' की शरण में जाने के लिए बढ़ाए। जिस समस्या को डॉ. बाबासाहेब ने जाना था, पहचाना था और पूरे हिंदू समाज को अवगत करने का भरसक प्रयास किया, उस समस्या को हल किए बिना इस दुनिया से विदा लेना उनको मंजूर न था। अपने अनुयायियों को वे किंकर्तव्यविमूढ स्थिति में छोड़ना नहीं चाहते थे। जिस यथार्थ को उन्होंने आरंभ किया था उसका गंतव्यस्थान उन्हें तय करना था। उन्हें यह गंतव्य तथागत भगवान बुद्ध के धम्म में नजर आया। अर्थात् इस गंतव्य को उन्होंने पहले भी परोक्ष रूप से बताया भी था। येवला के भाषण के अंत में उन्होंने भगवान बुद्ध का स्मरण किया था और कहा था, 'मुझे इस अवसर पर भगवान बुद्ध का निर्वाण से पूर्व अपने भिक्षु संघ को किया उपदेश और जिसका महापरिनिर्वाण साथ में उल्लेख किया गया है उसका स्मरण होता है। निर्वाण के पूर्व भगवान गौतम बुद्ध ने अपने शिष्यों को उपदेश दिया कि, 'आप दीप की तरह स्वयं प्रकाशित बनें; पृथ्वी की तरह पर प्रकाशित न हो! स्वयं पर विश्वास रखें, अन्य किसी के दास न बनें! सत्य पर चलें और किसी अन्य की शरण में न जाएं!'

अस्पृश्य लोगों को बौद्ध धर्म के मार्ग पर ले जाने का बाबासाहेब का

सौजन्य : नरेंद्र अरोड़ा, विजयनगर, दिल्ली–110009

निर्णय पक्का होता गया और अंत में अक्तूबर को नागपुर में लाखों अनुयायियों के साथ उन्होंने बौद्ध धर्म में प्रवेश किया। सारनाथ में भगवान बुद्ध ने ढाई हजार वर्ष पूर्व धम्मचक्र प्रवर्तन किया था। डॉ.बाबासाहेब ने उसी की पुनरावृत्ति की।

डॉ.बाबासाहेब समाजपुरुष थे। उनका जीवनध्येय व्यक्तिनिष्ठ नहीं बल्कि समाजनिष्ठ था। अस्पृश्यता निर्मूलन का कार्य अगर मुझसे नहीं भी होगा तो भी उसे सारे विश्व के सामने लाने का कार्य मुझे करना होगा। अस्पृश्यता की समस्या हिमालय जैसी है तो भी मैं उससे टकराकर अपना सिर लहूलुहान कर लूंगा ताकि मेरा रक्तलांच्छित सिर देखकर मेरे सात करोड़ अस्पृश्य बंधु इस हिमालय को धराशायी करने हेतु एक पैर पर तैयार हो जाएंगे, ऐसा उनका विश्वास था। आरंभ से ही उन्होंने स्वयं को समूहमन से जोड़ लिया था। अस्पृश्यता यह हिंदू समाज का एक अंग है ऐसा माना गया था, इस लिए डॉ. बाबासाहेब को धार्मिक लड़ाई लड़नी थी। महाड सत्याग्रह के समय अस्पृश्यता की रूढ़ि की डॉ.बाबासाहेब ने विस्तारपूर्वक चिकित्सा की थी। महाड के तालाब पर हुए सत्याग्रह को उन्होंने 'महाड का धर्मसंगर' यह संज्ञा दी थी। यह केवल पानी पीने का अधिकार स्थापित करने की ही लड़ाई नहीं थी बल्कि अस्पृश्य हिंदू स्पृश्य हिंदुओं के समान ही योग्यता के अधिकारी हैं, यह डॉ.बाबासाहेब निर्धारित करना चाहते थे। वे मानते थे कि हिंदू धर्म का तत्वज्ञान समानता की दृष्टि से श्रेष्ठतम है, मगर वह आचरण के स्तर पर बिल्कुल नहीं दिखाई दे रहा था। तत्व और व्यवहार का मेल बैठाना चाहिए, ऐसा उनका मत था। धर्म के दार्शनिक तत्व सामाजिक आचरण में कैसे प्रतिबिंबित हो सकते हैं और उनके अनुसार कैसे व्यवहार हो सकता है, इसीलिए डॉ. बाबासाहेब ने महाड का धर्मसंगर किया था। भारतीय संत परंपरा का एक अधूरा कार्य पूरा करने का प्रयास ही डॉ. बाबासाहेब ने इस माध्यम से किया था। वे तो कहते ही थे कि, 'जब जब धर्म के आचार उस धर्म के विचारों के विरोध में दिखाई देते हैं तब- तब धार्मिक आचारों में बदलाव कर उसे धार्मिक विचारों से सुसंगत कर लेना अत्यंत आवश्यक होता है।'

डॉ. बाबासाहेब ने समाज के प्रस्थापित वर्ग से धर्म के आचारविभाग में बदलाव लाने का आह्वान महाड के धर्मसंगर से उनके सामने रखा था, मगर दुर्भाग्यवश वे लोग उनकी कृति की महानता जान न पाए बल्कि उन लोगों ने उस तालाब की शुद्धि करने का कार्य किया। 'यह शुद्धि समारोह करने वाले पाजी लोगों ने अस्पृश्य लोगों की बदनामी की है' ऐसा डॉ.बाबासाहेब का मत था।

अस्पृश्यता हिंदूधर्म पर लगा कलंक है, ऐसा न मानते हुए इस घटना के बाद डॉ.बाबासाहेब ऐसा मानने लगे कि, अस्पृश्यता यह हमारे नरदेह पर लगा कलंक है। इसलिए इस कलंक को मिटाने का कार्य अस्पृश्य लोगों को ही करना होगा, ऐसी आत्मोद्गार की प्रबल भावना इस संगर से प्रकट हो गई। डॉ.बाबासाहेब ने समानता लाने हेतु जो आंदोलन छेड़े थे, उनके अंत में कुछ उचित परिणाम निकलते नजर ना आने के कारण जीवन के उत्तरार्ध में डॉ. बाबासाहेब हिंदू धर्म के कठोर आलोचक बन गए। अपने जीवनध्येय को साध्य करने के लिए उन्होंने अलग मार्ग चुनने का विचार किया। अगर हिंदू धर्म का पालन किया जाता है तो अस्पृश्यता नहीं जा सकती है और हिंदू धर्म का त्याग किया तो अस्पृश्यता चली जाती है, डॉ.बाबासाहेब ने यह विदारक सत्य समय-समय पर हिंदू समाज के सामने रखने का कार्य किया है। उन्होंने जो धर्मसंगर छेड़ा था उसका अंत हिंदू धर्म के त्याग में होने वाला है, यह तो धीरे-धीरे स्पष्ट हो रहा था। मगर हिंदू समाज से बदला लेने के लिए धर्मांतरण करना -ऐसी भावना उनकी कभी भी नहीं रही थी। हिंदुत्व का त्याग कर हिंदुत्व से शत्रुत्व मोल लेने वाला धर्म तत्वज्ञान स्वीकृत करने की उनकी भूमिका नहीं थी। धर्मांतरण से राष्ट्रांतर नहीं होना चाहिए, इस बारे में डॉ.बाबासाहेब पूरे सावधान थे।

नागपुर में अक्तूबर में डॉ. बाबासाहेब ने कहा था कि, 'बौद्ध धर्म का अंगीकार कर मैं इस देश का अधिक से अधिक हित साध्य कर रहा हूं। क्योंकि बौद्ध धर्म भारतीय संस्कृति का ही हिस्सा है। इस देश की संस्कृति, इतिहास की परंपरा को चोट नहीं पहुंचनी चाहिए, ऐसी पूरी खबरदारी मैंने ली है।'

भगवान गौतम बुद्ध का जन्म इसी भूमि में हुआ है। यहीं पर उन्होंने ज्ञानसाधना की और यही उनको ज्ञानप्राप्ति हुई है। गौतम बुद्ध का प्रथम धम्मचक्रप्रवर्तन इसी भूमि में हुआ और उन्होंने इसी भूमि में अंतिम सांस ली है। डॉ. बाबासाहेब ने इस धम्म का स्वीकार कर अपने सारे अनुयायियों के मन में इस भूमि के बारे में अपरंपार श्रद्धाभाव बनाए रखा। यह अपनी धर्मभूमि है, पुण्यभूमि है, यह भाव भी जागृत रखा। डॉ.बाबासाहेब के धर्मांतरण में इस तरह विधायक और सकारात्मक भूमिका पाई जाती है, इसलिए वास्तव में डॉ.बाबासाहेब का तथागत की शरण में जाना और साथ में अपने अनुयायियों को भी लेना यह धर्म चक्र प्रवर्तन का ही कार्य है। हम उसमें तथागत की महान क्रांति की झलक ही पाते हैं।

> बाबासाहेब का हिंदू समाज में समानता का अधिकार पाने का संघर्ष निरंतर चला। हिन्दू धर्म त्याग देने की उनकी घोषणा से कांग्रेस एवं सनातनी हिंदुओं में प्रचंड दबाव बन गया था। डॉ.बाबासाहेब को समाज में जिस परिवर्तन की अपेक्षा थी, उसके आने का उन्होंने संयम पूर्वक इंतजार भी किया था। लेकिन प्रतीक्षा के बावजूद जब सफलता नही मिली, तब वह हिन्दू धर्म के आलोचक हो गए और 'बुद्ध' की शरण में गए।

उद्गार/अंश

...मैं गौतमबुद्ध, कबीर तथा महात्मा फुले का भक्त हूं और ज्ञान, आत्मसम्मान एवं चरित्र का पुजारी हूं। मुझ में कोई दुर्गुण नहीं है सिवाय इसके कि अध्ययन का बेहद शौक है।...

– सार्वजनिक सभा में, मुंबई, अक्तूबर, 1954

संदर्भ :

सामाजिक न्याय एवं डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर - ले.रमेश पतंगे

संघर्ष महामानव का - ले.रमेश पतंगे

(लेखक साप्ताहिक 'विवेक' में उपसंपादक हैं)

सौजन्य : राजपाल राणा, अध्यक्ष, रूरल एरिया कमेटी नार्थ दिल्ली,एम.सी.डी.

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:58 PM Page 88

राष्ट्रपुरुष हैं आंबेडकर

डॉ. राकेश सिन्हा

आंबेडकर का मूल आग्रह सामाजिक-सांस्कृतिक क्रांति का था। यहीं उनकी सार्थक समानता डॉ. हेडगेवार के साथ स्थापित होती है। दोनों ही दार्शनिक स्तर पर सामाजिक-सांस्कृतिक प्रवाह में निरंतर परिष्कार के पक्षधर थे।

इतिहास की घटनाओं एवं व्यक्तियों का विवेचन और व्याख्या अलग-अलग तरह से की जाती है। ऐसा करने में हमारी अपनी वर्तमान की स्थिति, सोच और भविष्य के प्रति हमारी दृष्टि और कल्पना के साथ-साथ भूत के प्रति चयनित लगाव होता है। हम व्यक्ति और घटनाओं को अपने सांचे में अपने को समृद्ध करने के लिए ढालना चाहते हैं। ऐसा करना ऐतिहासिक व्यक्तित्व को खंडित कर देता है। डॉ. आंबेडकर इसके सबसे अधिक शिकार रहे हैं। उन्हें समग्रता में देखने की चूक उन्हें दलित नेता या नायक तक सीमित कर कर देती है, जो यथार्थ नहीं है।

वस्तुतः उनका फलक बहुत बड़ा था, भूमिका ऐतिहासिक थी। यदि एक शब्द में उनकी भूमिका आंकी जाए तो वह था 'राष्ट्र निर्माण' का कार्य। एक सभ्यता जब राष्ट्र के रूप में रूपांतरित होती है तो उसे सामाजिक-सांस्कृतिक हलचल से गुजरना पड़ता है। इतिहास अपने साथ सिर्फ स्वर्णिम अध्याय और विरासत के साथ ही नहीं, अनेक विपरीत एवं अफसोसजनक परिस्थितियों के साथ हमारे सामने खड़ा होकर राष्ट्र निर्माण के दरवाजे पर दस्तक देता है।

डॉ. आंबेडकर ने हिन्दू समाज में व्याप्त सामाजिक-धार्मिक असमानता को अपूर्णता का प्रतीक माना और इसी अपूर्णता को दूर करने में उन्होंने असाध्य त्याग और तपस्या की। ऐसा नहीं था कि इस प्रश्न पर दूसरे लोग चिंतन और प्रयास नहीं कर रहे थे। आंबेडकर ने ऐसे सभी लोगों को 'नर्स' और अपने आप को उत्पीड़ित दलित समाज की 'माँ' की संज्ञा दी।

वे जानते थे कि भारत की एकता का आधार सांस्कृतिक है और सांस्कृतिक चेतना ही अन्य परिवर्तनों का कारण बनेगी। उनका यह कथन अत्यंत ही प्रासंगिक है जब वे कहते हैं कि सभ्यता गवाह है कि सभी राजनीतिक क्रांतियों के पहले सामाजिक व सांस्कृतिक क्रांति हुई है। वही राजनीतिक क्रांति की सफलता और सार्थकता तय करती है। भारत का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि चन्द्रगुप्त की राजनीतिक क्रांति से पूर्व बुद्ध की सामाजिक-सांस्कृतिक क्रांति हुई थी तो शिवाजी की राजनीतिक क्रांति की सफलता के पीछे महाराष्ट्र के संतों का योगदान है जिन्होंने सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन का बीड़ा उठाया था। इसी संदर्भ में वे गुरुनानक के सामाजिक-सांस्कृतिक बोध और उसके प्रभाव का भी उदाहरण देते हैं।

जाहिर है, आंबेडकर का मूल आग्रह सामाजिक-सांस्कृतिक क्रांति का था। यहीं उनकी सार्थक समानता डॉ. हेडगेवार के साथ स्थापित होती है। दोनों ही दार्शनिक स्तर पर सामाजिक-सांस्कृतिक प्रवाह में निरंतर परिष्कार के पक्षधर थे। डॉ. हेडगेवार ने जब 'एक जन' (वन पीपुल) कहा तो उसका अभिप्राय बुनियादी प्रश्नों पर समानता और राष्ट्रीय दृष्टिकोण में समानधर्मिता होना था।

दोनों ही अस्पृश्यता को व्याधि मानते थे। यही कारण है कि डॉ. आंबेडकर के पूरे जीवन में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रति सहज रूप से सम्मान का भाव था और इसमें वे परिवर्तन की संभावना देखते थे।

डॉ. हेडगेवार ने प्रमाणित कर दिया कि ईमानदार प्रयास से असाध्य भी साध्य बन जाता है। तभी तो महात्मा गांधी और डॉ. आंबेडकर दोनों ही संघ के प्रशिक्षण के दौरान ब्राह्मण और महार को साथ-साथ सहज रूप से जीवन बिताते देख हतप्रभ थे और वे समाज जीवन के डॉक्टर, डॉ. हेडगेवार के कार्यों के प्रति शुभेच्छु बन गए। इसीलिए उन्होंने 'मूक नायक' में लिखा था कि सिद्धांत से कहीं अधिक व्यवहार में आचरण महत्वपूर्ण है।

डॉ. आंबेडकर का प्रयास उन विपत्तियों से मुक्ति दिलाने का था जो समाज को 'एक जन' और एक राष्ट्र होने में व्यवधान खड़े करती हैं। इसमें उन्होंने अस्पृश्यता के प्रश्न को सबसे बड़ी रुकावट माना था। आंबेडकर के जीवन में 1920 से लेकर 1930 तक का कालखंड सामाजिक परिवर्तन के लिए आग्रह,

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:58 PM Page 89

अपील और सत्याग्रह का काल था। 1920 में उन्होंने 'मूक नायक' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया जिसका उद्देश्य दलितों को राष्ट्रीय आंदोलन में जोड़ने के लिए प्रेरित करना और सामाजिक सुधार के लिए जमीन तैयार करना था। यह विडम्बना ही थी कि जिस विरासत, इतिहास, धार्मिक-सांस्कृतिक उपक्रम से वंचित समाज जुड़ना चाहता था, उसे रोका जाता रहा। मंदिर में भगवान की पूजा के लिए उद्वेलित मन व आत्मा इस सामाजिक विषमता से आतंकित थी। सार्वजनिक कुओं से पानी-पीने से लेकर अन्य व्यवहारों में वे बहिष्कृत थे। इसे समाप्त करने के लिए उन्होंने सत्याग्रह का सहारा लिया। 1927 का महाड सत्याग्रह, 1930 का काला राम मंदिर प्रवेश का सत्याग्रह और इसके बाद पुणे का पार्वती सत्याग्रह इसके उदाहरण हैं। डॉ. आंबेडकर के राजनीतिक दर्शन में घृणा और हिंसा का कोई स्थान नहीं था। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की थी कि बड़ी-बड़ी राजनीतिक क्रांति को खून का एक कतरा बहाए बिना अंजाम दिया जा सकता है। भारतीय दर्शन के मूल स्वभाव और मंत्र को अपनाकर उन्होंने दलित-वंचित समाज को उत्तेजित करने वाली और हिंसक एवं अलगाववादी बनानेवाली ताकतों को बड़ा झटका दिया। वे हिन्दू समाज के अन्तर्विरोधों, विरोधाभासों और विपत्तियों से लड़ रहे थे, न कि हिन्दू समाज, हिन्दू अस्मिता एवं हिन्दू संस्कृति से। उनके लम्बे सामाजिक संघर्ष और राजनीतिक जीवन में ऐसे अनेक प्रसंग व उद्धरण हो सकते हैं जो उनकी मूल अवधारणा के भी प्रतिकूल या हमें कचोटने वाले हों। परन्तु वे तात्कालिक थे। हमें इसे विस्मृत कर समझना होगा कि उनका दूरगामी लक्ष्य भारत की सभ्यता, राष्ट्रवाद को संबल देना, संवर्धन करना और पुष्ट बनाना ही था। इसीलिए तो वे स्वयं मानते थे कि राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में विस्मरणशीलता का बड़ा योगदान होता है। राष्ट्र निर्माण में नकारात्मक स्मृतियों को भूलना कितना कारगर होता है। इस संदर्भ में उन्होंने राजनीतिक विज्ञानी अर्नेस्ट रेनन के माध्यम से उत्तर एवं दक्षिण फ्रांस का उदाहरण प्रस्तुत किया। उन्होंने बताया कि दोनों फ्रांसों के बीच लगभग 100 वर्षों तक कटुतापूर्ण संबंध था। परंतु आज स्थिति मित्रवत हो गई है। इसीलिए उन्होंने दलित से भी उस पीड़ा एवं अन्यायपूर्ण घटना को विस्मृत करने का आग्रह किया जो एक जन बनने में बाधक बनती है।

वे जानते थे कि राष्ट्र को खतरा अन्दर की कमजोरियों से होता है। इस संदर्भ में संविधान सभा में उन्होंने प्रश्न उठाया था कि भारत 26 जनवरी, 1950 को गणतंत्र हो जाएगा, परन्तु इसकी स्वतंत्रता का क्या होगा? उन्होंने याद दिलाया कि एक बार हम अपनी स्वतंत्रता खो चुके हैं, कहीं ऐसा फिर से तो नहीं होगा। प्रो. विवेक कुमार 'डॉ. बी. आर. आंबेडकर और राष्ट्र निर्माण की अवधारणा' में लिखते हैं कि 'उन्होंने जयचंद की याद दिलाई जिसने द्वेष के साथ विश्वासघात किया था। क्या फिर से तो ऐसे व्यक्तियों को हमारे शासन एवं सत्ता में जगह नहीं मिलेगी। ऐसी चिंता उनको सता रही थी। इसीलिए उन्होंने संविधान सभा के माध्यम से पूरे भारतीयों से आत्मावलोकन की अपील की जिससे यह राष्ट्र और शक्तिशाली हो सके।

वे राष्ट्र के प्रति एक समर्पित योद्धा थे और उनकी प्रतिभा, परिश्रम और बौद्धिक पराक्रम संविधान सभा के निर्माण के दौरान प्रकट हुआ। संविधान सभा में वे प्रारूप समिति के अध्यक्ष थे। संविधान सभा 2 वर्ष, 11 महीने, 18 दिनों तक अस्तित्व में रही। प्रारूप समिति के सामने 243 धाराएं, 13 अनुसूचियां थीं और अंतिम रूप में इसमें 395 धाराएं, 8 अनुसूचियां थीं। इसके सामने 7,635 संशोधन थे। इससे प्रतीत होता है कि सात सदस्यों वाली प्रारूप समिति के सामने कितना कठिन, जटिल और परिश्रम का कार्य था। इस संदर्भ में आंबेडकर की ऐतिहासिक भूमिका पर रोशनी डालते हुए संविधान सभा के सदस्य टीटी. कृष्णमाचारी ने संविधानसभा में जो बात कही, वह उल्लेखनीय है, 'अध्यक्ष महोदय, मैं उन लोगों में से एक हूं जिन्होंने डॉ. आंबेडकर को सभा में ध्यान से सुना है। मैं जानता हूं कि संविधान का प्रारूप तैयार करने में उन्होंने कितना काम किया और उत्साह दिखाया है। इसलिए अंततः इस संविधान का प्रारूप तैयार करने की जिम्मेदारी डॉ. आंबेडकर के कंधों पर आ गई। मुझे तनिक भी संदेह नहीं है कि इस जिम्मेदारी का निर्वाह उन्होंने जिस कुशलता से किया है, वह प्रशंसनीय है।' कृष्णमाचारी का यह वक्तव्य डॉ. आंबेडकर की संविधान निर्माण में भूमिका और राष्ट्र के प्रति समर्पण को प्रकाशित करता है।

आंबेडकर मानते थे कि भूतकाल में अस्पृश्यता को सांकेतिकता के साथ देखा गया जिसने इस प्रश्न को सामाजिक क्रांति से अलग कर राजनीतिक धारा से जोड़ दिया। उन्होंने दुख प्रकट करते हुए कहा कि कांग्रेस ने तिलक स्वराज फंड के लिए 1920 के दशक में एक करोड़ 30 लाख रुपया एकत्रित किया परन्तु रचनात्मक कार्यों में अस्पृश्यों के उत्थान के लिए मात्र सात हजार ही खर्च किया गया।

इस भूमिका के कारण हम अनुग्रहीत होने का भाव तो रखते हैं परन्तु इतने तक सीमित रहने में हमारी अपनी कृतज्ञता अपूर्ण रह जाती है। आंबेडकर नाम नहीं, एक संदेश है। यह संदेश है अस्पृश्यता को शैक्षणिक सुधार का मुद्दा बनाने की जगह इसके विरुद्ध 'करो या मरो' के सिद्धांत से समाप्त करने का। अस्पृश्यता निवारण अनंत काल का उपक्रम नहीं होना चाहिए। समाज की एकजुटता के लिए प्रतिगामी और प्रतिक्रियावादी तत्वों को परास्त कर एक स्वस्थ सामाजिक पर्यावरण के निर्माण के दायित्व का निर्वाह तो हिन्दू समाज के प्रति समर्पित और सबल कंधा ही कर सकता है। इसीलिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की 2015 प्रतिनिधि सभा का उद्घोष 'एक मंदिर, एक कुआं और एक श्मशान' स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के नारे का नया और प्रभावी और व्यावहारिक संस्करण है, जो औपनिवेशिक काल में महात्मा गांधी, डॉ. आंबेडकर और डॉ. हेडगेवार के सपनों को पूर्णता प्रदान करने की असीम संभावना की अभिव्यक्ति है।

आंबेडकर मानते थे कि भूतकाल में अस्पृश्यता के सवाल को सांकेतिकता के साथ देखा गया जिसने इस प्रश्न को सामाजिक क्रांति से अलग कर राजनीतिक धारा से जोड़ दिया। उदाहरण के तौर पर उन्होंने दुख प्रकट करते हुए कहा कि कांग्रेस ने तिलक स्वराज फंड के लिए 1920 के दशक में एक करोड़ 30 लाख रुपया एकत्रित किया परन्तु रचनात्मक कार्यों में अस्पृश्यों के उत्थान के लिए मात्र सात हजार रुपया ही खर्च किया गया। सांकेतिकता का विकल्प सामाजिक क्रांति का अश्वमेघ है। जिसके आज हम सारथी हैं। उन्होंने जिस 'मूक नायक' के प्रकाशन से समाजोत्थान के लिए यात्रा शुरू की, उसे 'प्रबुद्ध भारत' के प्रकाशन के बाद दैहिक रूप से जरूर विराम लगा लेकिन वे एक संदेश के रूप में वर्तमान समय के साथ सहभागी होकर सामाजिक क्रांति को व्यावहारिक अंजाम देने के लिए दस्तक दे रहे हैं। ■

(लेखक भारत नीति प्रतिष्ठान के मानद निदेशक हैं)

सौजन्य : राजीव गुप्ता, समाजसेवी, बुराड़ी, दिल्ली-110084

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:58 PM Page 90

जिन्हें सत्ता नहीं, समाज चाहिए था

डॉ.सुषमा यादव

डॉ. आंबेडकर का दृढ़ मत था कि भाईचारे से सामाजिकता मजबूत होती है और प्रत्येक व्यक्ति में ऐसा प्रभावशाली लगाव पैदा होता है जिससे वह दूसरों के कल्याण के बारे में सोचता है। जहां लोग दूसरों के साथ सहानुभूति की संपूर्णता का अनुभव नहीं करते हैं, उनके आचरण में समरसता असम्भव होती है।

भीमराव रामोजी आंबेडकर आधुनिक काल के एक विशिष्ट चिंतक के रूप में सम्मानित हैं। वे लोकतंत्र इत्यादि पश्चिमी अवधारणाओं से सहमत नहीं थे। इन अवधारणाओं की गहराई में जाकर उन्होंने यह रेखांकित किया कि किसी समाज के संदर्भ में इन अवधारणाओं की व्याख्या तभी तर्कसंगत होगी, जब इन व्याख्याओं में जनता की भावनाओं को महत्व दिया जाए। उनका दृढ़ मत था कि सभी मनुष्य समान हैं, इसलिए वे चाहते थे कि समाज में समानता की भावना को लागू किया जाए। उनके स्वतन्त्रता एवं मानवता संबंधी विचार सभी मनुष्यों के विवेक और नैतिकता सम्बन्धी क्षमताओं पर आधारित हैं।

डॉ. आंबेडकर के अनुसार भ्रातृत्व अर्थात् भाईचारा मानव के उस गुण का नाम है जिसके अनुसार वह समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ प्यार व सम्मान का भाव रखता है और उनके साथ एकरस होने की इच्छा रखता है। भाईचारे को अनुभव करते हुए उन्होंने कहा कि भाईचारे से सामाजिकता मजबूत होती है और इससे प्रत्येक व्यक्ति में एक ऐसा प्रभावशाली लगाव पैदा होता है जिसके माध्यम से वह व्यावहारिक रूप से दूसरे के कल्याण के बारे में सोचता है। इससे वह दूसरों की भलाई में अपनी भावनाओं को अधिक से अधिक जोड़ता है या कम से कम इसके लिए व्यावहारिक रवैया अपनाता है। भाईचारे की मनोवृत्ति उसे सहजता से सचेत करती है कि वह उस व्यक्ति के समान है जो दूसरों को सम्मान देता है। दूसरों की भलाई उसके लिए उतनी ही स्वाभाविक हो जाती है, जितनी कि हमारे अस्तित्व के लिए कोई भौतिक अवस्था आवश्यक होती है। जहां लोग दूसरों के साथ सहानुभूति की संपूर्णता का अनुभव नहीं करते हैं, उनके आचरण में समरसता असम्भव होती है। जिस व्यक्ति में सामाजिक भावना का अभाव होता है, वह दूसरों के बारे में इसके अलावा कुछ नहीं सोच सकता कि वे उसके प्रतिद्वंद्वी हैं। इसलिए वह अपनी खुशियों के लिए उन्हें पराजित करने की चेष्टा में लगा रहता है।

राजनीतिक दर्शन : इन विचारों के प्रकाश में आंबेडकर ने भारतीय सामाजिक परिस्थितियों को परिभाषित किया। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अगर मानव व उसके मूल्य के सम्मान की अवधारणा को प्रचलित समाज व्यवस्था के संदर्भ में स्थापित न किया जाए, तो वह एक कल्पना मात्र रह सकती है। इन सामाजिक तथ्यों के अवलोकन ने उनके राजनैतिक दर्शन को समृद्ध किया तथा नैतिक परम्पराओं के प्रयोग से उन्होंने अपने विचारों को और विकसित किया। उनके दार्शनिक विचारों की जड़ राजनीति में न होकर धर्म में थी क्योंकि उन्होंने पाया कि भारत में सामाजिक आदर्शवाद और राजनैतिक आदर्शवाद व्यवहार में एक-दूसरे के परस्पर विरोधी हैं। उदाहरण के लिए लोकतंत्र समता और स्वतंत्रता को मान्यता देता है, जबकि प्रचलित समाज व्यवस्था उसे नकार देती है। अतः उनका स्पष्ट मत था कि राजनैतिक लोकतंत्र स्थापित किया जाए और साथ ही साथ सामाजिक न्याय के प्रावधानों को भी सुदृढ़ किया जाए। सामाजिक परिवर्तन के लिए आंबेडकर ने शांति, अनुनय और विधान जैसे कारकों की संस्तुति की। अस्पृश्यता की समस्या के समाधान के लिए और हिन्दू समाज में सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए उन्होंने संस्तुति की कि स्पृश्य और अस्पृश्य दोनों को कानून द्वारा एक साथ नहीं रखा जा सकता, केवल एक ही चीज प्रेम- दोनों को एक साथ रख सकती है। स्पष्ट है कि शीघ्र सामाजिक परिवर्तन के लिए जब शांति और अनुनय-विनय की युक्तियां असफल सिद्ध हों तो विधानों की शक्ति द्वारा सामाजिक परिवर्तन लाया जा सकता है। राजनैतिक परिवर्तनों के लिए उन्होंने जन शिक्षा और दो दलीय प्रणाली लाने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। धार्मिक मामलों में उन्होंने विधान द्वारा मौलिक परिवर्तन लाने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। उनका विश्वास मनुष्यों के पुनः सुधार और हृदय परिवर्तन पर था और बहुत

बेलगाम में शिक्षकों द्वारा आंबेडकर का सम्मान किए जाने का दृश्य। (1940)

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:58 PM Page 91

गहरा विश्वास संवैधानिक साधनों से लाए गए सामाजिक परिवर्तनों पर था।

विवेकपूर्ण आर्थिक समानता की वकालत : आंबेडकर के दर्शन में स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के लिए आवश्यक तत्व सामाजिक न्याय और आर्थिक प्रगति थे। आर्थिक मामलों में उनका दर्शन सामाजिक मानवतावाद का था जिसके अनुसार समाज के विभिन्न वर्गों में विवेकपूर्ण आर्थिक समानता होनी चाहिए। इसके लिए उन्होंने लोकतंत्र को आवश्यक माना। वह समाज जिसका लोकतंत्र में विश्वास नहीं हो, वह लोगों को प्रसन्नता, शांति और समृद्धि का जीवन जीने के लिए विवेकपूर्ण मानवीय संबंध प्रदान नहीं कर सकता। लोकतंत्र समाज के प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में अवकाश और सांस्कृतिक विकास का अवसर प्रदान करता है। मशीनीकरण और आधुनिक सभ्यता ही प्रत्येक व्यक्ति को कुछ अवकाश प्रदान कर सकती है जिससे उसका मस्तिष्क उर्वर बन सकता है और वह आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति कर सकता है। उनकी मानव सम्बन्धी अवधारणा इन शब्दों में परिलक्षित होती हैः 'यह सत्य है कि मनुष्य बनावट और प्रकार्यों में पशुओं के समान पोषण, जनन, इत्यादि में रुचि लेता है, लेकिन ये विशिष्ट रूप से मानवीय कार्य नहीं हैं। मनुष्य का विशिष्ट कार्य तर्क है, जिसका उद्देश्य, निरीक्षण, ध्यान, ज्ञान, ब्रह्मांड के स्वरुप का अध्ययन और खोज, जीवन में सौन्दर्य व वृद्धि और आदिम तत्वों का नियंत्रण है। प्राणी जगत में मनुष्य इस प्रकार सबसे ऊंचा स्थान प्राप्त करता है। अगर यह सही है तो यह निष्कर्ष निकलता है कि जंगली जीवन का अन्तिम उद्देश्य शारीरिक भूखों की संतुष्टि है, जबकि मानवीय अस्तित्व का अन्तिम लक्ष्य तब तक प्राप्त नहीं किया जा सकता जब तक कि वह अपने मनुष्यत्व का पूर्ण विकास न कर ले। संक्षेप में जो जंगली और मनुष्य में अन्तर करता है, वह संस्कृति है। जंगली के लिए संस्कृति सम्भव नहीं है लेकिन मनुष्य के लिए आवश्यक है। अगर ऐसा है तो मानव समाज का उद्देश्य होना चाहिए कि प्रत्येक मनुष्य को सांस्कृतिक जीवन जीने योग्य बनाएं, जिसका तात्पर्य मानसिक उर्वरा से है, जो केवल शारीरिक आवश्यकताओं की संतुष्टि से भिन्न है।'

इस संदर्भ में आंबेडकर ने गांधीवाद का विरोध किया और स्थापित किया कि समाज के लिए आधुनिक सभ्यता आवश्यक है। सामाजिक और आर्थिक संस्थाओं का परिष्कार आवश्यक है। उन्होंने समाज की वर्गीय संरचना का विरोध किया। उनके अनुसार वर्गीय संरचना लोगों को गुलाम बनाती है, और उन मनोवैज्ञानिक जटिलताओं को जन्म देती है जो गुलाम मानसिकता से उपजी हैं, लेकिन सुविधा प्राप्त वर्ग को प्रभावित करती हैं। सामाजिक संरचना में पृथक्कीकरण और बहिष्कार, सुविधा प्राप्त वर्गों में एक अपराधी समूह व असामाजिक भावना का निर्माण करते हैं। वे सोचते हैं कि उनके स्वार्थ हैं और उन्हें प्रत्येक व्यक्ति से बचाना है, यहां तक कि राज्य के हितों के विरुद्ध जाकर भी। यह उनकी संस्कृति को निष्फल और उनकी कला को दिखावटी बनाता है, उनके धन को अस्वच्छ और उनके आचार को दुराध्य बनाता है। व्यावहारिक रूप से वर्गीय संरचना एक तरफ है जिसके साथ क्रूर शासन, अहंकार, घमंड, अभिमान, लालच, स्वार्थ हैं और दूसरी तरफ अनिश्चितता, निर्धनता, सम्मान की हानि, स्वतंत्रता की हानि, आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास, सम्मान और स्वाभिमान है।

> डॉ. आंबेडकर के लिए व्यक्ति का स्थान सर्वोपरि था। समाज और राज्य उनके लिए गौण थे। वे व्यक्ति के अधिकार, उनकी नैतिकता और वैधानिक क्रिया-कलापों को राज्य के अधिनायकवादी अधिकारों से तथा समाज की त्रुटिपूर्ण संरचना से सुरक्षित रखना चाहते थे। मानव समाज को सामाजिक सेवा और व्यक्तिगत स्वार्थों की तिलांजलि पर आधारित धर्म द्वारा बेहतर बनाया जा सकता है।

आंबेडकर ने मार्क्सवादी जीवन पद्धति की संस्तुति भी नहीं की क्योंकि यह मानव जीवन में आर्थिक प्रवृत्ति को आवश्यकता से ज्यादा महत्व देती है। मार्क्सवादी विश्वास करते हैं कि आज तक के सामाजिक अस्तित्व का इतिहास उनके वर्ग संघर्षों का इतिहास है। वर्ग संघर्षों के इतिहास में गरीब व शोषित समाज शक्तिशाली वर्ग द्वारा गुलाम बनाए जाते हैं। इस शोषण को दूर करने का उपाय निजी सम्पत्ति का विनाश है। इन विचारों का सारतत्व आंबेडकर के अनुसार बौद्ध धर्म में है, जिसमें सामाजिक परिवर्तन के लिए हिंसात्मक साधनों का भी निषेध किया गया है। उन्होंने कहा कि प्रेम, अहिंसा ही गरीब, वंचित और निर्बल को मानव समाज में समृद्ध बना सकते हैं।

चिंतनशील राजनीतिज्ञ : आंबेडकर केवल एक बौद्धिक चिंतक ही नहीं थे बल्कि चिंतनशील राजनीतिज्ञ भी थे। उन्होंने भारतीय राजनीति को परम्परागत राजनीति से अलग करने का प्रयास किया। जनता की स्वतन्त्रता के आधार पर उन्होंने भारतीय स्वतन्त्रता को वैधानिक स्वरूप प्रदान किया। एक राजनीतिज्ञ और चिंतक के रूप में उन्होंने भारत के राजनैतिक विकास में प्रभावी योगदान दिया। वे अमरीका के महान शिक्षाशास्त्री प्रो. जॉन. डी. वी. के शिष्य थे, जिन्होंने उनको बहुत प्रभावित किया। प्रोफेसर जॉन. डी. वी. प्रयोजनवादी थे और प्रयोजनवाद की भावना एक युवा, साहसी और प्रयोगवादी की भावना है। राजनीति विज्ञान की यथार्थवादी विचारधारा ने डा. आंबेडकर की विचारधारा को विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया। आंबेडकर के अनुसार यदि राजनीति वास्तविकताओं पर आधारित नहीं है, तो वह कुछ नहीं है। अतः राजनीति की किसी योजना पर निर्णय देने से पूर्व यह आवश्यक है कि इसकी जमीनी योजना पर विचार कर लिया जाए। कोई मुझसे यह पूछ सकता है कि जमीनी योजना से क्या तात्पर्य है? मेरे लिए जमीनी योजना से तात्पर्य समुदाय की सामाजिक संरचना से है, जिस पर राजनीतिक योजना को लागू करना है। इस बात को सिद्ध करने के लिए किसी तर्क की जरूरत नहीं है कि राजनैतिक संरचना, सामाजिक संरचना पर निर्भर करती है। वास्तव में, सामाजिक संरचना का राजनैतिक संरचना पर बहुत गहरा असर होता है। यह इसकी कार्य प्रणाली में सुधार कर सकती है, यह इसे शून्य बना सकती है, यह इसका मजाक उड़ा सकती है।

आंबेडकर का अनुभव था कि जाति प्रथा का भारतीय राजनीति पर गहरा असर है। उनका यह विश्वास था कि जाति प्रथा और लोकतांत्रिक जीवन साथ-साथ नहीं चल सकते। आंबेडकर ने लोकतंत्र को एक जीवन दर्शन के रूप में लिया। उनके लिए यह मानव सम्मान और अधिकारों के वातावरण के निर्माण का महत्वपूर्ण साधन है। लोकतंत्र व्यक्ति के सामाजिक अन्तः रसाकर्षण, मूल्यवाद, विधान के पीछे विधान, साधनों की कुलीनता और सभी मानवी सम्बन्धों में समानता पर जोर देता है। एक विवेकी अनुभववादी के रूप में उन्होंने टिप्पणी की, 'कुछ भी निश्चित नहीं, कुछ भी शाश्वत नहीं है, कुछ भी सनातन नहीं है, प्रत्येक चीज बदल रही है और परिवर्तन ही मनुष्य और समाज का विधान है।'

राज्य सिर्फ एक उपकरण है : राज्य की तुलना में उन्होंने समाज को अधिक महत्व दिया। उनकी मानवीय जीवन सम्बन्धी परियोजना में राज्य

सौजन्य : सुरेंद्र सोलंकी, निगम पार्षद, दक्षिणी दिल्ली

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:59 PM Page 92

जो लोगों को थामता है, वह धर्म है। यही धर्म की सच्ची परिभाषा है। यह मेरी परिभाषा नहीं है। श्री तिलक, सनातनी हिन्दुओं के अग्रणी नेता ने खुद यह परिभाषा दी है। लिहाजा कोई मुझ पर धर्म की झूठी व्याख्या करने का आरोप नहीं लगा सकता। भले ही मैंने इसकी व्याख्या नहीं की, लेकिन ऐसा नहीं है कि मैंने सिर्फ तर्क देने के लिए इसे स्वीकार कर लिया है। मैं इसे स्वीकार करता हूं। धर्म का मतलब है समाज के रख-रखाव के लिए बनाए गए नियम। धर्म के बारे में मेरी भी ऐसी ही संकल्पना है।

– **सार्वजनिक सभा**, मई, 1936

का स्थान गौण है। आंबेडकर ने स्वयं प्रस्तावित किया है कि कोई भी राज्य ऐसी कोई विधि या प्रथा न बनाएगा, न परिवर्तित करेगा जो नागरिकों के विशेषाधिकारों या उन्मुक्तियों को कम करती हो, न ही कोई राज्य विधि की सम्यक प्रक्रिया के बिना किसी व्यक्ति को जीवन, स्वाधीनता और सम्पत्ति से वंचित करेगा, और न ही अपने क्षेत्राधिकार के भीतर किसी व्यक्ति को विधियों के समान संरक्षण से वंचित करेगा। उनके अनुसार जीवन, स्वतंत्रता और सम्पत्ति का वैयक्तिक अधिकार राज्य द्वारा व्यक्ति को दिया गया उपहार नहीं है। ये व्यक्ति के मौलिक अधिकार हैं जिनको उनसे छीना नहीं जा सकता। राज्य का विधिक प्रकार्य इन अधिकारों का सृजन नहीं, बल्कि लोगों की भलाई के लिए इनकी व्याख्या और सुरक्षा है। उनका विचार था कि राज्य को एक उपकरण के रूप में कार्य करना चाहिए और वह राज्य के विधान, राज्य के हितों की रक्षा के लिए होना चाहिए। यही राज्य की पृष्ठभूमि के सिद्धान्त की अवधारणा है। उन्होंने यह अवधारणा अमरीकी संविधान से ली थी जिसने उनको बहुत प्रभावित किया था। उनका विचार था कि लोकतंत्र के विवादास्पद मुद्दों का समाधान वाद-विवाद और आम सहमति के द्वारा किया जाना चाहिए। उनका यह भी विचार था कि लोकतंत्र की सफलता के लिए नैतिक व्यवस्था जरूरी है। उन्होंने आम जनमत की जरूरत पर भी बल दिया। सामाजिक लोकतंत्र की आवश्यकता पर बल देते हुए उन्होंने कहा कि, बिना आर्थिक और सामाजिक लोकतंत्र के राजनैतिक लोकतंत्र, समस्या और खतरे को आमंत्रित करेगा।

डॉ. आंबेडकर के लिए व्यक्ति का स्थान सर्वोपरि था। समाज और राज्य उनके लिए गौण थे। वे व्यक्ति के अधिकार, उनकी नैतिकता और वैधानिक क्रिया-कलापों को राज्य के अधिनायकवादी अधिकारों से तथा समाज की त्रुटिपूर्ण संरचना से सुरक्षित रखना चाहते थे। राज्य और समाज की रक्षा के लिए और समाज के बेहतर भविष्य के लिए ठीक ढंग से काम करना है तो उसके लिए सामाजिक जनतंत्र के आवश्यक तत्व प्रेम, स्वतंत्रता, ईमानदारी, आत्मसम्मान, शांति और न्याय, समता और भाईचारा हैं। यही वे आवश्यक प्रत्यय हैं जिनके आधार पर डॉ. आंबेडकर ने भलाई की अवधारणा विकसित की है।

समाज का रूपान्तरण : वे यह भी नहीं चाहते कि नैतिकता, कानून और धर्म, व्यक्ति के शोषण के हथियार बन जाएं। आंबेडकर ने अपने सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विचारों को नैतिक आधारों पर गढ़ा है। वे सामाजिक, स्तर पर लोगों में एकता चाहते थे और समता, स्वतंत्रता, भाईचारा, प्रेम और सहानुभूति के आधार पर समाज का रूपान्तरण चाहते थे। नैतिक आदर्शों का आधार केवल सहअस्तित्व नहीं है, बल्कि उनका उद्देश्य सामूहिक उत्तरदायित्व के आधार पर मानव समाज में सामाजिक एकता की अनुभूति है।

मानव समाज को सामाजिक सेवा और व्यक्तिगत स्वार्थो की तिलांजलि पर आधारित धर्म द्वारा बेहतर बनाया जा सकता है। उन्होंने भौतिक समृद्धि को समुचित महत्व दिया है। लेकिन साथ ही उन्होंने धार्मिक-नैतिक मूल्यों को और अधिक महत्व दिया है। उनका विश्वास था कि मानव संबंधों को लोकतांत्रिक आधार पर स्थापित करने के लिए मानव की नैतिक मुक्ति आवश्यक है। आंबेडकर का विचार था कि चूंकि ईश्वर नहीं है इसलिए नैतिकता को ही जीवन का विधान होना चाहिए।

आंबेडकर विवेकवादी थे और उनका विचार था कि अच्छाई या बुराई के निर्णय करने का अन्तिम साधन तर्क है। वह परम्परागत धर्मो के मौलिक रूप से असहमत थे। वे अच्छे जीवन, सामाजिक न्याय और सामाजिक सुधार की खोज में थे। उनके लिए मानव की भलाई सर्वोपरि थी। उनका मानना था कि मानवीय अनुभव ही मौलिक ज्ञान और नैतिक मूल्यों का केन्द्र है। वे एक सहनशील, खुले मस्तिष्क के, तार्किक मानवतावादी थे और हमेशा विचार-विमर्श और आलोचना के लिए तैयार रहते थे। आंबेडकर के विचारों को यदि सही संदर्भों में समझ कर लागू करने का प्रयास किया जाए तो भारत में सौहार्दपूर्ण समरस समाज का विकास संभव है।

संदर्भः-

1. बाबा साहेब डा. आंबेडकर,सम्पूर्ण वाड्मय,समाज कल्याण मंत्रालय प्रकाशन, भारत सरकार, नई दिल्ली,
2. जाटव, डी. आर, सोशल फिलॉसफी ऑफ डॉ. आंबेडकर, रावत पब्लिकेशन, जयपुर राजस्थान, 1997
3. डी.सी. कॉन्फ्रेंस 1944 में डॉ.आंबेडकर द्वारा दिया गया वक्तव्य।
4. बाबासाहेब आंबेडकरः राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, महाराष्ट्र सरकार पब्लिकेशन, महाराष्ट्र
5. जाटव, डी.आर, सोशल फिलॉसफी ऑफ डॉ.आंबेडकर, 1997
6. कार्ल मार्क्स एण्ड एफ. एंजेल्स, कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा - पत्र,1957, पृष्ठ 46।
7. डॉ.आंबेडकर ने चौथे विश्व बौद्ध सम्मेलन काठमाण्डू (नेपाल) में 2 नवम्बर, 1956 को बुद्धिज्म एण्ड कम्युनिज्म पर आधारित एक तुलनात्मक लेख पढ़ा पैरा-6।
8. भगवान दास, दस स्पोकः आंबेडकर, सेलेक्टेड स्पीच कम्पाइल्ड सम्पादित खण्ड-1
9. पाइली, एम. वी, कांस्टीट्यूशनल गवर्नमेन्ट ऑफ इंडिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बॉम्बे, 10,पृष्ठ-73।
10. आंबेडकर,बी.आर, द बुद्धा एण्ड द फ्यूचर ऑफ हिज रिलिजन, 195

(लेखिका दिल्ली विश्वविद्यालय में ------)

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:59 PM Page 93

मुक्ति के उद्घोषक

डॉ.संगीत कुमार रागी

यह कहना तो मुश्किल है कि ऐसा सत्ता प्रतिष्ठान की सुनियोजित सोच के कारण हुआ अथवा नहीं, किन्तु इतना निश्चित है कि डॉ. आंबेडकर दलित राजनीति विमर्श में तो प्रधान नायक की तरह उभरते हैं, किन्तु देश के महत्वपूर्ण सवालों पर उनकी सोच एवं दृष्टि को उनके समकालीन नेताओं की तुलना में कम ही लिखा अथवा पढ़ा जाता है।

लोकतंत्र पर उनके विचार बहुत ही बुनियादी एवं मौलिक सवाल खड़े करते हैं। उनके लिए लोकतंत्र का उद्देश्य व्यक्तियों को अधिकार एवं स्वतंत्रता सम्पन्न करना ही नहीं है बल्कि उसका उद्देश्य एक ऐसे समाज निर्माण से है जिसमें बंधुता एवं सहजीवन का भाव हो। सहजीवन का मतलब एक ऐसा समाज जिसका सामूहिक उद्देश्य सबके भले की इच्छा हो और एक दूसरे के प्रति संवेदनशीलता एवं परस्पर सहयोग की भावना हो (कलेक्टेड वर्क्स: राइटिंग एंड स्पीचीज, खंड 17, पृष्ठ 519)। वे कहते हैं कि अधिकार, समता एवं स्वतंत्रता तो ठीक है किन्तु बंधुता के अभाव में स्वतंत्रता समता को एवं समता स्वतंत्रता को नष्ट कर देती है (कलेक्टेड वर्क्स: राइटिंग एंड स्पीचीज, खंड 4, पृष्ठ 283-284)।

उनका लोकतंत्र एक राजनीतिक व्यवस्था एवं शासन प्रणाली तक सीमित नहीं है। वह एक ऐसे समाज निर्माण से जुड़ा है जिसमें सबका भला हो एवं सभी सहभागी महसूस कर सकें। जातिप्रथा इस सहकारी एवं सहभागी जीवन के विपरीत एक ऐसे समाज का निर्माण करती है जो समाज को स्थायी तौर पर शासित एवं शोषित वर्ग में विभाजित कर देती है। उनका मानना था कि राजनीतिक लोकतंत्र के लिए सामाजिक लोकतंत्र आवश्यक शर्त है। एक ऐसी समाज व्यवस्था जो समाज को इस तरह विभाजित कर दे जिसमें एक वर्ग हमेशा शासक के रूप में प्रतिष्ठित हो जाए एवं दूसरा वर्ग हमेशा शासित होने की भावना से ग्रस्त हो, यह लोकतंत्र की मूल अवधारणा के विपरीत है। दुर्भाग्य से भारतीय जातीय व्यवस्था इन्हीं बुराइयों से ग्रसित है। इसलिए अस्पृश्यता जैसी जड़ जाति व्यवस्था का उन्मूलन आवश्यक है।

सामाजिक लोकतंत्र का प्रश्न आंबेडकर के लिए बहुत महत्वपूर्ण है, इतना कि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने अपना सारा जीवन खपा दिया। दलितों के लिए अलग प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की मांग से लेकर उनके सामूहिक धर्म परिवर्तन तक की यात्रा, एक अद्भुत आंतरिक संघर्ष की यात्रा है जिसमें उस समाज के प्रति विद्रोह भी है, प्रेमपूर्ण अद्भुत लगाव भी है और पीड़ा भी है। जिसमें वे जन्मे किन्तु उससे निकलने के लिए जातीय उन्माद को नहीं चुना। न ही वर्ग संघर्ष की भांति जातीय संघर्ष का रास्ता चुना। आज के सामाजिक न्याय के स्वयंभू नेताओं की भांति उनके राजनैतिक मुहावरों में जातीय घृणा का उन्माद नहीं है। यह सच है कि सामाजिक लोकतंत्र पर उनकी सोच गांधी से अलग थी। वे सामाजिक बदलाव की गति से असंतुष्ट थे और चाहते थे कि देश को सामाजिक व्यवस्था के सवाल को प्राथमिकता देकर उसका न्यायसंगत समाधान निकालना चाहिए। समाज के शोषित एवं वंचित लोगों की सामाजिक दशा एवं आर्थिक हालात में स्पष्ट परिवर्तन हो। किन्तु यह भी सच है कि राजनैतिक भाषणों में मनुवाद एवं ब्राह्मणवाद को जी भर कर कोसने के बावजूद जब यह लिखने को आया तो वे यह लिखने से नहीं चूके कि ब्राह्मणों को कई अन्य बातों के लिए दोषी ठहराया जा सकता है किन्तु जातीय व्यवस्था के लिए न तो मनु, और न ही ब्राह्मण दोषी हैं (कलेक्टेड वर्क्स: राइटिंग एंड स्पीचीज, खंड 1, पृष्ठ 16)। आंबेडकर के नाम पर जातीय राजनीति की विषबेल को खाद-पानी देने वाले राजनीतिकों के लिए यह तथ्य पचा पाना मुश्किल होगा कि वे जातीय राजनीति के सख्त खिलाफ थे। उनका विरोध जाति-व्यवस्था से था किन्तु इससे निकलने अथवा विकल्प के रूप में उन्होंने जातीय राजनीति को नहीं बढ़ाया। इसके विपरीत उन्होंने हमेशा कांग्रेस को इस बात के लिए कोसा कि यह पार्टी लोकसभा एवं विधानसभा चुनावों में जातीय समीकरण को ध्यान में रख उम्मीदवार खड़े करती है (कलेक्टेड वर्क्स: राइटिंग एंड स्पीचीज, खंड 17, भाग 3ए पृष्ठ 522)। शिक्षित लोग चुने जाएं वह ठीक किन्तु औपचारिक शिक्षा को आवश्यक बनाने का मतलब शोषित एवं वंचित लोगों के प्रतिनिधित्व को कमजोर करना है। लोकतंत्र पर उनकी दृष्टि गांधी से अलग थी किन्तु अंतर उद्देश्य को लेकर नहीं था बल्कि तरीकों एवं गति को लेकर था।

उनके सामाजिक लोकतंत्र का दूसरा पहलू था समाज के शोषित एवं वंचित समुदाय के लोगों को राजनैतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था में उचित प्रतिनिधित्व देना। वे इन वंचित लोगों के लिए आरक्षण जैसे प्रावधान के बहुत मुखर समर्थक नहीं थे। और इसका कारण था। वे मानते थे कि इस प्रकार का प्रावधान इस वर्ग को हमेशा के लिए अपंग बना देगा। उनका यह स्पष्ट अभिमत था कि वंचित वर्ग को उच्च

> लोकतंत्र पर आंबेडकर के विचार कई बुनियादी व मौलिक सवाल खड़े करते हैं। उनके लिए लोकतंत्र का उद्देश्य लोगों को अधिकार एवं स्वतंत्रता सम्पन्न करना ही नहीं वरन् ऐसे समाज का निर्माण है जिसमें बंधुता एवं सहजीवन का भाव हो। लोकसभा एवं विधानसभा चुनावों में जातीय समीकरण को ध्यान में रख उम्मीदवार खड़े करने पर उन्होंने कांग्रेस को हमेशा कोसा।

सौजन्य : चंद्रकिरण, जैन कॉलोनी, दिल्ली–110007

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:59 PM Page 94

शिक्षा दी जाए जिसमें वह समाज के अन्य वर्ग के लोगों के समकक्ष अपनी क्षमता एवं गुणवत्ता के आधार पर खड़ा हो सके।

वे मानते थे कि राजनीति में ज्यादा से ज्यादा शिक्षित लोग आएंगे तो राजनैतिक व्यवस्था एवं लोकतंत्र की क्षमता में गुणात्मक परिवर्तन आएगा। किन्तु उन्होंने चुने जाने वाले प्रतिनिधियों के लिए न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता को आवश्यक बनाने के हर प्रस्ताव का विरोध किया। उनका मानना था कि ऐसे किसी भी प्रावधान से अशिक्षित शोषित वर्ग के हितों का नुकसान होगा। उससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि चुने हुए प्रतिनिधियों में औपचारिक शिक्षा से ज्यादा यदि कुछ अन्य गुणों की आवश्यकता है तो वह है उनका प्रज्ञावान एवं शीलवान होना (कलेक्टेड वर्क्सः राइटिंग एवं स्पीचीज, खंड 17, पृष्ठ 16)। प्रज्ञा एवं शील के अभाव में औपचारिक शिक्षा का कोई मोल नहीं रह जाता।

स्वस्थ लोकतंत्र के आवश्यक तत्व

उन्होंने सामाजिक-आर्थिक विषमता को खत्म करने के अतिरिक्त जिन अन्य महत्वपूर्ण तत्वों को स्वस्थ लोकतंत्र के लिए आवश्यक बताया, वे थेः लोकतांत्रिक एवं संवैधानिक नैतिकता का प्रभावी होना, संवैधानिक संस्थानों का अपने मूल्यों के अनुरूप कार्य करना, जिम्मेदार सशक्त विपक्ष एवं जागरूक लोक समाज का होना, जिसकी संवैधानिक परिवर्तन में गहरी आस्था हो।

आंबेडकर इस बात के प्रति गंभीर थे कि संवैधानिक संस्थाओं का अवमूल्यन होने पर लोकतंत्र को सुरक्षित नहीं रखा जा सकता। विगत दशकों में जिस प्रकार से राज्यपाल, लोकसभा अध्यक्ष, सांसदों एवं विधायकों में नैतिक मूल्यबोध एवं संवैधानिक नैतिकता का क्षरण देखने को मिलता है, उसमें डॉ. आंबेडकर की चेतावनी साफ दिखती है। संवैधानिक नैतिकता का क्षरण राजनीति को सिद्धान्तहीन व आधारहीन बना देता है। दलबदल कानून का दुरुपयोग, राज्यपालों के द्वारा संवैधानिक प्रतिमानों एवं परम्पराओं का लगातार हनन इस बात का संकेत है कि संवैधानिक नैतिकता के अभाव में लोकतंत्र कितना तत्वविहीन एवं शुचिताहीन हो जाता है (कलेक्टेड वर्क्स : राइटिंग एंड स्पीचीज, खंड 17, भाग 3, पृष्ठ 480)। संवैधानिक नैतिकता लोकतंत्र के लिए आवश्यक है। ब्रिटेन में इसी को संवैधानिक परम्परा कहा जाता है। होती तो ये परम्पराएं ही हैं किन्तु कोई भी दल इनके अतिक्रमण को चेष्टा नहीं करता। इसी का नतीजा है कि 1922 के पश्चात् लार्ड्स सभा का कोई भी सदस्य प्रधानमंत्री नहीं बना है। यह सिर्फ मान्यता का परिणाम है कि प्रधानमंत्री सिर्फ और सिर्फ लोकप्रिय सदन से चुना जाता है। संसदीय लोकतंत्र में किसी भी सदन का सदस्य होना इस पद के लिए काफी है। किन्तु इस परंपरा का निर्वाह किया जाता है, न कि राजनैतिक हितों के लिए इसकी बलि देने अथवा तोड़ने की राह खोजी जाती है। इसके ठीक विपरीत भारत में हमने एक बार 1966 में इसकी बलि क्या दी कि यह अपने आप में नियम ही बन गया। जनता का आत्मकेन्द्रित होना और सामाजिक हितों के प्रति तटस्थता लोकतंत्र के लिए शुभ नहीं है।

लोकतंत्र का मतलब है स्वशासन जिसमें जनता अपने चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा सत्ता का संचालन करती है। लोकतंत्र वंशानुगत एवं निरंकुश शासन दोनों का विरोध करता है। सत्ता निरंकुश न हो जाए इसीलिए ही चुनाव की व्यवस्था है। लेकिन एक बार चुन लिए जाने के पश्चात भी निरंकुशता एवं स्वेच्छाचारिता की संभावना खत्म नहीं हो जाती। इसलिए एक सशक्त विपक्ष का होना आवश्यक है (कलेक्टेड वर्क्स : राइटिंग एंड स्पीचीज, खण्ड 17 पृष्ठ 474-485)। एक सशक्त विपक्ष सरकार की खामियों को उजागर कर उसकी जनता के प्रति जवाबदेही को सुनिश्चित करता है और सरकार को निरंकुश एवं असंवेदनशील बनने से रोकता है। आंबेडकर ने उन अखबारों एवं पत्रिकाओं को भी खबरदार किया है जो विज्ञापन के लोभ में आकर विपक्ष की आवाज को उचित स्थान एवं महत्व नहीं देतीं। उनका मानना था कि ऐसी पत्रकारिता लोकतंत्र के लिए नुकसानदेह है।

उनका मानना था कि यह सरकार का भी दायित्व बनता है कि वह विपक्ष को साथ लेकर चले। बहुमत का प्रयोग विपक्ष को कुचलने या तिरस्कृत करने के लिए नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा होता है तो वह बहुमत का अल्पमत पर अत्याचार जैसा ही है। ऐसे में अल्पमत विपक्ष संसदीय लोकतांत्रिक प्रक्रिया के विरुद्ध आवेश एवं विश्वास खो देता है जो ठीक नहीं है (आईबीआरडी 842-843) किन्तु साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि विपक्ष संवैधानिक प्रक्रियाओं का दुरुपयोग न करे। हर बात पर कामरोको अथवा निंदा प्रस्ताव लाकर संवैधानिक संसदीय प्रक्रिया को बाधित करना लोकतंत्र के लिए ठीक नहीं है। विपक्ष का बार-बार आंदोलन करना, चाहे वह असहयोग एवं अहिंसक ही क्यों न हो, लोकतंत्र को पटरी से उतारने जैसा ही उपक्रम है। ऐसे आंदोलनों को उन्होंने 'अराजकता का व्याकरण' कहा है।

उन्होंने भाषा के आधार पर राज्यों के गठन की हिमायत की लेकिन उनकी दृष्टि में एक राज्य की एक भाषा होनी चाहिए, न कि एक भाषा वालों के लिए एक राज्य। उनके विचार में एक भाषा वालों के लिए एक राज्य बनाने का मतलब भाषा आधारित क्षेत्रीय राष्ट्रवाद को जन्म देना है जो समय के साथ क्षेत्रीय ध्रुवीकरण की राजनीति को ताकत प्रदान करेगा। एक ही भाषा-भाषी लोगों के लिए एक राज्य का गठन करना एवं सिर्फ उसी भाषा को आधिकारिक भाषा के रूप में स्वीकार करने का मतलब एक नये महजबी उन्माद को जन्म देने जैसा ही है । इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी कहा कि सारे राज्यों एवं केन्द्र की आधिकारिक भाषा भी एक हो । यह आपसी संवाद एवं सामूहिक सोच को विकसित करेगा। भाषा सिर्फ संप्रेषण का माध्यम नहीं है बल्कि यह समाज को जोड़ने की एक सशक्त विधा भी है।

एक सबल लोकतंत्र राष्ट्र को सबल बनाता है। उसमें जातीय, भाषायी अथवा पंथिक अलगाव की मानसिकता के लिए कोई जगह नहीं है। यही कारण है कि उन्होंने समान नागरिक संहिता की पुरजोर वकालत की। उनका मानना था कि सभी धार्मिक सम्प्रदाय अपने-अपने पंथिक नियमों एवं कानूनों के जरिए यदि समुदाय के लोगों को संचालित करेंगे तो संवैधानिक लोकतंत्र कमजोर होगा। मुस्लिम नेताओं का यह तर्क कि उनका पर्सनल लॉ शरीअत दैवीय है, उन्हें मान्य नहीं था। उन्होंने यह तर्क मानने से इनकार कर दिया कि भारत में लागू शरीअत कानून एक दैवीय कानून है, जिसमें बदलाव नहीं किया जा सकता। उनका कहना था कि यह कानून तो ब्रिटिश शासकों द्वारा लाया गया। इतना ही नहीं, जिस शरीअत कानून में बदलाव पर मुस्लिम नेता इतने उत्तेजित हो जाते हैं और उसे अल्पसंख्यकों की पहचान नष्ट करने की साजिश बताते हैं, उस शरीअत कानून को कई क्षेत्रों के मुस्लिमों, उनकी परम्परा एवं रिवाजों पर जबरन थोपा गया है। वे चाहते थे कि अल्पसंख्यकों की सुरक्षा हो किन्तु 'अल्पसंख्यक पहचान' का प्रश्न फिर से राष्ट्र में नये ध्रुवीकरण का कारण नहीं बने। समान नागरिक संहिता एक नये उदारवादी लोकतंत्र की सार्थकता के लिए आवश्यक है।

आंबेडकर का लोकतंत्र जातीय लोकतंत्र नहीं है, बेशक जातीय राजनीति के ठेकेदारों ने अपने राजनैतिक हितों के लिए आंबेडकर को इसी रूप में परोसा है। यह और बात है कि इसने आंबेडकर के विचार संसार को सीमित ही किया है और उनकी बौद्धिक विरासत को राष्ट्रीय चिंतन से वंचित किया है। ■

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं)

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:59 PM Page 95

डॉ. आंबेडकर का जीवनपट

14-4-1891 :	जन्म-महू (मध्य प्रदेश)
नवंबर 1912 :	बी.ए.की परीक्षा, परिणाम 1913 प्रारंभ में
2-2-1913 :	पिता रामजी की मृत्यु
20-7-1913 :	उच्च शिक्षा के लिए न्यूयॉर्क पहुंचे
2-6-1915 :	एम.ए.
1916 :	पी.एचडी। 1927 में शोध प्रबंध (इवोल्यूशन ऑफ प्रोविजन ऑफ फायनेंस इन ब्रिटिश इंडिया) की प्रस्तुति व उपाधि की प्राप्ति
अक्तूबर 1916 :	लंदन के 'स्कूल आफ इकोनोमिक्स' में प्रवेश
नवंबर 1916 :	'ग्रेज इन' में 'बार' में प्रवेश
10-11-1918 :	मुम्बई के सिडन होम महाविद्यालय में प्राध्यापक पद पर अल्पकालिक नियुक्ति
27-1-1919 :	साऊथबरो समिति के सामने प्रतिवेदन प्रस्तुत किया
31-1-1920 :	'मूकनायक' की शुरुआत
मार्च 1920 :	माणगाँव में सम्पन्न महाराष्ट्र अस्पृश्य परिषद् की अध्यक्षता
5-7-1920 :	पढ़ाई के लिए पुनः इंग्लैंड गमन
जून 1921 :	एम.एस.सी.के लिए शोधप्रबंध 'प्रोविन्शियल डिसेन्ट्रलाइजेशन ऑफ इम्पीरियल ब्रिटिश इंडिया' लंदन विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया
अक्तूबर 1922 :	डी.एससी. के लिए शोधप्रबंध 'प्रोबलम्स ऑफ दि रूपी' लंदन विश्वविद्यालय में प्रस्तुत
4-8-1923 :	अस्पृश्यों को सार्वजनिक स्थानों पर मुक्त प्रवेश : सी.के.बोले का प्रस्ताव
नवम्बर 1923 :	लंदन विश्वविद्यालय से डी.एससी.की उपाधि
15-6-1924 :	राजरत्न का जन्म
19-7-1924 :	राजरत्न की मृत्यु (खैरमोडे 2.102)
20-7-1924 :	बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना (खैरमोडे 2.1106)
20-6-1925 से 31-3-1928तक :	'बाटली बायज एकाउण्टेन्सी इंस्टीट्यूट' में 'प्रोफेसर आफ मर्केण्टाइल लॉ' के पद पर नियुक्ति
5-8-1926 :	अस्पृश्यों को सार्वजनिक स्थानों पर मुक्त प्रवेश देने के श्री सी.के.बोले के प्रस्ताव को अमल में न लाने वाली नगर परिषदों, जिला मंडलों को दी जाने वाली वार्षिक धनराशि बंद करने का श्री बोले का प्रस्ताव
दिसंबर 1926 :	मुम्बई के प्रांतीय विधिमंडल में नियुक्ति
19,20-3-1927:	महार परिषद् का प्रथमार्ध, अस्पृश्यों ने चवदार ताल का पानी पिया
3-4-1927 :	'बहिष्कृत भारत' प्रारंभ (कीर-81)
25-11-1927 :	बहिष्कृत भारत में सम्पादकीय 'अस्पृश्यता व सत्याग्रहाची सिद्धी'
25 से 27 दिसंबर 1927 :	महाड परिषद् का द्वितीयार्ध, मनुस्मृति दहन, तालाब पर अस्पृश्यों का घेरा
जून 1928 :	लॉ कॉलेज में प्राध्यापक पद पर नियुक्ति (कीर, 121)
19-3-1928 :	महार वतन विधेयक, विधिमंडल में रखा
8-4-1928 :	समाज समता संघ की स्थापना
25-5-1928 :	समाज समता संघ के आधार श्रीधर ब.तिलक द्वारा आत्महत्या
29-6-1928 :	देवराज नाइक के संपादकत्व में 'समता' पाक्षिक का प्रारंभ
जून 1928 :	बहिष्कृत हितकारिणी सभा का विसर्जन, भारतीय बहिष्कृत समाज शिक्षण प्रसारक मंडल की स्थापना, भारतीय बहिष्कृत समाज सेवा समिति की स्थापना
3-8-1928 :	साइमन कमीशन को सहयोग देने के लिए स्थापित समिति में विधिमंडल द्वारा नियुक्ति
23-10-1928 :	साइमन कमीशन के सामने मौखिक गवाही
5-11-1928 :	स्टार्ट समिति की स्थापना व उसमें समावेश
7-12-1928 :	लाला लाजपतराय की मृत्यु पर 'बहिष्कृत भारत' में लेख
17-5-1929 :	साइमन कमीशन के सम्मुख प्रतिवेदन का लेखन पूर्ण हुआ
29-5-1929 :	पातुर्डे में मध्यप्रांत दलित वर्ग परिषद् की अध्यक्षता
1929 :	बंबई में मजदूरों की हड़ताल, मार्च से जून तक पन्हाला में स्थानांतर

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 3:59 PM Page 96

15-11-1929 : 'बहिष्कृत भारत' में पर्वतीय सत्याग्रह का समालोचन
8-9-8-1930 : आंबेडकर की अध्यक्षता में 'आल इंडिया डिप्रेस्ड क्लासेस' का नागपुर में पहला अधिवेशन
11-9-1930 : गोलमेज परिषद् के लिए अस्पृश्यों के प्रतिनिधि के रूप में नियुक्ति
4-10-1930 : गोलमेज परिषद् के लिए इंग्लैंड प्रस्थान
20-11-1930 : गोलमेज परिषद् में अस्पृश्यों की बात रखी
19-4-1931 : परल विलेज स्कूल, बंबई में अखिल भारतीय अस्पृश्य नेताओं की परिषद्, उसमें मारपीट
जुलाई 1931 : दूसरी गोलमेज परिषद् का निमंत्रण
14-8-1931 : 'मणि भवन' में गांधी जी से मुलाकात
15-8-1931 : दूसरी गोलमेज परिषद् के लिए बंबई से रवानगी
15-9-1931 : दूसरी गोलमेज परिषद् में गांधी जी का भाषण
8-10-1931 : गांधी जी ने कहा कि 'अल्पसंख्यकों की एकता करने में मैं असफल रहा हूं'
29-1-1932 : इंग्लैंड-अमेरिका के प्रवास से बंबई वापसी व चौदह संस्थाओं द्वारा मानपत्र अर्पण
6-3-1932 : राजा-मुंजे समझौता पर दिल्ली में हस्ताक्षर
26-5-1932 : राजा-मुंजे समझौता के कारण शीघ्रता से इंग्लैंड रवानगी (यात्रा की यथासंभव गुप्तता)
10-7-1932 : बंबई की भांगवाडी के नाट्यगृह में राजा की अध्यक्षता में अस्पृश्यों की सभा, मारपीट, एक की मृत्यु
10-8-1932 : मेक्डोनाल्ड ने जातीय निर्णय की घोषणा की
20-9-1932 : निर्णय के विरोध में गांधी जी की भूख हड़ताल
24-9-1932 : पुणे समझौता
27-9-1932 : गांधी जी की भूख हड़ताल समाप्त, उसके पूर्व पुणे समझौता को सरकार ने मान्यता दी
27-5-1935 : रमाबाई की मृत्यु
2-6-1935 : बंबई के सरकारी विधि महाविद्यालय का प्राचार्य पद स्वीकार किया।
13-10-1935 : बंबई क्षेत्रीय दलित परिषद् की अध्यक्षता
12-1-1936 : आंबेडकर व सोलंकी की सिखों के भजन में उपस्थिति
15-8-1936 : स्वतंत्र मजदूर दल का घोषणा पत्र घोषित
17-3-1937 : महाड मुकदमे का निर्णय
19-7-1937 : कांग्रेस ने मंत्रिमंडल बनाया
दिसंबर 1937 : पंढरपुर अस्पृश्य जिला परिषद् की अध्यक्षता
19-1-1938 : महाड में शेतकरी परिषद् में भाषण
19-3-1938 : 'विधिवृत्त' के तटणीस की अध्यक्षता में थैली
7-11-1938 : स्वतंत्र मजदूर दल व गिरणी कामगार यूनियन की हड़ताल
दिसंबर 1938 : औरंगाबाद दलित जिला परिषद् की अध्यक्षता
जनवरी 1939 : महाड में शेतकरी परिषद् में भाषण
18-4-1939 : राजकोट में हुई अस्पृश्यता सभा में संघर्ष व स्वावलंबन का संदेश
अक्तूबर 1939 : गवर्नर जनरल की युद्ध परिस्थिति के विषय में अन्य नेताओं की तरह डॉ. आंबेडकर से भेंट
8-8-1940 : गवर्नर जनरल ने आश्वासन दिया कि संविधान में अस्पृश्यों की सहमति के बिना परिवर्तन नहीं किए जाएंगे
दिसंबर 1940 : 'पाकिस्तान' पुस्तक का प्रकाशन
9-7-1942 : गवर्नर जनरल के मंत्रिमंडल में प्रवेश
17, 20-7-1942: शेतकरी कामगार फेडरेशन की स्थापना
20-7-1942 : मजदूर सदस्य के रूप में काम स्वीकार किया
7-8-1942 : ज्वाइंट लेबर कॉन्फ्रेंस में भाषण
8-8-1942 : कांग्रेस द्वारा 'भारत छोड़ो' आंदोलन की घोषणा
29-8-1942 : महाराज्यपाल से दलितों की मांगों का गुप्त निवेदन
9-11-1942 : विषय पर भाषण
1942 : इन चार ग्रंथों का लेखन प्रारंभ
18-1-1943 : पुणे में न्या.रानाडे जयंती निमित्त 'रानडे, गांधी व जिन्ना' विषय पर भाषण
9-12-1943 : धनबाद की कोयला खदान का दौरा
22-9-1944 : मद्रास महापालिका द्वारा मानपत्र
23-9-1944 : फेडरेशन के कार्यकारी मंडल की रा.ब.एन. शिवराज की अध्यक्षता में सभा, आंबेडकर विशेष निमंत्रित
24-9-1944 : मद्रास के पार्क टाउन में अस्पृश्यों की सभा में भाषण, मद्रास रेशनल सोसायटी की ओर से 'रेशनलिज्म इन इंडिया' विषय पर

सौजन्य : अरविन्द गर्ग, निगम पार्षद, कमला नगर, दिल्ली-110007

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 4:00 PM Page 97

		भाषण
जनवरी 1945	:	पहले सप्ताह में कलकत्ता प्रवास
6-5-1945	:	शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन में भाषण
जून 1945	:	पुस्तक प्रकाशित
15-3-1946	:	ब्रिटिश प्रधानमंत्री क्लेमेण्ट एटली की हिन्दुस्तान को स्वतंत्रता प्राप्त करने के अधिकार की घोषणा
2-4-1946	:	शे.का.फेडरेशन की दिल्ली बैठक में भाषण
16-5-1946	:	राजपत्र में आंबेडकर की मांगों को नकारा गया
20-6-1946	:	सिद्धार्थ कॉलेज का शुभारंभ
25-6-1946	:	बॉम्बे सेंट्रल स्टेशन पर स्वागत व भाषण, अस्पृश्यों को राज्यकर्ता जाति बनना चाहिए
28-6-1946	:	दूसरा महायुद्ध समाप्त
15-7-1946	:	पुणे में विधिमंडल पर प्रदर्शन
अगस्त 1946	:	इंग्लैण्ड जाकर अपनी बात रखी
5-11-1946	:	संसद के प्रमुख सदस्यों के सामने बात रखी
9-12-1946	:	संविधान सभा के काम की शुरुआत
17-12-1-1946	:	संविधान सभा में दिया पहला प्रसिद्ध भाषण
20-1-1947	:	पं. नेहरू का मूलभूत अधिकारों के विषय में रखा प्रस्ताव पारित
24-1-1947	:	सरदार पटेल की अध्यक्षता में सलाहकार समिति का गठन, उसमें आंबेडकर का समावेश
11-4-1947	:	हिंदू कोड बिल विधिमंडल में प्रस्तुत
जुलाई 1947	:	कांग्रेस के समर्थन से संविधान समिति में नियुक्ति
29-8-1947	:	प्रारूप समिति में नियुक्ति
30-1-1948	:	गांधीजी की हत्या
9-4-1948	:	हिंदू कोड बिल प्रवर समिति को भेजा गया
15-4-1948	:	डॉ.शारदा कबीर से विवाह
11-2-1949	:	हिंदू कोड बिल की प्रवर समिति से वापसी व उस पर चर्चा प्रारंभ
25-11-1949	:	संविधान समिति में अंतिम मतदान
11-1-1950	:	शे.का.फेडरेशन की बंबई में सभा, वृति व नीति में परिवर्तन, संविधान निर्माण में योगदान देने का गर्व
14-12-1950	:	हिंदू कोड बिल पर विधिमंडल में विस्तृत चर्चा
अप्रैल 1951	:	सरकार पर आरोप लगाया कि वह दलित हित के प्रति उदासीन है
25-9-1951	:	हिंदू कोड बिल की चौथी धारा पारित
11-10-1951	:	मंत्रिमंडल से त्यागपत्र
जनवरी 1952	:	लोकसभा चुनाव में पराजय
मार्च 1952	:	राज्यसभा के लिए चुने गये
1-6-1952	:	डी.लिट्.की मानद उपाधि लेने के लिए बंबई से न्यूयॉर्क प्रस्थान
5-6-1952	:	कोलंबिया विश्वविद्यालय ने डी.लिट् उपाधि दी
2-9-1953	:	आंध्र विधेयक पर दिया गया प्रसिद्ध भाषण
1953	:	अस्पृश्यता विरोधी प्रतिबंधों की अवहेलना करने वालों को सजा देने के प्रावधान का लोकसभा में प्रस्ताव रखा गया
4-1-1954	:	अन्ने द्वारा बनाये गये चित्रपट 'महात्मा फुले' के लिए धन्यवाद
अप्रैल 1954	:	लोकसभा के लिए हुए भण्डारा उपचुनाव में पराजित
3-10-1954	:	आकाशवाणी से 'माझे वैयक्तिक तत्वज्ञान' विषय पर भाषण
29-10-1954	:	शे.का.फेडरेशन द्वारा एक लाख अस्सी हजार रुपये की थैली भेंट में दी गई।
दिसंबर 1954	:	विश्व बौद्ध परिषद् में सम्मिलित होने के लिए रंगून गए
1-5-1956	:	राज्यसभा में राज्य पुनर्रचना विधेयक पर भाषण
मई 1956	:	बी.बी.सी.से 'मला युद्ध धर्म का आवडतो?' विषय पर भाषण
24-5-1956	:	नरेपार्क बंबई में बुद्ध जयंती पर भाषण
14-10-1956	:	नागपुर में बौद्धधर्म ग्रहण किया
15-10-1956	:	'बुद्ध आणि कार्ल मार्क्स' विषय पर काठमांडू में भाषण
6-12-1956	:	दिल्ली में देहावसान
7-12-1956	:	मुम्बई में अंतिम संस्कार
1957	:	अंग्रेजी ग्रंथ 'दि बुद्ध ऐण्ड हिज धम्म' का प्रकाशन

सौजन्य : विपिन जी, आजादपुर, दिल्ली-110033

Final Ambedkar Magazine (Pagination):Panchjanya Dummy.qxd 4/1/2015 2:25 PM Page 98